ISSN: 2278-0408

Vol.-14 / Issue-02
July to December : 2021

World Translation

(An International Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Research Journal)

वर्ल्ड ट्रांसलेशन

(अन्तर्राष्ट्रीय सान्दर्भिक शोध–पत्रिका)

सम्पादक
डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय
डॉ0 विकास कुमार

Address
C-2, Satendra Kumar Gupta Nagar
Lanka, Varanasi-221005 U.P. (INDIA)
Email-**worldtranslation04@gmail.com**

©सम्पादक

प्रधान सम्पादक

प्रो0 अशोक सिंह (कुलपति, संत गहिरा गुरु विश्वविद्यालय, सरगुजा, अम्बिकापुर, छत्तीसगढ़)

सम्पादक

डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय (असिस्टेंट प्रोफेसर, कूबा पी0जी0 कालेज, दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़)

डॉ0 विकास कुमार (असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश)

उप सम्पादक

डॉ0 नलिनी माथुर (एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, भगिनी निवेदिता कालेज दिल्ली विश्वविद्यालय)

डॉ0 सावित्री सिंह (एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, रोहतास महिला विश्वविद्यालय, सासाराम बिहार)

डॉ0 सपना भूषण (असि0 प्रो0, हिन्दी विभाग, वसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी)

कार्यकारी सम्पादक

डॉ0 सीमा सिंह (असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कॉलेज ऑफ वोकेशनल स्टडीज़, दिल्ली विश्वविद्यालय)

डॉ0 लाल सिंह (असिस्टेन्ट प्रोफेसर, विधि विभाग, श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़)

डॉ0सुनील कुमार सिंह (असिस्टेंट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, अर्मापुर स्ना. महाविद्यालय, कानपुर)

सह सम्पादक

डॉ0 सच्चिदानन्द चौबे (प्राचार्य, हंसराज राम लालदेई स्ना. महाविश्वविद्यालय, झुरिया, भगिनी, गोरखपुर)

डॉ0 उमेश कुमार राय (पूर्व शोध छात्र. वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार)

राणा अवधूत कुमार (शोध छात्र, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

प्रबंध सम्पादक

डॉ0 विनय कुमार शुक्ल (सहायक प्राध्यापक, शासकीय रामानुज प्रताप सिंहदेव स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बैकुण्ठपुर, कोरिया, छ.ग.)

डॉ0 अरूण कुमार मिश्र (असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी), एम.डी.पी.जी. कॉलेज, प्रतापगढ़

ISSN : 2278-0408

मूल्य : रु0 250.00

सम्पादकीय पता

डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय

एस.एन. 14/191, सरायनन्दन, खोजवाँ,

वाराणसी, उ0प्र0, मो0नं0 09451173404, 7705040045

Email: surendrpanday@gmail.com

डॉ0 विकास कुमार

सिविल लाइन, तकिया रोड,

सासाराम, रोहतास (बिहार)

मो0 : 09470828492, 9934468661

Email: vik982pri@gmail.com

मुद्रक

राजैरिया ऑफसेट

जगतपुरी, दिल्ली-110093

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित लेखों एवं उद्धरणों का दायित्व स्वयं लेखकों का है। लेखों एवं उद्धरणों से सम्बन्धित किसी भी वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं जिम्मेदार होगा।

सम्पादक मण्डल

डॉ0 राधेश्याम दुबे, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ0 सुरेन्द्र प्रताप, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
डॉ0 श्रीनिवास पाण्डेय, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ0 सदानन्द शाही, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ0 विजय बहादुर सिंह, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ0 अनीता सिंह, प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
प्रो0 मृदुला जुगरान, हिन्दी विभाग, हे.न.ब.ग. विश्वविद्यालय, श्रीनगर, गढ़वाल, उत्तराखण्ड
डॉ0 वशिष्ठ अनूप, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ0 चन्द्रमौली उपाध्याय, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ0 चम्पा सिंह, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ0 राधेश्याम राय, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ0 डी0एन0 तिवारी, प्रोफेसर, दर्शन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ0 तीर्थेश्वर सिंह, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, अमरकंटक विश्वविद्यालय, मध्यप्रदेश
डॉ0 शिवकुमार मिश्र, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
डॉ0 एस0 आर0 जयश्री, एसोसिएट प्रोफेसर, महात्मा गाँधी कॉलेज, तिरुवनन्तपुरम्, केरल
डॉ0 सुनीता सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, ली. मोयने कॉलेज, साउथ न्यूयार्क, यू0के0
डॉ0 मनोज सिंह, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ0 विनोद कुमार मिश्र, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, त्रिपुरा
डॉ0 सतीशचन्द्र दुबे, एसो0 प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ0 उमापति दीक्षित, प्रोफेसर, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा
डॉ0 विकास कुमार सिंह, असि0 प्रोफेसर, प्रा0भा0इ0सं0 एवं पुरातत्त्व विभाग, का0हि0वि0वि0, वाराणसी
डॉ0 दिग्विजय सिंह, हिन्दी विभाग, के0डी0वी0 डिग्री कॉलेज, दुबहर, बलिया
डॉ0 देवेन्द्र प्रताप सिंह, प्राचार्य, कूबा पी0जी0 कालेज, दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़
डॉ0 अभय कुमार, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, बी.आर.एम. महाविद्यालय, मुंगेर वि.वि., मुंगेर, बिहार
डॉ0 ऋतु वार्ष्णेय, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, किरोरीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

संरक्षक मण्डल

डॉ0 गजेन्द्र पाठक, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय
डॉ0 प्रभाकर सिंह, असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ0 जितेन्द्र कुमार सिंह, असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, राजस्थान
डॉ0 प्रिया खट्टर दुबे, प्राचार्य, वैष्णवी ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन, भोपाल
डॉ0 मृत्युंजय सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, शांति प्रसाद जैन महाविद्यालय, सासाराम, बिहार
डॉ0 चन्द्रशेखर चौबे, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, शाखा– नागालैंड

विधि परामर्शदाता

डॉ0 मुकेश कुमार मालवीय, असि0 प्रोफेसर, विधि संकाय विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

अनुक्रम

1.	प्रभा खेतान की रचनाओं में व्यक्तः आचार–विचार विषयक मान्यताएँ **डॉ0 वेदवती राठी**	**9-13**
2.	मध्यभारत की गोंड जनजाति का ऐतिहासिक एवं सामाजिक अध्ययन **डॉ0 अरविन्द कुमार*** **प्रो0 अरविन्द जोशी****	**14-17**
3.	Epistemology of Guru Nanak **Dr. Onkar Nath Dwivedi**	**18-22**
4.	Non- Violence Resistance through Revolution of Opinions : Reflections on P.B. Shelley's Poem "The Masque of Anarchy" **SHIKHA MISHRA**	**23-29**

5.	Health and Nutrition of Rural Women **SATYA BAHADUR SINGH**	**30-37**
6.	साधारणीकरण **यशवंत सिंह वर्मा**	**38-42**
7.	हिन्दी कहानी की विरासत **डॉ0 देवेन्द्र प्रताप सिंह**	**43-53**
8.	**महावीर प्रसाद द्विवेदी का अनुवाद चिन्तन** सदरे आलम	**54-56**
9.	स्वाधीनता आंदोलन में साहित्यकारों की भूमिका **डॉ0 रोहित कुमार**	**57-64**
10.	डॉ. गोरख प्रसाद मस्ताना के कविताओं में नारी का चित्रण **डॉ0 विकास कुमार**	**65-70**

11.	संतों का गढ़ छत्तीसगढ़ **संजय मिंज**	**71-77**
12.	Stress Management Through Yoga **Dr. Rakesh Kumar**	**78-82**
13.	जिहाद पर एक समीक्षात्मक विश्लेषण **नसीमुद्दीन**	**83-88**
14.	भक्तिकालीन काव्य में गोवर्धन पर्वत की महिमा **आत्मा राम यादव**	**89-93**
15.	संस्कृत में जन्मभूमि **डॉ0 अजित कुमार जैन**	**94-95**
16.	डा. रवीन्द्र उपाध्याय के गीतों में राग-विराग देवीदत मालवीय	**96-102**

17.	सुरेन्द्र स्निग्ध की कविताओं में लोक संस्कृति के विविध आयाम **डॉ० पंकज राय**	**103-106**
18.	हिन्दी व्यंग्य साहित्य और श्रीलाल शुक्ल गीता देवी	**107-115**
19.	पौराणिक साहित्य में भारतवर्ष **डॉ0 अजित कुमार जैन**	**116-118**
20.	उत्तर शती के हिंदी उपन्यासों में दलित चेतना **डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय**	**119-122**
21.	'भूमण्डलीकरण के भंवरजाल मे जड़ से उजड़ते लोगों की करुण कथा' **बृजेश कुमार**	**123-132**
22.	आत्मकथा का स्वरूप–विवेचन नन्दराम	**133-135**

23.	'जूठन' का मार्मिक पक्ष **राजमणि सरोज**	**136-137**
24.	भारत में उच्च शिक्षा : दिशा और उद्देश्य **डॉ0 पूनम मिश्रा**	**138-143**
25.	भारत में सामाजिक न्याय की अवधारणा **खुर्शीद आलम खान**	**144-149**
26.	कामायनी में अलंकार तत्व **वनीत कौर**	**150-152**
27.	**'मैला आँचल' की भाषा** डॉ. काली चरण झा	**153-158**
28.	तुलसी काव्य धारा में पर्यावरणीय संचेतना : एक समीक्षा *डॉ0 अरुण कुमार मिश्र*	**159-166**
29.	बिक्रम सिंह की कहानियों में दलित–विमर्श **श्रीमती मीरा देवी**	**167-170**
30.	मंजुल भगत के कथासाहित्य में चित्रित सामाजिक समस्याएँ **श्वेता तिवारी**	**171-174**

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

प्रभा खेतान की रचनाओं में व्यक्तः आचार–विचार विषयक मान्यताएँ

डॉ0 वेदवती राठी
ऐसोसिएट प्रोफेसर, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
धर्म समाज महाविद्यालय, अलीगढ़

प्रभा खेतान का जिस युग में जन्म हुआ उस युग तक आते–आते प्राचीन परम्पराओं और सदाचार, जीवन विषयक मूल्यों में विघटन शुरू हो गया। इसलिए प्रभा खेतान के व्यक्तिगत जीवन में इस प्रकार के जीवन–मूल्यों को वरण करने के प्रति कट्टरता का दर्शन नहीं होता। यों अनेक जीवन–मूल्यों को वे अनुकरणीय मानते हुए अपनी रचनाओं में एतद् विषयक विचार व्यक्त करती हैं, जिनके अन्तर्गत सदाचार की परिभाषा बदलने लगी है और आज जीवन का यह उद्देश्य कतई नहीं रह गया है कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम जैसा आचरण करें और अपने को इतने कठोर अनुशासन में रखें कि कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन न हो सके। उदाहरणतः यहाँ इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि भारतीय नारी को किन जीवन मूल्यों का आचरण करना चाहिए। प्रभा जी ने फ्रेंच लेखिका सीमोन द बोउवार की पुस्तक सेकेण्ड सेक्स का न केवल हिन्दी अनुवाद किया, बल्कि सीमोन द बोउवार को नारी जीवन में क्रान्तिकारी व्यक्तित्व के रूप में उभारा भी है।

प्रभा खेतान हिन्दी की ऐसी लेखिका हैं जो पुराने जीवन–मूल्यों और जीवन–पद्धति में विश्वास नहीं करती। यूरोप और अमेरिका के आज के चमचमाते जीवन और भौतिकतावादी दृष्टि से सम्पन्न जीवन को उन्होनें बहुत करीब से देखा है और उन्होंने यूरोप के अनेक देशों की यात्राएँ भी की हैं। विश्व के दार्शनिकों के विचारों को आत्मसात् भी किया है। विश्व साहित्य की महान् कृतियों को पढ़ा भी है। इसीलिए उनकी मानसिकता इस प्रकार की बनी है। इसलिए आचार–विचार के नाम पर जो ढंग भारतीय जीवन में व्याप्त हो रहा है। इससे वह कोसों दूर हैं। तभी तो उन्होंने अपनी आत्मकथा में बेलौस होकर उन प्रसंगों को उद्घाटित किया है, जिसनें नारी–पुरुषों के अवैध सम्बन्धों की चर्चा प्रमुख है। उनके उपन्यासों में भी ऐसे पात्र आये हैं जो आचार–विचार को नहीं मानते। उदाहरण के लिए 'अग्नि संभवा' की आइवी 'येन केन प्रकारेण' अपने हथकण्डों से कहीं से कहीं पहुँच जाती है और अपने सात समुन्दर पार बैठे मालिकों को चूना लगाने में हिचकती नहीं है। इसी प्रकार 'एड्स' उपन्यास का एनडू बेहद बातूनी लफ्फाज और 'ईटड्रिंक एण्ड बीमैरी' के जीवन–दर्शनमें आस्था रखने वाला दिखाया गया है। 'आओ पेपे घर चलें' की आइलिन अनेक पुरूषों से सम्बन्ध रखने में किसी प्रकार की लज्जा अनुभव न नहीं करती। न उसे किसी प्रकार का पछतावा है कि वह ऐसी गैरतभरी जिन्दगी क्यों जीती है? प्रभाजी ने अपने उपन्यासों 'छिन्नमस्ता' 'पीली आँधी' में भी मारवाड़ी समाज की स्त्रियों में व्याप्त आचार–विचार की पर्याप्त चर्चा की है। देवताओं की मनौतियाँ मानना, उनसे देवताओं के प्रसन्न होने का विश्वास, देवताओं के द्वारा वरदान देने का विश्वास और तरह–तरह की रूढ़ियों परम्पराओं मान्यताओं का उल्लेख इन उपन्यासों में हुआ है। गरज है कि जहाँ मानव जीवन का चित्रण होगा, वहाँ उनके आचार–विचार का उल्लेख न हो, तो मानव जीवन का समग्रचित्र उभर नहीं पाता। इसीलिए प्रभा खेतान ने अपने उपन्यासों 'पीली आँधी' और 'छिन्नमस्ता' में आचार

विचार विषयक मान्यताओं का विस्तार से उल्लेख किया है। अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में वे स्पष्ट रूप से स्वीकार करती हैं कि डॉ0 सर्राफ के प्रति उनके हृदय में प्रेम का अंकुर पनप गया था–

''मुझे पता था जिस राह पर मैं चल पड़ी हूँ वह गलत सही जो भी हो पर वहाँ से वापस मुड़ना सम्भव नहीं। इसे ही प्रेम कहते हैं और मुझे अपने प्यार पर पूरा भरोसा था।''[1]

अपनी कविताओं में भी उन्होनें प्रेम की पवित्रता और उसमें गहरी आस्था का उल्लेख किया है 'एक और आकाश की खोज में' शीर्षक कविता संग्रह की 'एक दिल धड़कता है मेरे भीतर' शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियाँ प्रभा जी के प्रेम में गहरी आस्था की परिचायक है–

''एक दिल धड़कता है मेरे भीतर
मेरी हर साँस में
वह प्यार बन महकता है
बस मैं इतना ही जानती हूँ।''[2]

प्रभाजी की कविताओं में आशावादी जीवन–दर्शन की अभिव्यक्ति भी अनेक स्थानों पर हुई है। 'अहल्या' शीर्षक लम्बी कविता में वे एक स्थान पर अपने इस आशावादी जीवन दर्शन में गहरी आस्था व्यक्त करती हैं और 'अहल्या' के प्रति आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित करती हैं। उससे मानवतावादी जीवन दर्शन के प्रति लेखिका का लगाव प्रमाणित होता है।

''अब
जब तुम
आँखें खोलोगी, अहल्या!
सच मानो, मेरी बहन!
उसी वक्त खुलकर
खिलने लगेंगी
नई संस्कृति की पंखुड़ियाँ।[3]

स्पष्ट है कि प्रभा खेतान ने यूरोप के कई विचारकों, चिन्तकों, दार्शनिकों के विचारों का गहन अध्ययन–विश्लेषण किया था। इसलिए सार्त्र के द्वारा प्रतिपादित अस्तित्ववादी जीवन दर्शन में घुटन, संत्रास और अजनबीपन की प्रमुख भूमिका रहती है। उसके विषय में वह अपनी कविताओं में स्थान–स्थान पर संकेत करती मिल जाती है। 'हुस्नाबानों और अन्य कविताएँ' शीर्षक कविता संग्रह की 'भीड़ के बीच' शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियाँ प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत की जा सकती है–

''आश्चर्य!
स्वचालित यंत्र
छिप जाता है
भीड़ के बीच
इतना सारा अजनबीपन।''[4]

पाश्चात्य जीवन–दर्शनों में क्षणवादी जीवन दर्शन एक ऐसा जीवन–दर्शन है, जिसमें एक–एक क्षण का महत्व प्रतिपादित किया जाता है। प्रभाजी 'एक ओर आकाश की खोज में' शीर्षक कविता संग्रह की 'सुनो' कविता की निम्न पंक्तियों में क्षणवादी जीवन–दर्शन में आस्था व्यक्त करती है–

'सुनो
नींद में डूबने से पहले
एक बार खिड़की से बाहर चाँद को देखो
चलो हम एक प्यारा सा सपना कुछ देर के लिए जियें।''[5]

दर्शन शास्त्र में पी–एच0डी0 करने के कारण उनका चिन्तन का स्वर इतना दर्शनमय हो गया था कि वे अनासक्ति योग के प्रति अपनी आस्था इस रूप में व्यक्त करती हैं–

''तुम किसी भी दिशा में जाओ
कदमों की आहट नहीं होगी
न प्रेम, न विदा
न तुम, न मैं
न अतीत, न भविष्य।''[6]

प्रभा खेतान का धर्म–सम्प्रदायों के प्रति ऐसा विचार रहा है कि वे किसी सम्प्रदाय में न तो आस्था रखती हैं न तो किसी पद्धति के प्रति प्रतिबद्ध दिखाई देती हैं। इसीलिये शुद्ध बुद्धिजीवी के रूप में धर्म के ठेकेदारों के प्रति सम्मान ही व्यक्त करती हैं। वे मौलवी और पण्डित दोनों को एक ही तराजू में तोलते हुए व्यंग्य करते देखी जा सकती हैं–

''मौलवी
कुरान शरीफ छोड़कर
बँटाने के लिये
अब्बा का हाथ?
क्या दौड़े आयेंगे पण्डित
ढोने के लिये
गारा चूना?''[7]

प्रभा खेतान सच्चे रूप में बुद्धिजीवी थीं। इसलिये उनके साहित्य में तार्किकता का स्थान सर्वोपरि दिखायी देता है और यहाँ तक कि तार्किकता उनके आचार–विचार विषयक चिन्तन में सर्वोपरि स्थान रखती है। 'अपरिचित उजाले' शीर्षक कविता संग्रह की 'आलू जमीन के नीचे क्यों होते हैं' शीर्षक कविता में अपनी तर्कशील प्रवृत्ति का उल्लेख निम्न शब्दों में करती हैं–

''आलू जमीन के नीचे क्यों होते हैं
और गोभी क्यों जमीन के ऊपर?
टमाटर इतने लाल कैसे
पालक इतने हरे क्यों?
मौसम बदलने के बाद......................
इनका रंग कैसा रहता होगा।''[8]

प्रभा खेतान पाश्चात्य भौतिकतावादी जीवन में रच–बस गयी थी। यही कारण है कि वे 'ईटड्रिंक एण्ड बीमैरी' जैसे भौतिकतावादी जीवन–दर्शन में अपनी आस्था व्यक्त करती हैं–

''सुनो इस अलगाव की जो भी की मत हो
तुम ले लो, मेरा भी हिस्सा
जाओ खरीदो बीयर की बोतल
हम साथ पीयेंगे

बीते हुये कल की खुशी में
जिन्दगी को स्वीकारो पूरी तरह।''[9]

आचार–विचार विषयक मान्यताओं पर जब विचार करते हैं तो प्रभा खेतान के जीवन में व्याप्त कुछ ऐसे तथ्यों का शोधानुसंधान भी करना पड़ता है। जिनके द्वारा उनके व्यक्तित्व का निर्माण सम्भव हुआ। पाश्चात्य भौतिकतावादी जीवन–दर्शन में आस्था रखने वाले यूरोप और अमेरिका के सम्पर्क मे वे आयी थीं। इसीलिये अनुशासनप्रियता उनका आवश्यक गुण बन गया था। वे अनुशासन की महत्ता को समझती थी। ऐसा उन्होंने 'पीली आँधी' उपन्यास में एक स्थान पर उल्लेख किया है–

''जीवन में अनुशासन तो रहना चाहिये, जो आदमी समय से खा नहीं सके, सो नहीं, सके, वह भला कोई आदमी हुआ।''[10]

प्रभा खेतान का व्यक्तित्व प्रखर व्यक्तित्व था इसीलिये उन्होंने कभी जीवन में किसी प्रकार का गणित नहीं लगाया ना ही किसी छोटी–मोटी चीज के लिये समझौता किया। उनकी मान्यता थी–

''समझौता अपने आप से
और सबसे
उन सारे स्थापित सत्यों से
कहीं अनजाने ही
हम एक बिकाऊ सामान न बन जायें।''[11]

मानवतावादी जीवन में आस्था उनके आचार–विचारों का आधारस्तम्भ निर्मित करती है तभी तो वह मानवता के खिलाफ खड़े हत्यारों को घृणा की दृष्टि से देखती हैं–

''आदमीयत के खिलाफ खड़े
हत्यारों की एक पूरी जमात।''[12]

मानवतावादी जीवन–मूल्यों के प्रतिप्रभा खेतान की आस्था बहुत गहरी है–

''स्वेच्छा से ओढ़ी है
मैंने
आदमी होने की सर्वोच्च भूमिका।''[13]

प्रभा खेतान अपनी मानवोचित दुर्बलताओं को व्यक्त करने में इसीलिये नहीं हिचकती है कि उनके आचार–विचार मान्यताएँ उसके पीछे काम कर रही होती है। अपनी आत्मकथा 'अनन्या से अनन्या' में डॉ0 सर्राफ के साथ सम्बन्धों में निहित देहवादी विमर्श को भी वह आत्मस्वीकृति प्रदान करती हैं–

''जो कुछ भी घट रहा है, वह हमारा चुनाव है×××हमारे मिलने का कारण देह नहीं×××पर हम देह से अलग भी तो नहीं हो पा रहे हैं।''[14]

कहना न होगा कि प्रभा खेतान दिनकर की 'उर्वशी' में व्यक्त निम्न पंक्तियों के प्रति आश्वस्त हैं और दिनकर के इस कामाध्यात्म विषयक विचारों से सहमत हैं कि प्रेम तन के स्तर से उठते–उठते आत्मा के स्तर तक पहुँच जाता है–

''देह प्रेम की जन्मभूमि है, पर उसके विचरण की।
सारी लीला भूमि नहीं सीमित है रूधिर–त्वचा तक।''[15]

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि प्रभा खेतान के साहित्य में आचार–विचार विषयक मान्यताऐं अनेक स्थानों पर व्यक्त हुई हैं, जिनमें न किसी प्रकार का कोई ढोंग दिखाई देता है न दिखावा। वे सीधे–सादे जीवन में विश्वास करती हैं और मानवतावादी जीवन–मूल्यों की साधिका के रूप में सामने आती हैं। तभी तो अमीनुल्ला जैसा कारीगरों के प्रति श्रद्धा रखती हैं और हुस्नबानों जैसी औरतों के प्रतिसदय। 'तालाबंदी' उपन्यास में श्रमिकों के प्रति सदा सहजता पग–पग पर देखी जा सकती है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ :

1. अन्या से अनन्या, पृ0–71
2. एक और आकाश की खोज में, पृ0–9
3. अहल्या, पृ0–72
4. हुस्नबानों और अन्य कविताएं, पृ0–29
5. एक और आकाश की खोज में, पृ0–8
6. –वही–पृ0–33
7. हुस्नबानों और अन्य कविताएं, पृ0–18
8. अपरिचित उजाले, पृ0–44
9. –वही– पृ0–50
10. पीली आँधी, पृ0–195
11. अपरिचित उजाले, पृ0–11
12. कृष्णधर्मा मैं, पृ0–42
13. –वही– पृ0 21
14. अन्या से अनन्या, पृ0–72
15. उर्वशी, पृ0–47

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

मध्यभारत की गोंड जनजाति का ऐतिहासिक एवं सामाजिक अध्ययन

डॉ0 अरविन्द कुमार*
प्रो0 अरविन्द जोशी**
पोस्ट डाक्टोरल फेलो ICSSR
समाजशास्त्र विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

जनजाति से तात्पर्य देश के प्राचीनतम निवासियों से है, जिनका निवास सामान्यतः जंगल की उपत्यकाओं में है। इनकी अपनी संस्कृति है, जिसमें हमें देश की प्राचीन सांस्कृतिक विरासत के दर्शन होते हैं, जो आज विलुप्त होती जा रही है। विकास की मुख्यधारा से कटे होने के कारण ये जनजाति अल्प विकसित होकर रह गयी तथा कालान्तर में और भी पिछड़ती चली गयी। जनजातियों की सांस्कृतिक विरासत को आज सहेजने की आवश्यकता है। इनकी विशिष्ट पहचान, संस्कृति तथा सामाजिक व्यवस्था है, जो देश की प्राचीनतम धरोहर है। सन् 1991 ई0 के जनगणना के अनुसार भारत में लगभग 6.78 करोड़ जनजातियाँ निवास करती हैं जो देश के लगभग 19 प्रतिशत भू–भाग में स्थित है तथा लगभग पाँच सौ जनजाति समूहों में बँटी हैं। इन्हीं समूहों में से एक समूह गोंड जनजाति का भी है, जो मध्य भारत की एक प्राचीन जनजाति है। वर्तमान में गोंड जनजाति मध्य भारत में दूर–दूर तक फैली हुई है। इसका कारण शायद इनकी राजनीतिक जागरूकता है। गोंड जनजाति का मुख्य निवास–स्थान मध्यप्रदेश का गोंडवाग क्षेत्र है परन्तु यह जनजाति, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्रप्रदेश, उड़ीसा एवं पश्चिम बंगाल में भी पायी जाती है।

मध्य भारत के खानदेश, बैतूल, छिन्दवाड़ा, भिवानी, गठ–मण्डला, चांदा तथा नर्मदा, ताप्ती, वर्द्धाविणगंगा आदि नदी प्रवाहित क्षेत्रों में 18वीं शताब्दी तक गोंड जनजाति का एक समृद्धशाली राज्य था, परन्तु मराठों द्वारा पराजित होने के पश्चात् उन्हें जंगलों में शरण हेतु विवश होना पड़ा। भारत की प्राचीन जनजातियों में गोंड जनजाति ही एकमात्र ऐसी जनजाति है, जिसने मध्य भारत में एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की थी। गोंड जनजाति का उल्लेख किसी ने गोंड, गौड़ तथा किसी–किसी ने गण्ड नाम से भी किया है। हिस्लोप महोदय के अनुसार मुस्लिम इतिहासकारों ने सम्भवतः तेलुगु कोण्ड (पहाड़ी जनजाति) शब्द के अपभ्रंश अर्थ में गोंड लिखा है। भूवेत्ता रालेमी ने गोंड जनजाति का उल्लेख 'गोण्डलोई' नाम से लिखा है। मुस्लिम इतिहासकारों ने इनकी निवास भूमि गोड़वान लिखा है। गोंडवन अर्थात् गोंडवाना क्षेत्र में इस जनजाति का समृद्धशाली राज्य था, जिसकी गढ़ा और मण्डला नाम की दो राजधानियाँ थीं। इन दोनों स्थानों के प्राचीन ध्वंसावशेषों एवं गोंड राजाओं के समय के शिलालेखों से इस राज्य की समृद्धि का प्रमाण मिलता है। गढ़मण्डल में राज्य करने वाले गोंड राजा स्वयं को हिन्दू तथा क्षत्रिय बताते हैं एवं उनके वंशज आज भी राजपूत या राजपूत गोंड से अपना परिचय देते हैं।

गोंड जनजातियों की कई उपजातियाँ हैं, जो देश के विभिन्न क्षेत्रों में निवास करती हैं। इनमें राजगोंड, रघुवल, दादावे, कतुल्या, पांडाल, ढोली, ओकियाल, ढोटियाल, कैला भूताल, कैकोपाल, कोलाम, मादियाल, नीच पांडाल, मादिया, हलवा, नैकूड, धोकड़, दोशेया, झोरा आदि हैं। राजगोंड इन सभी में श्रेष्ठ माने जाते हैं, क्योंकि इनको ही गोंड राजपरिवार का असली वंशज माना जाता है। गोंड जनजाति आर्थिक दृष्टि से अपने क्षेत्र की अन्य जनजातियों से सम्पन्न है। इनकी अपनी भाषा गौड़ी है, जो द्रविण भाषा परिवार के अन्तर्गत आती है। उनके मकान बाँस तथा मिट्टी के बने होते हैं एवं ताड़ के पत्तों से ढँके होते हैं। मध्य भारत के गिरिजनों में सबसे अधिक संख्या गोड़ों की है। ये एक विस्तृत भू–खण्ड में बस गये हैं तथा हल–बैल से खेती करते हैं, परन्तु अब महुआ खाने की उनकी आदत खत्म हो रही है। शिकार के लिए वे तीर–धनुष के प्रयोग में सिद्धहस्त थे, परन्तु शिकार पर प्रतिबंध लगने के कारण वे इस विद्या को अब लगभग भूल चुके हैं, फिर भी जंगलों में रहने वाले गोंड अभी तक अपने आदिम जीवन और रीति–रिवाजों को सुरक्षित रखे हुए हैं।

इनका जातीय हथियार टाँगी है। हर गोंड जंगलों में टँगी लेकर चलता है। शारीरिक बनावट की दृष्टि से गोंड जनजाति के लोग मजबूत तथा सुन्दर होते हैं। ये जंगलों में बड़े–बड़े भैंसों का शिकार करते हैं। अब उनकी मुख्य जीविका खेती पर निर्भर है, परन्तु खेती के अतिरिक्त वे मजदूरी करके भी अपनी जीविका चलाते हैं।

गोंड जाति के लोग विभिन्न देवी–देवताओं की पूजा करते हैं। उनके प्रमुख देवताओं में चूलदेव, नारायणदेव, सूरजदेव, मातादेव, बड़ादेव, घनश्यामदेव तथा प्रमुख देवियों में मनिया देवी, लाहौरी देवी, शीतला देवी आदि हैं, परन्तु इनमें भी सर्वाधिक लोकप्रिय देवता बड़ादेव तथा देवी मनिया देवी हैं। उनके कुल देवता तथा गोत्र देवता भी होते हैं। बड़ादेव की पूजा सर्वविदित है जिसे वर्तमान लेखक शिवशंकर सिंह ने भी वर्णित किया है– ''गोंड जनजाति के लोग जिसे बड़ादेव के रूप में स्वीकार करते हैं, उन्हें हम अभिहित कर सकते हैं। इन लोगों का विश्वास है कि बड़ादेव का निवास स्थान सखुआ के पेड़ में होता है।''[1] गोंड जनजाति के लोग अपने जातीय उत्सवों के अतिरिक्त होली, दीपावली तथा अन्य हिन्दू त्यौहार भी बड़ी धूमधाम से मनाते हैं। इस जनजाति के लोग भूतप्रेत तथा जादू–टोने में भी विश्वास रखते हैं। वर्तमान समय में विकसित जातियों के सम्पर्क में आकर गोंड जनजाति की जीवनशैली में परिवर्तन हो रहा है तथा वे देश की मुख्यधारा में चलने का प्रयास कर रहे हैं, परन्तु इसे और गति प्रदान करने की आवश्यकता है जिससे इनकी ऐतिहासिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों को सहेजा जाए एवं उन्हें प्रोत्साहित किया जाए।

आदिवासी समाज भारतीय जीवन का अभिन्न अंग है इसके बावजूद आदिवासी भारतीय समाज में बहुस्तरीय शोषण के शिकार रहे हैं। वे हिन्दू समाज के अभिन्न हिस्से हैं, भले ही उन्हें वर्णाश्रयी समाज में निचले पायदान अथवा उससे बाहर रखा गया है। प्रारंभ से ही वे कामगार और सेवक के रूप में ही, भारतीय समाज में अपनी उपस्थिति दर्ज करते रहे। इसीलिए उनमें सामाजिक अन्याय के विरुद्ध अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं।

इतिहासकारों के अतिरिक्त आदिवासी जनजीवन व समाज के प्रति हिन्दी उपन्यासकारों में भी गहरी संवेदना रही है। यहाँ हम उन उपन्यासों की चर्चा करेंगे जो गोंड जनजाति के विशेष संदर्भ में है। ये गोंड जनजाति के सामाजिक क्रिया–कलापों, यथा– रहन–सहन, खान–पान, शादी–विवाह, संस्कार, अन्त्येष्टि आदि पर केन्द्रित हैं। इस दृष्टि से राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यास 'जंगल के फूल' (1960) में मध्य प्रदेश के अंचल विशेष की पृष्ठभूमि में आदिवासी संस्कृति की

विविधता और सौन्दर्य का अंकन किया गया है। इसके साथ ही इस उपन्यास में वास्तविक जमीनी सच्चाई के साथ ही कल्पना व ऐतिहासिक यथार्थ की सुन्दरता अभिव्यक्त की गई है। उपन्यास में गोंड जनजाति समाज में प्रचलित रीतियों, लोककथाओं, लोकगीतों, लोकाचारों आदि का समुचित वर्णन किया गया है– ''हम जंगली गंवार हैं, हमारे गाँव की हर गैल में देवता रहते हैं। हर झाड़ में भूत बसते हैं। नदी किनारे प्रेत रहते हैं और हर खण्डहर में चुड़ैल। कितना सच कहते हैं वे। बोले रे, यह सब न कहा जाता तो न जाते कब के हम और हमारे गाँव धूल में मिल गए होते।''[2]

गोंड जनजाति अपनी संस्कृति अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है। अंग्रेजों द्वारा चलाई जाने वाली दमनकारी नीतियों के विरुद्ध संपूर्ण अंचल सक्रिय हो उठता है जिसका विरोध पुरुष और महिलाएँ दोनों मिलकर करते हैं। इस उपन्यास में पुलिस दुर्व्यवहार, श्रम–शोषण, बेगारी आदि का उल्लेख भी किया गया है।

इसी उपन्यास में साँप के काट लेने पर गोंड एक विशेष पौधे के पत्ते चबाते हैं। मुर्गियों को अपना खून भी पिलाते हैं। कद्दू तिरोइयाँ खिलाते हैं और साँप जहर वापस ले लेता है।

देवेन्द्र सत्यार्थी आदिवासी जीवन पर केन्द्रित उपन्यासकारों में प्रमुख स्थान रखते हैं। 'रथ के पहिये' (1952) उपन्यास गोंड समाज के जीवन को केन्द्र बनाकर लिखा गया एक उत्कृष्ट और यथार्थवादी उपन्यास है। यह आदिवासी समाज एवं उनकी विस्थापन की समस्या को समाज के सामने रखता है। साहित्य में यथार्थ का चित्रण कई रूपों में पाया जाता है– ''जो साहित्यकार मानव जीवन एवं समाज का सम्पूर्ण वास्तविक चित्र उपस्थित करता है और अपने साहित्यिक वस्तु विषय को वास्तविक संसार से न लेकर वास्तविक संसार से लेता है, उसे ही यथार्थवादी लेखक कहते हैं।''[3] 'रथ के पहिये' उपन्यास के संदर्भ में उपन्यासकार देवेन्द्र सत्यार्थी अपनी यथार्थवादी दृष्टि रखते हैं– ''मेरा विषय मेरे सम्मुख स्पष्ट हो गया। मेरे पात्र साँस लेने लगे। उनके साथ मेरा सम्बन्ध प्रतिदिन गहरा होता गया। जैसे मैं भी उन्हें में से एक था। गोंड–जीवन का अनुभव मुझे पूरी तरह हो चुका था।''[4] आज आदिवासी कृतियों में शिल्प का प्राचीन, अनपढ़, पारम्परिक और जो स्थूल रूप दिखाई देता है। उसे तराशकर चुस्त–चुटीला और प्रासंगिक तथा प्रभावशाली शिल्प के रूप में प्रतिष्ठित करने का कार्य वृंदावनलाल वर्मा ने 'कचनार' में किया है। 'कचनार' (1947) के माध्यम से गोंडों अथवा राजगोड़ों की संस्कृति को हिन्दी साहित्य में एक नया सोपान दिया है। इसमें गोंडों के रहन–सहन, रीति–रिवाज आदि का परिचय दिया गया है। 'कचनार' एक साधारण आदिवासी गोंड नारी है, जो अनवरत व्यवस्था जनित परिस्थितियों से संघर्ष करती हुई और अपने स्वत्व की स्वाभिमान की रक्षा करती हुई नारी के विलक्षण शक्ति का परिचय देती है। वस्तुतः इस उपन्यास की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है। कल्पना और तत्कालीन इतिहास का अद्भुत सम्मिश्रण इसकी विशेषता है। जो इस उपन्यास को तजनित नयी भंगिमाओं का साथ प्रस्तुत करता है। इसका घटना काल 1792–1803 के मध्य है। सागर और झाँसी का एक सूबा है धामोनी। धामोनी पर कभी राज गोंडों का शासन था। यहाँ की सत्ता कभी मुगलों, मराठों और बुंदेलों से होते हुए फिर वापस गोंडों के नियंत्रण में आ गयी थी। इसमें वर्णित अधिकांश घटनाएँ सच्ची व प्रामाणिक हैं। यह बात और भी प्रमाणित हो जाती है जब लेखक स्वयं स्वीकारोक्ति हो– ''मैंने कचनार लिखने में, अपने अभ्यास के अनुसार, इतिहास और परम्परा, दोनों का उपयोग किया है। परदेसियों के तोड़ मरोड़कर लिखे हुए इतिहास पटके खाए हुए चमकते हुए टीन के उस कनस्तर के समान हैं जिसमें सुन्दर–से–सुन्दर चेहरा अपने को कुरूप और विकृत पाता है। परंतु परम्परा अतिशयता की गोद में खेलती हुई भी सत्य की ओर संकेत करती है, इसीलिए मुझको परंपरा इतिहास से भी अधिक आकर्षक जान पड़ती है।''[5]

''आजकल के भारीय राजनीतिक विकास में गोंड कोई विशेष भाग लेते हुए नहीं जान पड़ते, यद्यपि मध्यभाग में उनके कई राज्य हैं। परंतु एक समय वे अपने सहज, सरल, स्वाभाविक और प्रमोदय जीवन द्वारा भारतीय संस्कृति को अपने दृढ़ और पुष्ट हाथों की अंजलियाँ भेंट किया करते थे। वे क्या फिर ऐसा नहीं कर सकते? मुझको तो आशा है। 'कचनार' मेरी अमरकंटक यात्रा का प्रतिबिंब और उस आशा का प्रतीक है।''[6]

आदिवासी साहित्य का उद्देश्य खासकर आदिवासी जनजातियों के जीवन में अधिकार चेतना को जगाना भी है जिससे के विकास के अवसरों, साधना और सामाजिक न्याय की शक्तियों से वंचित न रहे। आज अधिकांश जनजातियों सहित गोंड भी शैक्षिक एवं आर्थिक रूप अत्यंत पिछड़े है। इनकी आर्थिक स्थिति संतोषप्रद नहीं है। इनकी उपजातियों में 'पांडाल' श्रेणी के लोग धर्मोपदेशक का कार्य करते हैं। 'ढोली' लोग ढोलक बजाते हैं। 'नागाची' या 'छेरक्या' नाम से इनकी एक नीची श्रेणी भी है। इस श्रेणी में पुरुष बकरियाँ चराते हैं तथा इनकी स्त्रियाँ दायी का कार्य करती हैं। 'ओझियाल' लोग मंजीरा बजाते हुए गाते–फिरते हैं। 'ढोलियाल' लोग शीतला देवी के उपासक होते हैं। वे चेचक बिसारी होते पर उसको उपशम करने के लिए घट घट जाकर शीतला देवी के गीत गाया करते है। 'कैकोल' या 'गोंड गोपाल' लोग ग्वालों का कार्य करते हैं। बस्तर में 'गैति' या 'कैतोर' और 'मारिया' लोगों की आजीविका प्रधानतः कृति पर निर्भर है। वेणगंगा के किनारे के 'नैकूड़' शिकार करके अपना पेट भरते हैं। जंगल और घास काटकर भी ये लोग अपने पड़ोसियों को बेचा करते हैं।

निष्कर्षतः, गोंड जनजाति को सामान्यतः देश की अन्य जनजातियों के लगभग समान ही माना जाता रहा है, परन्तु हमारी परिकल्पना के अनुसार गोंड जनजाति देश की अन्य जनजातियों से भिन्न हैं। इस जनजाति में राजत्व के गुण विद्यमान रहे हैं। फलतः इनके सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा शैक्षिक विचार अन्य जनजातियों से भिन्न होना स्वाभाविक है। शत्रुओं द्वारा पराजित होकर आदिम जीवन व्यतीत करना इनकी मजबूरी तथा आर्थिक कमजोरी इनके पिछड़ेपन का कारण है, परन्तु इनका स्वर्णिम अतीत निश्चय ही इनके धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा शैक्षिक जीवन पर अपना प्रभाव छोड़ने में सफल रहा है। यदि इस जनजाति के सर्वांगीण विकास पर ध्यान दिया जाए तो निश्चय ही ये स्वयं को विकसित करने में सक्षम होंगी तथा अपनी ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा कर सकेंगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. शिवशंकर सिंह– जनजातियों में हिन्दुत्व एवं बिहार की गोंड जनजाति, पृ0 150
2. राजेन्द्र अवस्थी– जंगल के कुल, पृ0 36
3. डॉ0 त्रिभुवन सिंह– हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ0 7
4. देवेन्द्र सत्यार्थी– रथ के पहिये, पृ0 11
5. वृंदावनलाल वर्मा– कचनार, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 1
6. वही

सहायक ग्रंथ :

1. आई0 सिंह– दि गोंडवाना एण्ड दि गोंड्स, लखनऊ, 1944
2. बी0जी0 बनर्जी तथा किरन भाटिया– ट्राइबल डेमोग्राफी ऑफ गोंड्स, दिल्ली, 1988
3. डब्ल्यू0 वी0 ग्रियर्सन द्वारा लिखित पुस्तक– दि मारिया गोंड्स ऑफ बस्तर, दिल्ली, 1991

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

Epistemology of Guru Nanak

Dr. Onkar Nath Dwivedi
Principal
Mahatma Gandhi Post Graduate College,
Fatehpur, U.P.

Epistemology of Guru Nanak

Epistemology or the theory of knowledge is that branchof philosophy which is concerned with the nature and scope of knowledge, its pre-suppositiions and basis, and the general reliability of claimto knowledge.

Guru Nanak was not a systematic philosopher. He did not annunciate any theory of epistemology. It is through the analysis of his Bani that we determine certain views about knowledge. His epistemological theory consist of an intuitive insight in to the supra-mundane realities as the ultimate stuff of the world, while taking up the old concepts of epistemology, Guru Nanak also puts forward his own views and considers this problem in a wider perspective of the world and individual and also for the understanding of the world.

Gurbani is an immeasurable treasure of variousphilosophical and religious facts. It needs specialized study to discover the means eulogized by the great guru for approach to the ultimate reality The countless hymns of the NankjBani speak of the problem of true knowledge needed for the self ad god-realization. It is under the stimulus o these great teachings that the present research paper work has been undertaken.

Concept of knowledge According to Guru Nanak

Knowledge is that which makes us aware of our own self, world and God. We must have the knowledge of truth and reality. Knowledge enlightens the human mind,. Human beings are endowed with the faculty of mind. If it not used, it will be a useless possession for mankind. The lamp of wisdom must be lit to discern effectively truth from untruth, real from unreal. It is said in the Gurbani,

"When the lamp is lit, darkness is dispelled.

So when one readeth the Vedas,

One's mind must be purged of sin

As when the sun riseth, the moon seemeth not,

So when wisdom dawns, ignorance remains not.

In the Sachkhand of Japuji, Guru Nanak tells us about the nature of truth which are ought to know, The realm of knowledge of basic realties leads to the ultimate truth.

Real knowledge lies in the realization of the powers and limitations to which man is bound in this world.

Guru Nanak has used many words and similes regarding world. It seems that he considers the world tobe an illusion. But actually he does not consider it to be Mays in the sense in which Shankra considers it. Some of the views are worth re-producing.

The world is like a dream, like a play in an instant the play is over.

Some attain to His Union, others depart in Separation.

This view proves the ephemeral nature of world. All relations here are but temporary.

"From the true One came the wind; From the wind came the water;

From the water among the three worlds; And the lord prevailed all"

"The world but comes and goes **Dedicate thyself to service in the world"**

Guru Nanak has time and again warned people to have a true knowledge o the world and not to be carried away by its outer-husk. In Japuji, Guru Nanak says, "Real was the creation of the real one". In Asa-di-Var, he says, "this universe is the dwelling place of the real one and the true one dwells in it". In the same long poem, Guru Nank has dealt more elaborately in advocating that no particle of the nominal world is urreal, because it is created by the Real.

Knowing one's own self is the second type of knowledge. One must properly understand one's personality. No special stress should be laid on either body or mind or spirit. There has been then a tendency to identify self with body as in the Charvaka or in the Sophists of Greek philosophy. But, the real self is quite different from body. Body is made of matter. It is subject to death, destr4uction and decay. It is liable to variations and mutations. Guru Nanak's concept of man, however, does not criticize the body as something vile.

Self-realization is a very important concept in all religions and philosophies of the world. In the west, self realization is identified with perfections. This concept started with Aristotle and was developed in the modern times by Hegal, Green and Bradley. All these people considered society to be very important for the development of personality. In Indian philosophy self-realization is generally identified with liberation. It is a kind of individual affair and every person has to work for his own salvation. Guru Nanak also considered the knwoeldge of self to be very important step for God-realization.

There are two main constituents of human being. One is the soul and the other is the body. The two are one in the sense, but one is subtle and the other is gross Dr. Sher Singh has interpreted the views of the Guru in this respect.

"The essential and more important constituent of our being is the soul element. We should always think of that, and not be lost in the visible. The soul is the supreme and essence of life. It is life itself. It is inherently active. The soul is also described as a resident in the colony of the body. The body is a temple of god and it should not be harmed. It is, therefore pure. It should be dept pure by thought, word and deed.

The third type of knowledge according to Guru Nanak is ultimate reality or God. Any individual who aspires to achieve liberation must do so with the grace and blessing of the Almighty. God-realization can be achieved through a numbers of ways like Neem-Simran, Intuition etc. says Guru Nanak.

By heartily repeating name, man's mind receives the reassure of real Divine knowledge and supreme bliss.

Guru Nanak considers knowledge as one of the essential steps for liberation combining it with devotion and good deeds. In Sikhism, the belief in the ultimate reality of God is necessary. It is the characteristics of a true Sikh to consider God to be the basic motivating force and the prime move of the universe.

The knowledge of god is obtained through a steadfast devotion, testimony of the Guiru, realization of divine immanence and intuition. It is not through ordinary perception that we are able to see God. It requires a transcendental knowledge. Guru Nanak says,"

"None can appraise and Narrate Thee

Thine describers remain absorbed in Thee."

There are certain values and virtues necessary for having the Knowledge of God. If these minimum eligibility conditions are not fulfilled, one cannot have the knowledge of God. There should be purity of heart, truth, non-violence, control over senses and desires etc. Thus truthful honest living is necessary for the realization of God. Sympathy, co-operation, cvharity mercy- benevolence and doing good to others are necessary for knowing and reaching God. In Rag Asa Guru Nanak says, "He alone is learned, who does good to others"

The knowledge of god can only be obtained if there is the proper guidance of the Guru. It is the true Guru that tell us about God, Kabir Says, "Once the Guru and the Lord both were standing, a conflict arose in the mind as to who should be respected and address first, the feet of the Guru were touched because it is only through him tat we know God". Guru Nanak also says, "the lord of life meeth spontaneously, yea, it is through the Guru that He is revealed."

Sources of Knowledge According To Guru Nanak

Empirical! Aspect of Knowledge is Perception

Empiricism is basically an epistemological doctrine. It considers experience as the soul and source of knowledge. The chief component of experience is perception. Guru Nanak considers experience e to be an important aspect of life which makes us wiser. Guru Nanak has made frequent references to perception as a source of knowledge. This perception refers to one's own self, world and God. One who perceives and understands the true nature of reality can only rise above the attachments of the world. W.H. Mcleod points out.

"How does man perceive the nature of God and the means of attaining Union with Him? An wine without sugar, but it contains the true name of the lord.

Relevance of Guru Nanak's Epistemology

The value of any research cannot be taken in isolation from other aspects of life. The aim of this research paper is to study the relevance and also the continued effect of Guru Nanak's teaching. It is a fact that this age has made amazing strides in the development of knowledge yet there are certain universal truths which hold good at all times.

"The world is on fire, save it thou in Thy Mercy and through whichever door it is saved; save it that wise pray. It is in this sense that the epistemological TEACHING OF GRUE Nanak can go a long way sin establishing peace, prosperity and contentment to the strife-torn people,. No society can aspire to build up the super-structure of progress and modernism without a stable socieal order Dr. Y.B. Chaan is to the opinion that "the synthesis of values which sGuru Nanak symbolized is as relevant today as it was 500 years ago.

Conclusion And Evaluation

Guru Nanak's epistemology demands scholastic and philosophical approach. It relies more on faith than an logical reasoning. It is not a systematic exposition attempted in a strict philosophical. Similes and metaphors from a major part of Guru Nanak's writings. Any attempt to write a specific theory of knowledge is bound to present many difficulties. It is more so when it has to be extracted out of pre-dominantly religious writings like those of Guru Nanak. In spite of such problems, it has been possible to arrive at a specific concept on the problems of knowledge. There are three phases of knowledge as explained at various places first is the knowledge of the world, the second is knowledge of self, and third is the knowledge of ultimate reality i.e. God. This knowledge is obtained through various sources like perception, inference, testimony and intuition. Guru Nanak recognized the importance of perception, inference and testimony but he considers intuition to be main source of higher and ultimate knowledge. The criterion of truth of Guru Nanak is that intuitive insight which is accompanied with inner illumination and God-realization Guru Nanak's epistemology therefore recognizes the above three types of knowledge and intuitive insight as the chief source of knowledge.

Reference

1. Div Bali andhera jai, Ved path mat(I) papa khair(1) Ugavaisur(u) no JapaiChand (u)Jahy gain pargas (u) again mitant (u) Guru granth p. 791
2. Jag (u) sapnabajibanikhinmah(i) Khel(a) Khelia(i) sanjogi mil eksevijogiuth(i) jai(i) Guru Grant p. 18.
3. Sachet e paaabhaia, pavantejal(u) hoi (i) Jaltetribhaan (u) sajiaghat (i) ghat(i) Jot(i) samoi.
4. Sabhduniyanaanjaniich(i) duniansevkamaiailbid p. 26.
5. Ih(u) sarira(u) Sabh(u) dharma(u) hai, Jisandar(i) sahekivich(i) joti(i) Ibid. P, 309.
6. Man mandir(u) tan(u) saji bar(i) is he madhebastuapar, Ibid. p. 180-181.
7. Mat(i) tat(u) gain kalian nidanhar(i) nam man(i) raman. Ibid. p. 505
8. Kimat(i) pa(i) nakahiaja (i) kahan vale tererahesama(i) Guru Granth p. 9.

9. Vidyaicharitaparupkari Ibid. p. 356.

10. Nanak Sahaj(i) mile jag Jivan(u) Satgurubujhujhaiai Ibid. 436.

11. W.H. Mclead, Guru Nak and the Sikh Religion, p,. 204 Oxford University, London, 1968.

12. Wazir Singh, Philosophy of Sikh Religion p., 105 Lahore Book Shop, Ludhiuana, 1969.

13. KivMul(u) pachhaniaatam(u) japaikisas(i) ghar(i) sursamavi.

14. PothiPuranKamaiaiBhavatiith(u) tan(i) paiai. Sach(u) bujh(u) an)i_ jalaiaiih(u) tel(u) diva iujalai. Guru Granth p. 25

15. Wazir Singh, Humanism of Guru Nanak, p. 70.

16. Kia bhavaikiadhudhiai guru sabaddikhaia. Guru Granth p. 417

17. Pothiparmesar Ka than(u) Sadh sang(i) gavah(i) Guru Gobind Puranbrahmgian (u) Ibid. p. 1226.

18. Sher Singh, Philosophy of Sikhims p. 157 S.G. P.C. Amritsar, 1980.

19. Bin(u) navai man(u) teknatikai Nanak bhukhna jai Hat(u) Patan(u) ghar(u) guru dikhaisahajesach(u) vaparo. Guru Granth p. 939,

20. Bhita(i) Kotguphaghar jai NaugharthapaiHukamrajai. Daravaipurakh(u) alekh(u) apari ape alekhlikhai Ibid. p. 1033.

21. Radhakishnan, An Idealist view of life georegeallen, Unwin, Indian re-print, India, 1976.

22. jaisimaiavaikhasamkibanitaisarakarigianvelalo,Ibid. p. 722.

23. Sacnh(u) ruaisabh(u) kiupar(i) sach(u) achar(u). Guru Granth p. 995

24. Jagat(u) jalendarakh(i) laiapanikirpadhar(i) Jit(u) duraiubaraititailaih(u) ubar(i). Ibid p. 853.

25. Iaugural address (quincentencary celebrations) Perspectives on Guru Granth (ed) Harbans Singh p. 13. seminar papers, Punjabi University, Patiala.

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

Non- Violence Resistance through Revolution of Opinions : Reflections on P.B. Shelley's Poem "The Masque of Anarchy"

SHIKHA MISHRA
Research Scholar
Department of English

Literature works as a magic wand to generate new ideas which can inspire us to make our earth a better place to live. It empowers us with hope; passion and strength that we need to create a better future for all humanity. No doubt, literature makes us think meticulously and question ourselves: do we believe that our visions about peaceful world are meaningless and irrelevant? Is it justifiable to give everything in the hands of leaders who don't care in the least about preserving us or our world, leaders whom we don't trust and over whom we have no control? Should we accept that violence and war are inevitable? Or should we take up the noble endeavour to talk to common people, to sing and to write songs for the common people about peace? In the present paper, my humble endeavour is to underscore the power of the lyrics which prepare us to understand the deep connections between non-violence and peace. Exploring the relationship between aesthetics and politics in P.B. Shelley's lyric The Masque of Anarchy, the paper attempts to underline the power of poetry which can bring revolution of opinions.

"The most unfailing herald, companion, and follower of a great people to work a beneficial change in opinion or institution, is poetry... the words linger in the memory over generation. And if the word carry revolution ideas, those ideas are communicated in poems far more thoroughly that in prose, in conversation or even in slogans"

Art work even the most aggressive , stand for non-violation because of the inherent freedom from the workday bustle and the practice individual, back of which is concealed the barbaric appetite of the species, which is not human as long as it permits itself to be ruled by this appetite and fused with domination"

Both Shelley and Adomo look at works of art as the nucleus of forces that can move the world . We just need to keep on reading and to allow the tremendous power of literature to enter our hearts and to lead us to noble path of peace and harmony. The Australian poet A.D. Hope, who usually regarded poetry and politics as separate, wrote at the time of the Vietnam conflict "That poem includes the lines:

"We are the young the drafted out
for wars their follies brought about
Go tell those old men, safe in bed

We took their orders and are dead"

Although such examples of nonviolent initiatives apart to refer to activities that occurred at one point in time, the biographies of the protesters show their fascination with the philosophy and language of nonviolence over long periods. Among English poets, P.B. Shelley is the most radical in his ideology and this can be traced in his poetry. The present paper attempts to analyze Shelley's poem. The Masque of Anarchy which has long been associated with non-violence or one of its approximate cognates. "passive resistance" or "civil disobedience". It has been called perhaps the first modern statement of the principle of nonviolent resistance. In the Cambridge Companion to Shelley. Timothy Morton has emphasized the power of this lyric that Henry David Thoreau's civil disobedience and Gandhi's passive resistance were influenced by Shelley's appeal for nonviolence in protest and political action in his The Masque of Anarchy. Written on the occasion of the Massacre at Manchester in 1819, (known as Peterloo Massacre) the poem reflects Shelly's political consciousness. He elaborates on the psychological consequences of violence met with pacifism. He appeals that the people should "Stand ... calm and resolute," with "folded arms and steady eyes," and thus shame the cruel rulers. It beckons hope in the people to return to the more natural and fair "old laws of England", drawing on "science, poetry, and thought." English poetry, the present paper intends to analyze Shelley's poetic appeal for non-violence resistance in The Masque of Anarchy.

The poem bears witness to the fact that the poets are the secret movers and shakers of global politics. This poem has sparked some of the most sweeping historical changes of the past two centuries. The poem was written in response to the Peterloo Massacre of 1819, in which British troops attacked a defenseless crowd of citizen protesters. The poet urges the "Men of England" to rise up-and stand still-against tyranny.

Stand ye calm and resolute
Like a forest close and mute
With folded arms and looks which are
Weapons of unvanquished war,
And let Panic, who out speeds
The career of armed steeds
Pass a disregarded shade
Through your phalanx undismayed.

This war cry is more on the order of Gandhi than the French revolutionaries, however, for it calls for virtuous principles and non-violence in the face of the violent ruling powers. To quote, Martin Luther King's Acceptance Speech, on the occasion of the award of the Nobel Peace Prize in Oslo, December 10, 1964.

"Nonviolence is the answer to the crucial political and moral question of our time the need for man to overcome oppression and violence without resorting to violence and oppression. Civilization and violence are antithetical concepts. Negroes of the United States, following the people of India, have demonstrated that nonviolence is

not sterile passivity, but a powerful moral force which makes for social transformation. Sooner or later all the people of the world will have to discover a way to live together in peace, and thereby transforms this pending cosmic elegy into a creative psalm of brotherhood. If this is to be achieved, man must evolve for all human conflict a method which rejects revenge, aggression and retaliation."

Violence cannot be an effective remedy to abolish exploitation. As Boserup and Mac comments: "Violence is condemned because it causes unnecessary suffering, dehumanizes and brutalizes both the victim and the executioner, and only brings short-term solutions (Boserup and Mack, 13). Writing in the same vein, Shelley appeals that people should "Stand ... calm and resolute." and thus shame the rulers into retreating in the face of the deep and wide strength of the British people. "Rise like lions" thus beckons hope in the people to return to the more natural and fair" old laws of England." drawing on "science, poetry, and thought." This poem is a rare representation, for Shelley, of ceaseless transformation without agony." The theme of agonizing transformation has appeared in several of Shelley's poems like England in 1819 and Ode to the West Wind which invoke death of revolt as prerequisites for change. Shelley continues the theme of revolution in the Mask of Anarchy, and manages to make a nonviolent revolt at least as violent as the revolutions he described in other poems. Shelley urges the English people to refrain from seeking blood for blood. but to instead use their numbers their words, and the laws a of England as weapons against the tyrants he censures in the opening stanzas of the poem. i'd like to point out how very fitting it is for Shelley, who in this poem is using words to spark rebellion, to encourage others to start a revolution with words. In his appeal, Shelley uses the metaphor to weaponize language.

This lyric offers one important innovation It's a description of a nonviolent protest, written before the term had ever been used or the tactic ever attempted. Although this poem isn't read or the taught much these days, but when it was first published in 1832, it reached an audience on both sides of the Atlantic. One of its American readers was Henry David Thoreau, who had it in mind when, in the late 1840s, he wrote "Civil Disobedience"- the first great prose formulation of the concept of nonviolent resistance. Thoreau's essay, in turn, was taken up by Tolstoy, whose book the Kingdom of God is Within You spread a Christianized version of the concept to millions of fervent readers.

In the twentieth century, Gandhi, a leader deeply influenced by Tolstoy, Thoreau and Shelly appeared on the scene and he often recited Shelley's poem to his own 'vast assemblies'.

The Mask of Anarchy (1819) which is to be analyzed in this paper, is a good example of Shelley's political consciousness. It was written on the occasion of the Massacre at Manchester in 1819, known as Peterloo Riots when on August 16, the cavalry was sent by the government to break up a concentration of frame workers that had gathered to demand the reform of parliamentary representation. The end of the Napoleonic Wars in 1815 has resulted in periods of famine and chronic unemployment,

exacerbated by the introduction of the first of the Corn Laws. By the beginning of 1819 the pressure generated by poor economic conditions, coupled with the lack of suffrage in northern England, had enhanced the appeal of political radicalism. In response, the Manchester Patriotic Union, a group agitating for parliament reform, organized a demonstration to be addressed by the well-known radical orator Henry Hunt. Shortly after the meeting began, local magistrates called on the military authorities to arrest Hunt and several others on the hustings with him, and to disperse drawn, and in the ensuing confusion, 15 people four years earlier. Historian Robert poole has called the Peterloo Massacre one of the defining moments of its age. In its own time, the London and nation papers shared the horror felt on the Manchester region, but Peterloo's immediate effect was to cause the government to crack down on reform, with the passing of what became known as the Six Acts.

In The Masque of Anarchy Shelley elaborates on the psychological consequences of violence met with pacifism. Shelley was in Italy at the time. When he received news of the incident, he was outraged. In his call for freedom, his poem is considered to be the first modern statement of the principle of nonviolent resistance. The poem beings with the speaker, sleeping in Italy, is awaken by a voice from England who summons him back to his home nation to witness a massacred that has recently taken place. It was characterized by anarchic murder rather than a true spirit of revolution. He personifies Murder, Fraud, Hypocrisy, various destructions, and Anarchy. Anarchy leads armed force through England, scaring the population. Soon, the "seven bloodhounds" get to England, where they massacre the innocent public. They continue to butcher the innocent as they travel through the land, eventually reaching London, where the "dwellers," who are by this time aware of the havoc these masked tyrants are running, are "panic-stricken" and attempt to run away. Shelly points out that the institutions in which people are encouraged to place their trust and faith are the very ones that are out to "trample" them. While the people of England continue to worship their king, they are unable to see the anarchist behind the mask.

While the group of "glorious triumphant" masqueraders continue to travel across England, intoxicated with their successful brutality and their power over their blind subjects, Shelley continues to refer to the wickedness of the ruling authorities being worshiped in England (such as at lines 69-73). Anarchy, so the argument goes, has been made king and employs his slaves to overtake the establishments of London. It is here that the tone of the poem begins to change from utter despair to a glimmer of optimism. The character "Hope" who is almost completely defeated, lies down in the path of Anarchy, imploring natural spirits to rescue her before she too is piled with the dust of death. The spirit that begins to rise comes from nature a mist and Shelley completely shifts the dark mood of the poem, to one with a small light of possibility. The next five or six stanzas are full of this image taking on the deeper power of nature as a source of greater power than that of man (as flowers, as stars, as waves).

The poet never leaves the specific situation of England, calling its situation dim but not entirely expired. The speaker argues that the only was to liberty is through

reason, the salvation of science and intellect, not through made up powers of religion and monarchy. Instead of trading blood for blood an wrong for wrong, the people should finally turn back to justice, wisdom, peace, and love in order to achieve liberty. They should be guided by Science, Poetry, and Thought and quite virtues. The true revolution should be measured and use words instead of swords, drawing on the old laws of England instead of the new laws of the power of words and negotiation was stressed by Martin Luther King Jr. He wrote in a letter from Birmingham Jail:

"Negotiation.. is the purpose of nonviolent direct action.. Nonviolent action seeks to create such a crisis and establish such creative tension that a community that has constantly refused to negotiate is forced to confront the issue. It seeks so to dramatize the issue that it can no longer be ignored"

Martin Luther King Jr's description of the purpose of his struggle for racial equality in the United States presents Non-violent resistance as a precursor, or catalyst, to conflict transformation. If negotiation is only possible when the needs and interests of all those involved and affected by the conflict are legitimated and articulate (Lederach, 14) then nonviolent struggle is its necessary complement, by helping marginalized communities to achieve sufficient leverage for an effective negotiation process.

When the tyrants fight back, the people should let their anger show itself until the tyrants fall back in shame. In Mask of Anarchy, Shelley calls for a justified "assembly" of rulers to watch over the English land, where the "workhouses" and prisons are treated just as palaces.

Shelley's emotionally polemic poem is intended to further the cause of governmental reform, an issue that was dividing England at the time. Some of the reform efforts Shelley advocated were expanded suffrage and greater freedom of speech press, and assembly. The poem supports these causes by metaphorically elaborating on the concepts of tyranny and liberty, describing the effects of each in concrete, poignant images, In simple yet searing language the poem vehemently denounces tyranny as exploitative and as going against the very laws of nature.

Liberty, however, is a God-given right of every person. Living by the precepts of liberty will ensure a happier, more fruitful existence.

Liberty is seen in concrete and practical terms. The poem avoids any abstraction that would make freedom seem unrealistic and overly idealistic, a superstition doomed soon to pass away. On the contrary freedom is bread/and a comely table spread. It provides for the very necessities of life, clothing and food, things denied under tyranny. Freedom is also associated with justice, providing for righteous laws that would forbid the kind of exploitation allowed by tyranny. Here one can see that Shelley did not advocate lawless revolution Liberty does not mean the freedom to ignore law, but the establishment of equitable law.

What is Freedom? Ye can tell
That which Slavery is too well,

For its very name has grow
To an echo of your own
Let a vast assembly be,
And with great solemnity
Declare with ensured words, that ye
Are, as God has made ye, free!
The old laws of England-they
Whose reverend heads with age are grey,
Children of a wiser day;
And whose solemn voice must be
Thine own echo-Liberty!

Lawlessness would be no improvement over tyranny. In fact, the masquerade of tyrants and the poems title itself show that Shelley equates tyranny with anarchy. Tyranny creates gross inequities that will inevitable cause revolution and anarchy. Shelley warns of this by reminding the reader of France (Gaul in stanza 59) where injustice led to bloody revolution and to a more malevolent tyranny under Napoleon. this is not a call for violent revolution or bloody revenge, but a plea for righteous law as suits the wisdom and reason of liberty. Shelley created such a horrifying vision of tyranny that its antithesis-liberty-seems society's only legitimate haven. To quoto Mathew C. Borushko.

"The Mask dramatizes the necessity of integrating aesthetic experience and political practice in order to achieve the critical self reflection required for non violent praxis, and it focuses on the uniquely inherent relationship between non-violence and the aesthetic."

The foregoing discussion can be summed up with an often quoted statement by Shelley. "Poets are the unacknowledged legislators of the world". Not surprisingly, this claim has earned some snickers from people who think of poets as barely able to legislate their own grooming habits. But Shelley was speaking metaphorically, of course, and also fairly broadly; his general point was that language is the decisive force in human affairs.

Culture, religion, and politics derive from narrative, myth, and rhetoric-and all of these things derive from poetry. Literature is a often reduced in the general public's eyes to a quaint academic pursuit, or a noble but remote spiritual undertaking, or a single specialty "genre" among many. The present paper underlines the need to think of literature as an underground cultural wellspring that bubbles up everywhere.

Reference

1. Adorno, Theodor(1997) Aesthetic Theory Trans. Robert Hullot-Kentor, University of Minnesota Press, pp 241-242

2. Boserup, Anders and Andrew Mack (1974), War Without Weapons. London: Frances Pinter, pp. 13

3. Borushko, Mathew (2910) Violence and Nonviolence in Shelley's Mask of Anarchy, Keats-Shelley Journal Vol LIX, The Keats-Shelley Association of America, Inc., New York, pp 960113

4. King, Martin Luther, Jr. (1964), Letter from Birmingham Jail, Why We Can't Wait. New York: Signet Books, pp 76-95.

5. King, Martin Luther, Jr. (1964), Acceptance Speech, on the occasion of the award of the Nobel Peace Prize in Oslo, December 10m 1964.

   http://www.nobleprize. org/nobel prizes/peace/Iaureates/1964/king-accceptance en.html.

6. Lederach, John Paul (1995), Preparing For Peace: Conflict Transformation across Cultures. New York: Syracuse University Press, pp. 12-16

7. Shelley P.B. (1821), A Defense of Poetry http://www.bartleby.com/27/23.html.

8. Shelley, P.B. (1819), The Masque of Anarchy. http://www.bartleby.com

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

Health and Nutrition of Rural Women

SATYA BAHADUR SINGH
Assistant Professor
Med/Mod History Department
Mahatma Gandhi Post Graduate College
Fatehpur, U.P.

According to WHO, the meaning in of health should not be associated with only disease and weakiness, it is physical, mental and social form of health but this concept of health is imaginary. Health is basic necessity for all humans and a fundamental right. It assumes greater importance in case of women since they constitute half part of whole population or more than one third of the labour class.

Generally women, and especially those living in rural area, are not conscious about their health due to illiteracy or lack of knowledge. They don't know the importance of nutrition. A survey was conducted among 200 rural women in M.P. keeping in mind the following factors:

1. The services related to health in different financial group are different.
2. The social and cultural power of view for rural women resulting in a bad effect on their nutrition and health.
3. Lack of knowledge related to health and nutrition. Literacy is the basic reason behind it.

Sexual discrimination, marriage in early age resulting nearly motherhood, improper health awareness during pregnancy, lack of proper knowledge regarding nutrition and healthy food are some of the factors related to food and nutrition among rural women, these factors finally resulting problems related o health such as : low birth rate, low ratio, anemia, low weigh etc. The health of the women affects her whole family. She is not bound only by housework but is also involved in earning activities outside home. They play an importance role in rural financial structure. Thus the health of women is essential for the financial upliftment of the whole country. Due to their bad health women cannot perform the activities of the family properly and also they are not ready to perform in the financial activity.

"Health is not everything but everything is nothing without health"

The World Health Organization (WHO) has defined health "Health is state of complete physical and mental well being and not merely the absence of disease". The United Nationals Development Project (UNDP) has brought out the Human Development Report-2003 with focus on Millennium Development Goals (MDGs) set

for 2015. It has presented an action plan for reaching the goals related to health sector is as follows:

1. Reduce infant and child mortality rates fill 2015.
2. Reduce maternal mortality rates till 2015
3. Provide access for all who need reproductive health service.
4. Controls the speed of HIV/Aids and check the incidence of Malaria, plague and other major disease.

India has adopted the Millennium Development Goal (MDGs) and has prepared many key policy documents. The goals have been included in the 10th and 11th Five Year Plans. Indian Government has taken initiatives for health and has move in the right direction. The Government of India has launched a National Rural Health Mission (NRHM) on 12th April 2005, with the objective to provide integrated, comprehensive and effective primary health care to the unprivileged and vulnerable sections of the society specially women and children by improving availability and quality of public health services.

The National Rural Health Mission(2005-12) has provided effective health care to rural population throughout the country with special focus on 18 states which have weak public health indicators and poor infrastructure. Madhya Pradesh is one of them.

Madhya Pradesh is one of the largest states of India. The state is marked with a complex social structure, a predominantly agrarian economy, difficult and inaccessible terrain and scattered settlements over vast area that together pose several problems to health service delivery system. According to the 2011 census, Madhya Pradesh has a population of about 7.26 Crore, which is around 6% of the country's population. Madhya Pradesh belongs to the category of less developed states of the county, from the point of view of per capita income, literacy, urbanization, infrastructure facilities and other development indicators. According to Table No. 1 NHM instate (State wise information), condition of health infrastructure of Madhya Pradesh, is as below:

Table No. I-II

Demographic, Socio-economic and Health profile of Madhya Pradesh state as compared to India Figures

Indicator	MP	India
Total Population (In Crore) (Census 2011)	7.26	121.01
DecadalGrowth (%) (Census 2011)	20.30	1764
Crude Birth Rate (SRS 2011)	26.9	21.8
Crude Death Rate (SRS 2011)	8.2	7.1
Natural Growth Rate (SRS 2011)	18.7	14.7
Infant Mortality Rate (SRS 2011)	59	44
Maternal Mortality Rate (SRS 2007-9)	269	212
Total Fertility Rate (SRS 2011)	3.1	2.4

Sex Ratio (Census 2011)	930	940
Child Sex Ration (Census 2011)	912	914
Schedule Caste population (in crore) (Census 2011)	0.91	16.6
Schedule Tribe population (in crore) (Census 2011)	1.22	8.43
Total Literacy Rate (%)(Census 2011)	7.063	74.04
Male Literacy Rate (%) (Census 2011)	80.53	82.14
Female Literacy Rate (%) (Census 2011)	60.3	65.46

Health Facilities in Madhya Pradesh			
Particulars	Required	In position	Shortfall
Sub-Centre	12314	8869	3445
Primary Health Centre	1977	1156	821
Community Health Centre	494	333	161
Health Worker (Female)/ANM at Sub Centres & PHCs	10025	10204	*
Health Assistant (Male)/at Sub Centres	8869	2733	5136
Health Assistant (Female) LHV at PHCs	1156	546	610
Doctor at PHCs	1156	293	863
Obstetricians & Gynecologists at CHCs	1156	814	342
Pediatricians at CHCs	333	73	260
Total specialist at CHCs	333	67	266
Radiographers at CHCs	1332	567	1056
Pharmacist at PHCs & CHCs	333	192	141
Laboratory Technicians at PHCs & CHCs	1489	678	811
Nursing Staff at PHCs & CHCs	1489	609	880
	3487	2491	996

(Source: RSH Bulletin, March, 2012,M/O Health & F.W., GOI)

There are two parts of the present study; Health is first part of this study. Second part is related to Nutrition. Nutritionist science of physical development. It is related to individual and their food habits. Physical, biological as well as psychological and social parts are included to Nutrition Individuals and their food habits are affected to these aspects. Nutrition works mainly:

1. Give energy to grow
2. To give physical and mental health
3. To save disease.

Health and Nutrition are fundamental right of the women and basic necessity because of various reasons. Firstly three yare half part of whole population or more than one third of labour class. Several studies have proved some causes, which are

responsible to poor health and nutritional condition of women. Some responsible causes for poor nutritional conditions are as follows:

1. Sexual discrimination
2. Marriage in early age
3. Resulting in early motherhood.
4. Improper health awareness during pregnancy.
5. Lack of proper knowledge regarding nutritional and healthy food.

The health of the women affects her whole family. Today women are not confined to domestic work and household, they are involved in many socio economic activities. Women play an important role in rural financial structure also.

Generally, women are not very conscious about their health, they are careful about health and nutritional values for their family, mostly women neglect her minor physical problem. This scenario is not only in village area but it is bob served in urban area. But in urban atmosphere (Education and development is positively affected to women's consciousness about health and nutrition's. Rural areas condition is very poor. They are not aware about the importance of health and nutrition. They take food as a daily need, this conditions becomes due to illiteracy or lack of knowledge.

M.P. Govt. Has planned for many schemes for women and children health and nutritious. Janany Suraksha Yojana, Vijayaraje Janany Kalyan Bima Yojana, Garib Mahilaon Ka Prasav Purv Sahayata Rasihi, Prasav Parivahan avem Upchar Yojana, Prasave SAhoygi Yojana, Mahila avem Bal vikas Vibhag. Public Health Department and family welfare Department are running these Yojanas.

Objectives:

Health and Nutrition are fundamental human rights and state is responsible for the health of its citizens. Since Government of India adopted the goals and fixed under Millennium Development Goals (MDGs) from September, 2000 in whole country. After 11 years of the adoption of these goals it becomes necessary to find out how it has shown impact on citizens living in Madhya Pradesh and where Madhya Pradesh stands. Report submitted by National Rural Health Mission (2005-12) in reference to the achievement of these goals.

For maintenance of good health throughout the life, diet and nutrition are important factors. However the following factors influence good health and nutrition. Income of the family, individual preference and beliefs about health & nutrition, geographical, environmental social and economic factors, these factors all interact in a complex manner to shape dietary consumption pattern. This study was conducted on these reasons:

1. Study the status of health and nutrition of women in rural area.

2. Policies and programme started by Government of Madhya Pradesh to improve health and nutrition.

Methodology

A study of Health and Nutrition of Rural Women in Madhya Pradesh was conducted in two villages of Bhopal and Jabalpur (M.P.) The sampling method was adopted to conduct the study. 200 rural women as respondent were selected for this study was by taking interviews. Group discussion and secondary data collection.

Hypothesis

Social and cultural aspects are responsible for rural women status for health and nutrition.

1. Poor literacy is a main cause of lack of awareness for health and Nutrition.
2. Insufficient health services in rural area.

Analysis:

A study and been conducted in two rural areas of Bhopal district under the assigned theories regarding the conditions of health and nutrition in rural women. The first village Bairagarh Chichli comes under the control of Nagarpalika with the population of (2231), and the second one is Kajlikheda comes under the control of Panchayat with the population of (1410). First village of Jabalpur district is Ghatpiparia with the population of 2200 and second is Mukanwara with the population of 1768 and Jablapur. The condition of nutrition and health is studied in these villages considering different aspect. During the study it is found that in the context of effectiveness of factors, such as social, cultural and financial, the conditions of women in these areas is still of a lower category. There is a prejudice among these women that women have a higher resistance power, they don’t need any medical treatment and that they can get rid of any kind of disease with a more domestic treatment. But also among the new generation i.e. in the age group (20-30 yrs) this prejudice is not considered.

There is no awareness found for pregnant women regarding the health and nutrition in the rural areas. The problem of lack of blood (Anemia) is very common among pregnant women and the women with the new born baby. Women are unaware of the methods of making their food full of nutrition’s. There is a negative relation between nutrition and the rising inflation. Nutritional diet is very important for the women, specially for the pregnant ones and one with the new born baby, but it is not possible for the women of the rural areas belonging to the poor families. Also they are unaware of the fact, what are the various nutritional elements and how can they be admitted in regular food.

Education is the basic right of every citizen alongwith this it is also a basic factor being good health. Education developers awareness and thus directly effects health awareness.

Educated women are found to be more aware of their health than the uneducated women. Rural women are unaware of the disease related to women and also they a even don't know about the precautions of these diseases. Women of the age group (20-30 yrs) with a educational standard of primary level are found to less aware of the health and nutritious food. These women want to educate their children so that they can be made more aware of their health. There is a little information regarding iron and calcium, found in these women but, how these elements can be added to the food for the pregnant women and women with new born baby is the one question, of which they have no answer. These women don't know that jaundice is a disease caused by contaminated water. They are also unaware of getting rid of the disease like Malaria and Cholera. Women with the higher age group (40-50 yrs) are found to be effected by the disease like diseases related to the Uterus, Anamia, Joint Pains, Osteoporosis etc. but these women held their age responsible for these diseases and thus they are less concerned. The effectiveness of various government schemes play a very important role in bringing health awareness in rural areas. The government schemes, whether small or large are directly related to progressive changes, but their success depends on their execution. In this context, various schemes of the M.P. Government i.e. (1) Janni Suraksha Yojna, (2) Ladli Lami Yojna, (3) Muskaan, Ayushmati Yojna, (4) Pre-birth Financial Aid for Women, (5) Maternity Transport and Treatment Policy (6) Maternity Benefit etc. conducted by the Mahila Avem Bal Vikas Department, and Lok Swasthya Kalyan Department, Showed the real face of these schemes through their implementation.

The Primary Health Centres (PHC) are less effective in rural areas. People in the rural areas prefer the urban health clinics for their treatment and also the women in rural areas have a negative attitude towards government hospitals. The Aaganwari centres running in the rural areas are presenting some positive results. These centres are providing basic health amenities such as medicines of iron and calcium to the women and children, and are playing a positive role in this area. These Anaganwari centres organize several programmes for pregnant women with the new born baby and the children such as Godbharia and the Birthdays. Through these programmes along with giving them things of good blessings, they are also made aware of health. They are also provided medicines and medical cards. Various things related to health awareness are provided on birthday programmes. Vaccinations and medical tests are conducted on various fix dates in these centres. The government of M.P. has provided a new medical transport facility which is known as No. 108.

These centres also take use of this facility. Through this facility one can get medical assistance in the city very soon. There is a developed negative attitude found in the urban government hospitals towards the rural women. According to them, lack of blood and the condition of jaundice is a common disease found in pregnant women. At first they prefer delivery at home and when the condition goes critical they get hospitalized and due to the late process of treatment in these hospitals they die. There is also lack of proper regular services in the PHC. The doctors visit the centres only once in a week on a particular day and distribute medicines, vaccines and make other

medical check ups. They don't have the right idea of the financial aid given to the Anangwari workers and thus they remain unsatisfied with the various government schemes. Along with this the conditions of basic amenities in the area and the Aanganwari centres was not found to be satisfactory.

Conclusion:

The fact that comes out from the study of health and nutrition in the rural women is that the rural areas is backward in social, financial and educational fields till now. The low social standard of women and their silent greenness to this proves that the rural women are still not free to make their own decisions. Early marriages resulting in early motherhood, for health conditions are some supporting examples. Even in these conditions women in rural areas provide financial assistance to their families by working in fields as labours etc. Poverty and ill-health has positively inter related and nutritious diet is a prime requirement but poverty is the main obstacle in between. Fruits, pulses, milk and green vegetables are the main elements of food, but due to rising prices they cannot be added to it. Apart from this consciousness regarding nutritious elements in the food is also very important. The disease found in rural women such as anemia, jaundice etc. gives a direct indirect of their poor health. The government of MP has framed various schemes and policies to gain the million goal and also made programmes for their proper implementation. But the implementation programme has yet not reached their main objectives. There are many loop holes in the implementation of these programmes that needs to be sorted out. Rural people of Madhya Pradesh especially women in the village need to be empowered in areas of income generation, education and their role in Social upliftment to enable them access to health services. Health facilities must be equally distributed to ensure equal physical access. It is imperative for any planning effort to think beyond health care services to the more multifaceted social conditions that impact health. In the same context, some of given suggestions are:

Suggestions:

Mixed result have been found by the study of health and nutrition conditions of rural women. The various running health and nutrition schemes of the government of MP specially for women are very important along with the government has also laid emphasis on health and nutrition of women in now declared women policy. Studying the primary and secondary factors. It is important that the woman should be given reference on social levels. They should be given medical treatment instead of traditional treatments at home, they should also understand their importance as other members of the family. For this women have to take the first step smaller family, educated women in the family are the most important factors. The implementation of the government schemes depends on the awareness of people and also on the fact that how they use it. The low speed in the implementation of these schemes among people. Proper attention must be given to keep on eye on the facilities given in activities of the Aanganwari centres.

Reference

1. Thurston, W.E. And L.M. Meadows, 2003. Rurlity and Health: Perspectives of Mid-Life women, Rural and Remote Health 3:219 (online) http://www.rrh.org.an
2. Sociology in India – Book 2: Indira Gandhi National Open University MSO 004
3. Rural Social Development : Development of Rural Women MRDE-101 : Indira Gandhi National Open University.
4. Rural Social Development – MRDE 101 – Indira Gandhi National Open University
5. Madhya Pradesh health Sector Reform Programme – Programme Memorandum May 2007 Govt. of Madhya Pradesh Govt. of India, download
6. State Health policy of MP (Draft)-2007 http://www.health.mp.gov.in/healthpolicy.htm.
7. District level household and facility survey Ministry of Health and family welfare 2007-2008 DLHS-3
8. Visiting Madhya Pradesh A report on the implementation of the national Maternity Benefit scheme and JSY in Four district of Madhya Pradesh Nick Robinson; Yale Fox Fellow at Jawaharlal Nehru University in association with Vikas Samvad (Bhopal) April 2007#
9. Human Development report 2007
10. National profile on women health and development in India Edited by DR. Sarla Gopalan and Dr. Mira Shiva, World Health organization April 2000
11. State wide information 2011 Home-NH Ministate http://nrhm.gov.in/Nrhm-in-state/state-wise- information/MadhyaPradesh.htm.

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

साधारणीकरण

यशवंत सिंह वर्मा
सहायक अध्यापक (हिन्दी)
राजकीय हाई स्कूल, टाण्डा सादात,
नवाबगंज, बरेली

मनुष्य अपनी आदतों और रुचियों में विशिष्ट है किन्तु भावों आदर्शो और मूल्यों में सामान्य है। सभी मनुष्य करुणा, प्रेम आदि भावों से प्रभावित होते है। न्याय, सत्य आदि में सभी आस्था रखते है। मंच पर दशरथ–मरण के दृष्य को देखकर सभी शोकाकुल अनुभूति के विभाव आदि, शोक विह्वल दर्शक, विह्वल दर्शक सभी साधारणीकृत होकर शोकानुभूति के सूत्र में निबद्ध हो जाते हैं। कवि की अनुभूति केवल कवि को नहीं होती वरन् वह सभी सहृदय दर्शकों को भी होती है। इस प्रकार की अनुभूति साधारणीकरण है। अतः विभावन व्यापार द्वारा धनी भूत स्थायी भाव का सभी दर्शकों के हृदय में एक साथ अभिभूत करना साधारणीकरण है।

भाव का प्रभाव बनकर समान रूप से सभी सहृदयों को एक साथ अभिभूत करना साधारणीकरण है भाव ही सम्प्रेषित होकर प्रभाव बन जाता है। सम्प्रेषिणीयता साधारणीकरण का मूल आधार है। भाव का सम्बन्ध सहृदय कवि से है और प्रभाव का सम्बन्ध सहृदय दर्शक से है। इस प्रकार सहृदयता ही कवि तथा दर्शक के मध्य सम्बन्ध स्थापित करती है। साधारणीकरण का आधार सम्प्रेषणीयता है और सम्प्रेषणीयता का आधार सहृदयता है।

साधारणीकरण का सम्बन्ध मूलतः रस सिद्धान्त से है। भरत के रससूत्र 'विभावानुभाव व्यभिचारि सयोगरस निष्पत्तिः' के व्याख्याकारों में भट्टनायक ने सर्व प्रथम रस के सन्दर्भ में साधारणीकरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

भट्टनायक का अभिमत : भट्टनायक ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यो भट्ट लोल्लट और शंकुक के मतों का खण्डन करते हुए यह स्पष्ट किया कि रस की न तो उत्पत्ति होती है न प्रतीति वरन् रस की 'भुक्ति' होती है। उनके अनुसार रस आस्वादनीय है उन्होंने रसास्वादन की स्थिति तक पहुंचाने वाले तीन व्यापारों को बताया है। अभिव्यापार भावकत्व व्यापार तथा भोजकत्व व्यापार। अभिधा के द्वारा सामाजिक काव्य के मूल अर्थ से अवगत होता है इसके पश्चात अभिधा व्यापार की परिणति भोजकत्व व्यापार में होती है। भावकत्व व्यापार का स्वरूप विभवादि का साधारणीकरण। जब भावकत्व व्यापार के द्वारा विभावन व्यापार (आश्रय, आलम्बन, उद्दीपन अनुभाव संचारी) स्वगत और परगत की सीमा से ऊपर उठ जाता है। इस प्रकार विभवादि के साधारणीकरण से भावकत्व व्यापार द्वारा सभी के द्वारा भावित आस्वाद्य रुप को प्राप्त होती है।

अभिनव गुप्त का अभिमत : अभिनव गुप्त के अनुसार साधारणीकरण के दो स्तर है। भाव का प्रभाव बनकर समान रूप से सभी सहृदयों को एक साथ अभिभूत करना साधारणीकरण है भाव ही सम्प्रेषित होकर प्रभाव बन जाता है। सम्प्रेषिणीयता साधारणीकरण का मूल आधार है। भाव का सम्बन्ध सहृदय कवि से है और प्रभाव का सम्बन्ध सहृदय दर्शक से है। इस प्रकार

सहृदयता ही कवि तथा दर्शक के मध्य सम्बन्ध स्थापित करती है। साधारणीकरण का आधार सम्प्रेषणीयता है और सम्प्रेषणीयता का आधार सहृदयता है।

साधारणीकरण का सम्बन्ध मूलतः रस सिद्धान्त से है। भरत के रससूत्र 'विभावानुभाव व्यभिचारि सयोगाद्रस निष्पतिः' के व्याख्याकारों में भट्टनायक ने सर्वप्रथम रस के सन्दर्भ में साधारणीकरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

भट्टनायक का अभिमत : भट्टनायक ने अपने 'पूर्ववर्ती आचार्यों भट्ट लोल्लट और शंकुक के मतो का खण्डन करते हुए यह स्पष्ट किया कि रस की न तो उत्पत्ति होती है न प्रतीति वरन् रस की 'मुक्ति' होती है। उनके अनुसार रस आस्वादनीय है उन्होंने रसास्वादन की स्थिति तक पहुँचाने वाले तीन व्यापारों को बताया है। अभिव्यापार भावकत्व व्यापार तथा भोजकत्व व्यापार। अभिधा के द्वारा सामाजिक काव्य के मूल अर्थ से अवगत होता है इसके पश्चात अभिधा व्यापार की परिणति भोजकत्व व्यापार में होती है। भाकत्व व्यापार का स्वरूप विभवादि का साधारणीकरण। जब भावकत्व व्यापार के द्वारा विभावन व्यापार (आश्रय, आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव संचारी) स्वगत और परगत की सीमा से ऊपर उठ जाता है। इस प्रकार विभवादि के साधारणीकरण से भावकत्व व्यापार द्वारा सभी के द्वारा भावित आस्वाद्य रूप को प्राप्त होता है।

अभिनव गुप्त का अभिमत : अभिनव गुप्त के अनुसार साधारणीकरण के दो स्तर है।

(1) विभवादि का साधारणीकरण तथा स्वयं सहृदय का साधारणीकरण। साधारणीकरण की स्थिति में विभवादि रूप में उपस्थित सीता राम आदि पात्र अपनी विशिष्टता खोकर सामान्य व्यक्ति रह जाते हैं। ये साधारणीकृत रूप में देश काल की सीमाओं से मुक्त हो जाते है। इसी प्रकार सामाजिक भी व्यक्तिगत सीमाओं से ऊपर उठ जाता है। सामाजिक के साधारणीकरण का अर्थ है उसके हृदय में संस्कार रूप में अवस्थित स्थायी भाव का साधारणीकरण ।

विभवादि व्यंजको के सम्पर्क से सामाजिक के हृदय में वासना रुप में स्थित स्थायी भाव हो रस रूप में व्यंजित होता है। सहृदय इसी लोकोत्तर रस का रसास्वाद करता है। वैसे तो अभिनव गुप्त का साधारणीकरण सिद्धान्त भट्टनायक के ही सिद्धान्त का संशोधित रूप है तथापि इसकी कुछ मौलिक विशेषताएँ है जो अभिनव को शीर्ष पर स्थापित करती है।

पहली विशेषता है रसाभिव्यक्ति को व्यंजना व्यापार से सम्बद्ध करना इससे रस और ध्वनि दोनों सिद्धान्तों का समन्वय हो जाता है।

दूसरी विशेषता है उन्होंने साधारणीकरण काव्य और कला की प्रभाववत्ता का नैसर्गिक निकष माना।

तीसरी विशेषता है। तीसरी विशेषता है इन्होंने विभावन व्यापार को ही स्थायी भाव के भावन का आधार बनाया। इसमें दोनों का साधरणीकरण माना।

चौथी विशेषता है। उन्होंने रस की अलौकिकता की स्थापना की। उनकी यह अलौकिकता विरल और अनूठी होने के उपरान्त भी लोक के बाहर नहीं है। हिन्दी के आचार्य शुक्ल जीवनानुभूति, काव्यानुभूति और रसानुभूति को लोकानुभूति से अनुप्राणित मानते हुए रस को ब्रह्मानंद–सहोदर नहीं मानते।

डॉ० नगेन्द्र चिन्तन और कल्पना को अनुभूति रूप में मानते हुए इसे रस का मूलाधार मानते तत्वतः साधारणीकरण काव्य के आस्वादन का सार्वभौम सिद्धान्त है। यही सिद्धान्त

प्रकारान्तर से रिचर्डस तथा अन्य पाश्चात्य काव्य चिन्तकों के द्वारा सम्प्रेषणीयता के सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत हुआ है सम्प्रेषणीयता अथवा साधारणीकरण की क्षमता ही काव्य की मूल जीवनी शक्ति है।

इस प्रकार रस सिद्धान्त के द्वारा संवेदना का परीक्षण होता है। रस को हिन्दी नौ भागों में विभाजित किया गया है। रस के प्रकार पर विचार करते हुए डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है[1] – भरत ने मूलतः आठ ही रस और तदनुसार आठ ही स्थायी भाव माने हैं उनमें भी श्रृंगार, वीर, रौद्र और वीभत्स तदनुसार रति, उत्साह, क्रोध और जुगुप्सा को प्रधान और मौलिक माना है, और हास्य, करुण, भयानक तथा अद्‌भुत तद्‌नुसार हास, शोक, भय, तथा विस्मय को गौण एवं व्युत्पन्न माना है। परवर्ती आचार्यों ने उसे स्वीकृत नहीं किया। शान्तोऽपि नवमो रसः कहकर शान्त भी जोड़ दिया। शान्त रस का भाव निर्वेद माना गया है। इन नवों रसों में श्रृंगार को रस राज कहा गया।

इस प्रकार रस सिद्धान्त जो रस सम्प्रदाय में विकास पाता है। आलोचना या समीक्षा में विशेष महत्व रखता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, शब्द शक्ति, अलंकार तथा रस को भारतीय समीक्षा का आधार निर्धारित करते है। वे मानते है कि रस ही प्रमुख है अलंकार गुण, वकोक्ति रस के सहयोगी होने पर ही अर्थवान है।

इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि रस का विवेचन वे सभी करते है चाहे वह अलंकार सम्प्रदाय हो, रीति सम्प्रदाय हो, वक्रोक्ति सम्प्रदाय हो ध्वनि सम्प्रदाय हो, किसी भी काव्य की आलोचना विना रसानुभुति के विवेचन के विना संभव नहीं है अब क्रमानुसार अलंकार सम्प्रदाय का विवेचन प्रस्तुत है।

अलंकार सम्प्रदाय

आचार्य वलदेव भारतीय साहित्य शास्त्र में लिखते है कि अलंकार मत के प्रवर्तक आलंकारिक भाव है। इस मत के पोषक है भामह के टीका कार उद्‌भट्‌ट। दण्डी काव्य के पोषक अंगो को अलंकार मानते है[2] इस सम्प्रदाय के अनुसार अलंकार ही काव्य की आत्मा है।

भामह, दण्डी, उद्‌भट आदि आचार्य अलंकार को काव्य का केन्द्रीय प्राणतत्व मानते है। दण्डी का कहना है कि 'काव्य–शोभा करान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते' अर्थात काव्य को शोभित करने वाले धर्मों को अलंकार कहते है इसमें शोभा शब्द आन्तरिक और वाह्य दोनों प्रकार की समन्वित शोभा का द्योतक है।

अलंकार वादियों ने भाव और भाषा की भंगिमा को अलंकार का विधायक तत्व माना। उन्होंने स्वाभावोक्ति को अलंकार न मानकर वक्रोक्ति को अलंकार माना अलंकारवादी वर्ण्य विषय को अलंकार्य मानते थे अलंकार वादियों के इस आधार को रस ध्वनि वादियों ने उपरी शोभा मात्र माना।

दण्डी आदि अलंकार वादियों ने समूचे रस प्रपंच को रसवत् प्रेयस्वत्, उर्जस्वित, नामक अलंकारों में अन्तर्निहित करके तथा ध्वनि का पर्यायोक्ति, समासोक्ति अर्थान्तर न्यास, विशेषोक्ति वक्रोक्ति आदि अलंकारो में अन्तर्भावित कर दिया। इतना ही नही अलंकार वादियों ने प्रबन्ध काव्य और नाटक से सम्बद्ध उपादानों की भी अलंकार की परिधि में समेटने का प्रयास किया। दण्डी ने प्रबन्ध काव्य को भाविक अलंकार के अन्तर्गत रखा। अलंकारवादियों ने अलंकार को जो व्यापकता दी उसमें अनुभूति और अभिव्यक्ति का सम्पूर्ण सौन्दर्य समाहित होता सा लगता है

परन्तु विचारणीय है अलंकार का अर्थ आभूषण है अलंकार के प्रवर्तक भामह ने कहा था कि 'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिता मुखम अलंकारों के विना काव्य वैसे ही सुशोभित नही होता जैसे नारी का सुन्दर मुख भी आभूषणों के विना शोभित नही होता है। (काव्यालंकार, 1/13)

अलंकार सम्प्रदाय का विकास धीरे–धीरे हुआ है भरत के नाट्य शास्त्र में चार ही अलंकारों नाम निर्देश मिलता है– अनुप्रास, उपमा, रुपक और दीपक। अतः साहित्य के मूलभूत चार अलंकार हैं जिनमें से एक तो शब्दालंकार है तथा तीन अर्थालंकार। इन्ही चार अलंकारों से विकसित और परिवर्धित होकर कुवलयानंद में अलंकारों की संख्या 12 तक पहुँच गई है। इस सन्दर्भ में वक्रोक्ति अलंकार की उदाहरण लिया जा सकता है। भामह से लेकर कुन्तक तक वक्रोक्ति का मनोरम विकास भारतीय आलोचकों के चिन्तन का फल है। वक्रोक्ति को भामह अलंकारो का जीवनधारक तत्व मानते है। उनके विचार से ऐसे अलंकार की कल्पना नहीं की जा सकती जो वक्रोक्ति से रहित हो[3]–

सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते।
यन्नोऽस्या कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनया विना।।

वामन ने इसी को अर्थालंकार माना है। रुद्रट इसे शब्दालंकार के रुप में स्वीकार किया है आलंकारिको ने अलकारों के विभाजन के अवसर पर उनके मूलतत्वों पर भी विचार किया है। सबसे पहले रुद्रट ने अलंकारों के विभाजन का आधार प्रस्तुत किया है। उन्होंने अलंकार विभाजन के चार आधार माने है। औपम्य, वास्तव, अतिशय और श्लेष। यह विभाजन वैज्ञानिक न होते हुए भी मौलिक है।

अलंकारो के मनोवैज्ञानिक आधार है[4]– स्पष्टता, विस्तार आश्चर्य, अन्विति, जिज्ञासा और कौतूहल। इनके मूर्त रुप है– साधर्म्य, अतिशय, वैषम्य, औचित्य, वक्रता और चमत्कार (बौद्धिक) उपमा और रुपक से लेकर दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास आदि अलंकार साधर्म्य के अन्तर्गत आते हैं। अतिशयोक्ति के विभिन्न भेदों से लेकर सार, उदात्त जैसे अलंकार अतिशय मूलक है।

विरोध विभावना असंगति से लेकर व्याघात आक्षेप एकावली से लेकर, स्वभावोक्ति जैसे अलंकार औचित्य हैः पयौय, व्याजस्तुति, अप्रस्तुत, प्रशंसा से लेकर मुद्रा और चित्र जैसे अलंकार चमत्कार मूलक है।

अलंकारों के विकास से अलंकार का क्षेत्र विस्तृत तो होता है किन्तु वह वहिरंग सिद्धान्त का अंग है रस की पुष्टि में ही उनकी सार्थकता है। वे काव्य के एक अनायास साधन है वे रस को आच्छादित नहीं कर सकते। काव्य में कुछ ही अवसर होते है जहाँ अलंकार रस के सहायक बन कर गरिमा पाते है। यदि अलंकार शोभाकारक धर्म है तो रस अलंकार्य है जिस की शोभा वे बढ़ाते है।

यद्यपि अलंकारवादी अलंकार में रस और ध्वनि दोनो को समेटने का प्रयास करते है किन्तु वे अलंकार को अंगी रूप में स्थपित नहीं कर पाते।

अलंकारवादी आचार्य भामह, दण्डी उद्‌भट, रुद्रट सभी रस से परिचित रस की चर्चा करते है अलंकार के भेद को 'रसवता' बताकर रस की महिमा स्वीकार करते है। ध्वनिवादी आचार्य ध्वनि को महत्व देते हुए भी अलंकार को स्थान देते है।

सारांश रूप में अलंकार शोभा कारक धर्म है ये काव्य रुपी शरीर के आभूषण हैं अलंकार अपने उचित स्थान पर ही शोभाकारक बनते है अलंकार जब भीतरी उत्साह के द्योतक होते हैं रूढ़ि के रूप में वे भार रूप हो जाते है।

डॉ० नगेन्द्र अलंकार के विषय में महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत करते है[5] – मन के उच्छ्वास के साथ वाणी अनिवार्यतः उच्छवसित हो जाती है। वाणी यही उच्छ्वास उक्ति वैचित्र्य है।

अलंकारों की महत्ता इस बात में है कि वे हमारी मनोवृत्तियों को अन्विति के लिए तैयार करते है यही उनके अस्तित्व की पराकाष्ठा है। अतिशयता उनका गुण है। साधर्म्य, अतिशय, वैषम्य, औचित्य, वक्रता और रुचि को विस्तार देकर रसानुभूति में की ओर तब उन्मुख करते है जब सहज रूप में प्रयुक्त होते है।

संदर्भ सूची :

1. डॉ0 नगेन्द्र : रीति काव्य की भूमिका प्र0 षष्ठ संस्करिण 1969ई0
2. आचार्य वल्देव उपाध्याय : भारतीय साहित्य शास्त्र, पृष्ठ 192 नन्दकिशोर एण्ड संसः चौक वाराणसी।
3. भामह : काब्यालंकार, पृ0 2185
4. डा0 नगेन्द्र : रीति काब्य की भूमिका, पृष्ठ – 93

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

हिन्दी कहानी की विरासत

डॉ0 देवेन्द्र प्रताप सिंह
प्राचार्य, कूबा पी0जी0 कॉलेज, दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़

(क) प्रस्थान

मानव–सभ्यता के विकास–क्रम में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन ऐसे रहे जिन्होंने मानव–सभ्यता के विकास की दुनिया को ही परिवर्तित कर दिया। आग व पहिए के अविष्कार के बाद भाषा का अविष्कार निःसं देह एक क्रान्तिकारी घटना रही होगी। इससे पूर्व मानव अपनी अनुभूतियों व विचारों को या तो संकेतों के माध्यम से व्यक्त करता होगा अथवा चित्र बनाकर। भाषा के रूप में उसे एक ऐसा सशक्त माध्यम उपलब्ध हो गया जिससे न के वल वह अपने सुख–दुःख, आशा–निराशा को एक–दूसरे से बाँटने में सक्षम हुआ; अपितु अपनी जरूरतों को पूरा करना भी उसके लिए अब अपेक्षाकृत सरल हो गया। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, परन्तु समाज की कल्पना बिना भाषा के अधूरी थी। इस प्रकार भाषा की उत्पत्ति के साथ ही समाज अस्तित्व सामने आया।

आरम्भ के लोग एक–दूसरे के सामने बैठकर कहानियाँ सुनते थे। लिपि चिह्नों के विकास ने मानव को अपनी अनुभूतियों को एक लम्बे समय तक सहेज कर रखने का मार्गप्रशस्त किया। आगे चलकर कहानियाँ लिखी व पढ़ी जाने लगीं। ''इतना निश्चित है कि भारत में कहानी की परम्परा पाश्चात्य प्रभाव से हरगिज विकसित नहीं हुई क्योंकि लोक और शास्त्र, दोनों में कहानी की एक समृद्ध परम्परा रही है। ....संक्षेप में कहें तो भारतवर्ष में कथासाहित्य का विशाल भण्डार रहा है। ब्राह्मण, बौद्ध और जैन धार्मिक वाङ्मय में उपदेशपरक कथाओं की परम्परा तो है ही, स्वतन्त्र रूप से भी नीतिकथा और लोककथा की परम्परा चली आ रही है। नीति कथा के पात्र मानव, मानवेतर पशु–पक्षी रहे हैं। नीतिकथाएँ तो भारत की सीमा लाँघकर बाहर तक फैल चुकी हैं। 'पंचतन्त्र' ऐसी ही नीति कथाओं का आगार है। इसी परम्परा में हितोपदेश भी आता है। इन कथाओं में दोनों पक्षों पर बल है – कुतूहलतर्यक घटना–शृंखला की भी और वर्ण नों द्वारा मार्मिकता लाने की भी।''[1]

सर्वप्रथम भारतवर्ष में ही लिखित कहानी का उद्भव हुआ, ऐसी मान्यता अधिकांश विद्वानों की है क्योंकि ऋग्वेद में कहानी के बीज मिलते हैं और ऋग्वेद को संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ होने का गौरव प्राप्त है। लिपिबद्ध कहानियों की यह परम्परा ऋग्वेद से आरम्भ होकर आज तक चली आ रही है। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी कहानी के आविर्भाव से पहले कहानी की एक लम्बी परम्परा भारतवर्ष में मिलती है। यह परम्परा वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं के साहित्य से होती हुई हिन्दी साहित्य तक चली आई है। ऋग्वेद के संवाद–सूक्त, उपनिषदों की रूपक कथाएँ, रामायण की अन्तर्कथाएँ, महाभारत के उपाख्यान, जातक कथाएँ, वृहत्कथा, वासवदत्ता, दशकु मारचरित, कादम्बरी, वृहत्कथाश्लोक, कथासरितसागर, वैताल पंचविंशतिका, शुकसप्तति, सिंहासन द्वात्रिंशिका, पञ्चतन्त्र, हितोपदेश,

प्राकृत तथा अपभ्रंश में प्राप्त कथाकाव्य, हिन्दी के आदिकाल के चारण काव्य तथा मध्यकाल के प्रेमगाथाकाव्यों, वैष्णववार्त्ताओं और अन्ततः भारतेन्दुकालीन कथात्मक रचनाओं में हिन्दी कहानी के आविर्भाव से पूर्व कहानी का विकास क्रम दे खा जा सकता है।

(ख) प्रगति

1. स्वतन्त्रतापूर्व हिन्दी कहानी

आधुनिक हिन्दी कहानी का उद्‌भव बीसवीं शताब्दी के प्रथम वर्ष से ही माना जाता है। महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके द्वारा सम्पादित पत्रिका 'सरस्वती' को इसका श्रेय दिया जाता है। इससे पूर्व भारतेन्दुकाल में जो कथात्मक गद्य साहित्य उपलब्ध होता है, वह कलात्मक रूप से कहानी विधा में नहीं आता। हिन्दी कहानियों का प्रारम्भ अधिकांश विद्वानों और हिन्दी साहित्य इतिहास लेखकों ने एक स्वर से 'सरस्वती' के प्रकाशन से स्वीकार किया है। 'सरस्वती' के प्रारम्भिक अंकों में प्रकाशित रचनाओं में हिन्दी कहानी की स्वरूप रचना हो रही थी। 'सरस्वती' के माध्यम से अनेक प्रकार के प्रयोग हो रहे थे। ''इन प्रयोगों में शेक्सपीयर के नाटकों के इतिवृत्त के आधार पर वर्णनात्मक शैली में लिखी गई कहानियाँ, स्वप्न कल्पनाओं के रूप में रचित कहानियाँ, सुदूर देशों के कल्पनात्मक चरित्रों को लेकर लिखी गई संवेदनात्मक कहानियाँ, कल्पनात्मक यात्रा वर्णन की कहानियाँ, आत्मकथात्मक रूप में प्रस्तुत कहानियाँ, संस्कृत नाटकों की आख्यायिकाएँ तथा घटना–प्रधान सामाजिक कहानियाँ प्रमुख हैं।''[2]

इस प्रकार हिन्दी कहानी को एक नवीन विधा के रूप में स्थापित करने में 'सरस्वती' पत्रिका की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी के प्रश्न पर विद्वानों में मतभेद है। इस सन्दर्भ में डॉ. सुरेश सिन्हा ने अपना मत प्रकट करते हुए आरम्भिक कहानियों की निम्नलिखित तालिका प्रस्तुत की है–'रानी केतकी की कहानी', 'राजा भोज का सपना', 'अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न', 'इन्दुमती', 'गुलबहार', 'प्लेग की चुड़ैल', 'ग्यारह वर्ष का समय', 'पंडित और पंडितानी', 'दुलाईवाली'। उपर्युक्त तालिका के अतिरिक्त कहीं–कहीं माधव प्रसाद मिश्र कृत 'मन की चंचलता' (1894), तथा माधवराव सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' (1901) आदि कहानियों का भी उल्लेख मिलता है, किन्तु अधिकांश विद्वान 'सरस्वती' में प्रकाशित किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' (1900) को ही प्रथम मौलिक कहानी के रूप में स्वीकारते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है–''इनमें यदि मार्मिकता की दृष्टि से भावप्रधान कहानियों को चुनें तो तीन मिलती हैं– 'इन्दुमती', 'ग्यारह वर्ष का समय', और 'दुलाईवाली'। 'इन्दुमती' किसी बंगला कहानी की छाया नहीं है तो हिन्दी की यही मौलिक कहानी ठहरती है। इसके उपरान्त 'ग्यारह वर्ष का समय', और 'दुलाईवाली' का नम्बर आता है।''[3]

प्रारम्भिक हिन्दी कहानियों में वर्णनात्मकता, स्थूलता, घटनात्मकता, आकस्मिकता और कुतूहलपूर्णता विद्यमान है। इस तरह इन कहानियों में आधुनिक हिन्दी कहानी के विकास के लक्षण विद्यमान हैं। प्रेमचन्दपूर्व हिन्दी कहानियों में कहानी विधा को सशक्त आधार देने व कलात्मकता की ऊँचाई पर ले जाने का श्रेय चन्द्रधर शर्मा गुलेरी कृत 'उसने कहा था' (1912) को जाता है। यह कहानी सृजनात्मकता और रचनात्मकता की अनुपम कहानी है। भाव, संवेदना, शिल्प व उद्देश्य की दृष्टि से भी इस कहानी ने हिन्दी कहानी के इतिहास में मील के पत्थर का काम किया। एक बिल्कुल नये विषय को जिस कौशल से इस कहानी में प्रस्तुत किया गया है उसकी प्रशंसा में विजय मोहन सिंह लिखते हैं– ''प्रथम महायुद्ध इस कहानी में पृष्ठभूमि नहीं, कथाक्षेत्र है जिसकी कल्पना भी उस समय असम्भव थी। प्रथम तो क्या द्वितीय महायुद्ध पर भी हिन्दी में शायद ही कोई महत्त्वपूर्ण कहानी लिखी गई हो। इस कहानी का शीर्षक ही जिस तरह

पूरी कहानी में मंडराता रहता है वह रचनात्मकता के उन्मेष का विलक्षण उदाहरण है। प्रविधि के रूप में तब तक 'पूर्व दीप्ति' (फ्लैश बैक) और चेतना का प्रवाह (स्ट्रीम ऑफ कांससनेस) का नाम हिन्दी में सुना नहीं गया था जिसका इस कहानी में अपूर्व कौशल से उपयोग किया गया है।''[4]

प्रेमचन्द के आगमन से हिन्दी कहानी को एक नई दिशा एवं दृष्टि मिली। यद्यपि वे सन् 1907 से ही उर्दू में कहानियाँ लिखने लगे थे, किन्तु सन् 1916 में जब उनकी 'पंच परमेश्वर' कहानी 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई , तब से वे हिन्दी कथा क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण लेखक के रूप में जाने–पहचाने गये। उन्होंने कहानी के प्राचीन कथा–शिल्प को तोड़कर युगानुरूप उसे नया रूप–रंग प्रदान किया। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक यथार्थ को केन्द्र मे ं रखकर मानवीय संवेदना और हिन्दी कथा संसार से देवता, राजा और ईश्वर को अपदस्थ करके दीन, दलित, शोषित प्रताड़ित मनुष्य को नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, ज्वालादत्त शर्मा आदि प्रारम्भिक ले खक प्रेमचन्द के ढंग पर आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी कहानियाँ लिख रहे थे। उनकी कहानियाँ घटनाप्रधान और इतिवृत्तात्मक हैं।

इस युग के एक अन्य महत्त्वपूर्ण कहानीकार भुवनेश्वर भी हैं। भुवनेश्वर को कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठा नहीं मिली। उन्हें एक एकांकी नाटककार के रूप में स्वीकृति दी गई। लेकिन वे एक सशक्त कहानीकार भी थे। उन्होंने भी चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की ही तरह बहुत कम कहानियाँ लिखी, लेकिन ये कहानियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिए उन्हें हिन्दी कहानी के इतिहास से बाहर नहीं किया जा सकता। भारत भारद्वाज के शब्दों में– ''हिन्दी कथा–साहित्य के इतिहास में भुवनेश्वर का उल्लेख नहीं किया गया तो यह कहानी इतिहासकार की भूल थी कि उन्होंने अपने विवेक का परिचय नहीं दिया, लेकिन भुवनेश्वर कहानीकार के रूप में इससे ओझल नहीं हो जाते। भुवनेश्वर ने कहानियाँ भी लिखीं हैं और ये कहानियाँ हिन्दी कहानी के विकास से कटी हुई नहीं हैं, बल्कि जुड़ी हुई हैं। ये कहानियाँ हाशिये की कहानियाँ नहीं हैं बल्कि हिन्दी कहानी के बीच की कहानियाँ हैं। भुवनेश्वर की कहानियों का महत्त्व इस बात से भी प्रकट होता है कि प्रेमचन्द जैसे महत्त्वपूर्ण कथाकार ने न केवल भुवनेश्वर की कहानियों पर लिखा बल्कि उनकी कहानी 'मौसी' को अपने एक कहानी–संकलन में संगृहीत भी किया।''[5]

जयशंकर प्रसाद मूलतः रोमांटिक कहानीकार हैं। इनकी कहानियों में प्रेम और भावात्मकता की प्रधानता है। इनकी सफल कहानियाँ प्रेम और अन्तर्द्वन्द्व को लेकर चलती हैं, जिनमें 'आकाशदीप', 'पुरस्कार' आदि प्रमुख हैं। यशपाल प्रेमचन्द के सामाजिक यथार्थ को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने वाले उल्लेखनीय कहानीकार हैं। रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त, नागार्जुन आदि कहानीकार इसी वर्ग के महत्त्वपूर्ण कहानीकार हैं। जैनेन्द्र कुमार और इलाचन्द्र जोशी ने मनोवैज्ञानिक यथार्थ को केन्द्र में रखकर अपनी कहानियों में मानव–मन को चित्रित किया। इन कहानीकारों पर फ्रायड के मनोविश्ले षणवाद का गहरा प्रभाव है। अज्ञेय इस परम्परा के तीसरे महत्त्वपूर्ण कथाकार हैं। इनकी कहानियों में सार्त्र आदि अस्तित्ववादी चिन्तकों का प्रभाव दिखाई देता है। इन कहानीकारों के मध्य कुछ कहानीकार ऐसे भी थे जिन्होंने किसी विचार विशेष से प्रभावित न होकर स्वतन्त्र रूप से लेखन किया। ऐसे कहानीकारों में भगवतीचरण वर्मा और उपेन्द्रनाथ अश्क मु ख्य हैं। विष्णु प्रभाकर, द्विजेन्द्र नाथ 'निर्गुण' तथा अमृतराय भी स्वतन्त्रता से पहले के प्रमुख कहानीकार हैं।

2. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी

सन् 1947 में भारत आजाद हुआ। सदियों की गुलामी के बाद भारतीय जनमानस एक नये सवेरे को उल्लासपूर्ण नजरों से देख रहा था। अब उनके सारे सपने और आकांक्षाएँ पूरी

होने वाली हैं, इसके प्रति आश्वस्त भारतीय जनता नये जोश व नई स्फूर्ति से ओत–प्रोत थी। कमले श्वर के शब्दों में– ''देश का वैचारिक पुनर्जन्म हुआ। आजादी केवल राजनीतिक मूल्य के रूप में स्वीकृत नहीं हुई थी, बल्कि विचारों की एक नवक्रांति का सपना भी उससे जुड़ा हुआ है।''[6]

इस प्रकार स्वतन्त्र भारत में कहानीकारों की जो नई पीढी तैयार हुई उसने हिन्दी कहानी के वस्तु, शिल्प और संचेतना में व्यापक परिवर्तन किए। स्वतन्त्रता–प्राप्ति के बाद हिन्दी कहानी क्षेत्र में जो उल्लेखनीय विकास हुए, वे हिन्दी कहानी के विभिन्न आन्दोलनों की देन हैं। स्वतन्त्रता–प्राप्ति के बाद हिन्दी कहानी में कई आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ। 'नयी कहानी', 'सचे तन कहानी', 'अकहानी', 'सहज कहानी', 'सक्रिय कहानी', 'समानान्तर कहानी' और 'जनवादी कहानी' के नाम से समय–समय पर उठने वाले कहानी–आन्दोलनों ने हिन्दी कहानी को नई समृद्धि, दृष्टि और कलात्मक ऊँचाई भी दी है और संकीर्णताओं और स्वार्थों के कारण उसे क्षति भी पहुँचाई है।

(ग) आन्दोलन

1. नयी कहानी आन्दोलन

स्वतन्त्रता से पूर्व हिन्दी कहानी में कोई कहानी–आन्दोलन नहीं चला था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद 'नयी कहानी' के रूप में एक ऐसा कहानी आन्दोलन प्रकाश में आया जिसने कहानी के पारम्परिक प्रतिमानों को नकार दिया और अपने मूल्यांकन के लिए नई कसौटियाँ निर्धारित की। यह स्वाभाविक भी था कि अब नये विचार, नये सपने और नयी राहों का उदय हुआ था। परतन्त्रता की पीड़ा से उभरी भारतीय जनता आजादी के उल्लास में एक नये जोश व नये उत्साह से सराबोर थी। अब नये प्रकार की चुनौतियाँ थी। आजाद हिन्दुस्तान को प्रगति के मार्ग पर अग्रसर करना व सदियों से गुलाम भारतीयों को हीन भावना से उबारकर एक नये आत्मविश्वास से ओत–प्रोत करना। परन्तु इन सपनों और आकांक्षाओं की उम्र बहुत कम थी, भारत–पाक विभाजन के फलस्वरूप हिन्दू–मुस्लिम साम्प्रदायिक उन्माद ने आजादी की मिठास को कसैला बना दिया था। मानवता को सरेआम नंगा किया गया, इंसानियत का गला दबा दिया गया और मूल्यों व आदर्शों को मौत के घाट उतार दिया गया था। साम्प्रदायिकता का जो वहशीपन उन दिनों इन नवस्वतन्त्र विभाजित देशों के मध्य सुलग रहा था उसने स्वतन्त्रता के बाद की सारी उम्मीदों को धुआँ–धुआँ कर दिया। ऐसे समय में साहित्यकार जो स्वयं आजादी की बाट जोह रहा था, गहरे तनाव व अवसाद से भर गया। डॉ. विष्णु ओझा लिखते हैं– ''इसे अस्वीकार करना असम्भव–सा है कि आज की कहानी की भूमिका में दो महायुद्ध एवं भारत विभाजनजन्य विभीषिका, विषमता तथा संत्रास है। एक सार्वत्रिक टूटन, निरुद्देश्यता, असंगति, मानवीय सम्बन्धों की व्यर्थता, स्त्री–पुरुष–सम्बन्धों की विद्रूपता आदि भी उसकी उपज है।''[7]

इस आन्दोलन के मुख्य कहानीकार राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश और कमलेश्वर थे। नयी कहानी आन्दोलन का मुख्य आग्रह 'परिवेश की विश्वसनीयता', 'अनुभूति की प्रामाणिकता' और 'अभिव्यक्ति की ईमानदारी' के प्रति था। यह आन्दोलन कहानी को युग–सत्य से जोड़कर पाठक को समकालीन यथार्थ से यथार्थ रूप में परिचित कराने का ध्येय लेकर बढ़ा था। समय, काल और परिस्थितियां साहित्य को प्रभावित भी करती हैं और परिवर्तित भी। अब समय बदल चुका था। समयगत परिवर्तन पर टिप्पणी करते हुए डॉ. कुमार कृष्ण लिखते हैं– ''कहानियाँ नहीं बदली थी, समय की माँग बदली थी और समय की माँग ने ही अपनी थाती में से नये चुनाव किए थे। कथा–साहित्य में इस बदलते हुए आग्रह को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता और यह बदलता

हुआ आग्रह ही वह बिन्दु है जहाँ से हिन्दी कहानी एक 'नया मोड़' लेती है, यह नया मोड़ ही 'नयी कहानी' के नाम से अभिहित किया गया।''[8]

स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता मिल जाने पर भारतीय जनमानस में एक नयी चेतना, नये विश्वास और नयी आशा–आकांक्षा का जन्म हुआ था जिसकी अभिव्यक्ति 'नयी कहानी' आन्दोलन की कहानियों में मिलती है। 'कहानी' तथा 'कल्पना' जैसी पत्रिकाओं ने नयी कहानी आन्दोलन को विस्तार देने का कार्य किया। 'चीफ की दावत' (भीष्म साहनी), 'जिन्दगी और जोंक' (अमरकान्त), 'राजा निरबंसिया', 'कस्बे का आदमी', 'आत्मा की आवाज' (कमलेश्वर), 'मलबे का मालिक', 'सौदा', 'नये बादल', 'आर्द्रा', 'परमात्मा का कुत्ता' (मोहन राकेश), 'एक कमजोर लड़की की कहानी', 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' (राजेन्द्र यादव), 'दादी माँ' (शिवप्रसाद सिंह), 'गदल' (रांघेय राघव), 'बादलों के घेरे', 'डार से बिछुडी' (कृष्णा सोबती), 'साबुन', 'हंसा जाई अकेला' (मार्कण्डेय), 'रसप्रिया' (फणीश्वर नाथ रेणु), 'गुल की बन्नो' (धर्मवीर भारती), 'परिन्दे' (निर्मल वर्मा), 'मैं हार गई' (मन्नू भण्डारी), 'वापसी' (उषा प्रियंवदा), 'छुट्टियाँ' (रामकुमार), 'बदबू' (शेखर जोशी), आदि कहानियों में कथ्य, शिल्प तथा अभिव्यक्ति सभी दृष्टियों से नयेपन का अनुभव होता है।

नयी कहानी आन्दोलन ने हिन्दी कहानी में एक नवीन चेतना को जन्म दिया। यह नयी कहानी की लोकप्रियता तथा रचनात्मकता का ही परिणाम है कि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा जैसे कवि कहानी लेखन की ओर आकर्षित हुए। नयी कहानी ने कथ्यगत परम्परागत ढाँचों को अस्वीकारते हुए नये आयामों की खोज की, वहीं अभिव्यक्ति के स्तर पर नये–नये प्रयोग किए। नयी कहानी ने कहानी के प्लॉट में रेखाचित्र, डायरी, संस्मरण जैसी अनेक विधाओं को समेटा जिससे नयी कहानी में प्रयोगधर्मिता, सांकेतिकता आदि गुणों का उदय हुआ। नयी कहानी की भाषा अकृत्रिम है। यह कोशगत अर्थों से कहीं अधिक व्यापक व गहरे अर्थों को ध्वनित करती है। आंचलिक शब्दों के प्रयोग के साथ–साथ प्रतीकात्मकता, बिम्बात्मकता आदि नयी भाषा के अतिरिक्त गुण हैं। परन्तु 60 के दशक तक आते–आते यह आन्दोलन अनेक प्रकार के अन्तर्विरोधों में धँस गया। यह आन्दोलन वैचारिक प्रतिबद्धता पर कायम रहने में असफल रहा और पश्चिम के आकर्षण से स्वयं को बचा पाने में नाकाम रहते हुए बुजुर्आ आधुनिकतावाद की वकालत करने लगा। व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ अधिक सक्रिय हो गई और उसका व्यापक फलक सिमटकर स्त्री–पुरुष सम्बन्धों की अभिव्यक्ति रह गया। इस प्रकार यह आन्दोलन बिखर गया और हिन्दी कहानी में एक नये आन्दो लन अकहानी आन्दोलन का जन्म हुआ।

2. अकहानी आन्दोलन

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय जनमानस द्वारा देखे गए तमाम सपने व उनकी आकांक्षाएँ दम तोड़ चुकी थी। सन् 1962 में एक तरफ तो 'हिन्दी–चीनी, भाई–भाई' के नारे लगाए जा रहे थे तो दूसरी ओर भारत पर विश्वासघाती चीनी आक्रमण ने भारतीय जनता में मोहभंग की स्थिति को अत्यन्त भयावह बना दिया। अब तक भारत–पाक विभाजन के घाव व आन्तरिक कलह के जख्म भरे नहीं थे कि चीनी आक्रमण ने भारतीय जनता के मनो–मस्तिष्क को झकझोर दिया। इस प्रकार अकहानी एक तरफ जहाँ तात्कालीन सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक विसंगतियों का परिणाम था तो दूसरी ओर नयी कहानी की जड़ता को तोड़ने का प्रयास था। ऐसे समय में हिन्दी कहानी जगत में एक नवीन कहानी आन्दोलन 'अकहानी आन्दोलन' का जन्म हुआ। यह आन्दोलन तात्कालीन मूल्यों तथा कथाशिल्प दोनों के अस्वीकार का आन्दोलन है। यह आन्दोलन पेरिस के 'एण्टी स्टोरी' का अनुकरण है और इस आन्दोलन पर अस्तित्ववादी चिन्तक सार्त्र और कामू के विचारदर्शन का प्रभाव है।

अकहानी में सम्बन्धों व मूल्यों के बिखराव को अभिव्यक्ति मिली है। अकहानी में सम्बन्धों के टूटने का ऐसा पीड़ाबोध है जो उसे पूर्ववर्ती कहानी से अलग करता है। स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के परिवर्तित रूप को अभिव्यक्त करने के कौशल को डॉ. अशोक भाटिया इस आन्दोलन की उपलब्धि भी मानते हैं और सीमा भी। वे कहते हैं– ''इस आन्दोलन की उपलब्धि यह रही कि काम–सम्बन्धों का इन्होंने वर्जनाहीन तथा सहज वर्णन करके हिन्दी कहानी में एक उपेक्षित पक्ष को समृद्ध किया। किन्तु उन्मुक्त काम–सम्बन्धों के नाम पर इन्होंने सभी मर्यादाओं और श्लीलता की सीमाओं को तोड़ दिया। समलैंगिक सम्बन्ध, अप्राकृतिक मैथुन आदि का विस्तृत वर्णन इसका प्रमाण है।''[9]

भारतीय जीवन मूल्यों व परम्पराओं का तिरस्कार अकहानी में मिलता है। अकहानी भारतीय पारिवारिक व सामाजिक व्यवस्था को भी अस्वीकार करती है। इस सन्दर्भ में श्री जयेन्द्र त्रिवेदी लिखते हैं–''सभी प्रकार के मूल्यों को अस्वीकार करना अकहानी का प्रमुख उद्देश्य था। अकहानी का 'अ' मात्र उपसर्ग न रहकर एक जीवन मूल्य माना गया जिसका हेतु पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक और साहित्यिक मूल्यों का विघटन करना था।''[10]

अकहानी में संवेदनाओं और भावुकता के लिए कोई स्थान नहीं है। ''अकहानी स्त्री के सतीत्व में विश्वास नहीं करती तथा विवाह संस्था की पतिव्रता के समक्ष भी प्रश्नचिह्न लगाती है। दाम्पत्य जीवन में सतीत्व, पतिव्रता धर्म तथा एकपत्नीत्व जैसे मूल्य यहाँ आकर बिखर गये हैं। प्रेम का परम्परागत अर्थ यहाँ शून्य हो गया है और स्त्री–पुरुष के बीच केवल शारीरिक सम्बन्ध मात्र रह गये हैं।''[11] अकहानी शिल्प व भाषा के स्तर पर भी सभी प्रकार के परम्परागत उपकरणों का निषेध करती है। शिल्प की दृष्टि से अकहानी फै ं टेसी, डायरी, निबन्ध, संस्मरण आदि विधाओं के निकट है।

'झाड़ी', 'शवयात्रा', (श्रीकांत वर्मा), 'सिर्फ एक दिन', 'अकहानी', 'बड़े शहर का आदमी', 'एक डरी हुई औरत' (रवीन्द्र कालिया), 'तरतीब', 'छुटकारा' (ममता कालिया), 'पिता', 'फेंस के इधर–उधर' (ज्ञानरंजन), 'वे दोनों' (विजयमोहन सिंह), 'रक्तपात', 'आइसबर्ग', 'कबन्ध' (दूधनाथ सिंह), 'आदमी' (प्रयाग शुक्ल), 'एक पति के नोट्स', 'फुंसिया' (महेन्द्र भल्ला), 'मरी हुई चीज', 'निर्मम', 'बगैर तराशे हुए' (सुधा अरोड़ा), 'सुबह का डर', 'लोग बिस्तरों पर' (काशीनाथ सिंह), 'पिता–दर–पिता' (रमेश वक्षी), 'शीर्षकहीन' (गंगाप्रसाद विमल) जैसी कहानियों में अकहानी आन्दोलन की प्रवृत्तियों को देखा जा सकता है। अकहानी ने परम्परागत कथ्य व शिल्प को छोड़कर नये–नये प्रयोगों से हिन्दी कहानी के विकास को गति दी है। परन्तु इस आन्दोलन का अनास्थावादी दृष्टिकोण व पाश्चात्य विचारकों (कामू, काफ्का, सार्त्र) के विचारों को आधार बनाकर सोची गई स्थितियों–परिस्थितियों पर आधारित कृत्रिम कथा–विधान सबसे बड़ी सीमा है। अकहानी भारतीय समाज की उपज नहीं थी। इस प्रकार इस आन्दोलन की सामाजिक स्वीकार्यता अधिक नहीं थी और यह अपने ही दायरों में सिमट कर रह गया।

3. सचेतन कहानी आन्दोलन

सन् 1964 में डॉ. महीप सिंह ने 'आधार' पत्रिका का 'सचेतन कहानी विशेषांक' निकाल कर हिन्दी कहानी में एक नये आन्दोलन का सूत्रपात किया जिसे 'सचेतन कहानी' आन्दोलन का नाम दिया गया। इस आन्दोलन की मुख्य विशेषता यह है कि इसने सचेत रूप से जीवन में सक्रियता, आशा, आस्था और संघर्ष का भाव संचारित करने पर बल दिया। नयी कहानी आन्दोलन की प्रतिक्रिया में शुरू किया गया यह कहानी आन्दोलन अनास्था, कुण्ठा, अवसाद व निराशा के वातावरण से निकलने की छटपटाहट और कुछ नयी आशाओं और उम्मीदों के साथ

जीवन को अनुभूत करने पर बल देता है। डॉ. हेतु भारद्वाज इस सन्दर्भ में कहते हैं कि ''सचेतन कहानी उस स्वस्थ दृष्टि से सम्पन्न कहानी है जो जीवन से नहीं, जीवन की ओर भागती है। इसमें नैराश्य, अनास्था और बौद्धिक तटस्थता का प्रत्याख्यान किया जाता है और मृत्यु–भय, व्यर्थता एवं आत्मपराभूत चेतना का परिहार भी। सचेतन कहानी में आत्म–सजगता है और संघर्षेच्छा भी। वह व्यक्ति और समाज की टूटती आस्थाओं के बीच नये मूल्यों के निर्माण का स्वर मुखरित करती है।''[12]

इसके प्रवर्तकों ने नयी कहानी पर अनास्था, निष्क्रियता और जड़ता का आरोप लगाकर उसकी सामाजिक उपयोगिता पर अनेक प्रश्न उठाये। सचेतन कहानी आन्दोलन न केवल नयी कहानी आन्दोलन की व्यक्तिपरकता का विरोधी था अपितु वह अकहानी आन्दोलन की अनास्थावादी प्रवृत्तियों को भी नकारता है। सचेतन कहानी की वैचारिकता भारतीयता में थी, पश्चिम की भौंडी नकल से वह कोसों दूर है। डॉ. पुष्पपाल के शब्दों में– ''इस कथा–आन्दोलन ने कहानी को एक बौद्धिक दृष्टिकोण प्रदान कर यथार्थ की प्रस्तुति में प्रवृत्त किया। अकहानीकारों के समान शिल्प को ही कहानी का सर्वस्व मानते हुए, इन्होंने अस्तित्ववादी पाश्चात्य नारों के बल पर ओढ़ी हुई दृष्टि को नकारकर जीवन की सच्चाइयों को पहचानने की ईमानदार कोशिश की।''[13]

सचेतन कहानी में भी स्त्री–पुरुष सम्बन्धों का चित्रण पर्याप्त मात्रा में हुआ; परन्तु इधर के कहानीकारों का दृष्टिकोण अकहानी वाला दृष्टिकोण नहीं था। यह कहानी न तो सेक्स की अन्धी गलियों में भटकती है और न ही भयया कुण्ठा से ग्रस्त है। सचेतन कहानी के नारी पात्र अपनी अस्मिता के लिए संघर्षशील हैं। सचेतन कहानी आन्दोलन मुख्यतः वैचारिक आन्दोलन था, शिल्प के सन्दर्भ में किसी विशेष प्रकार का आग्रह–दुराग्रह इसमें नहीं है। सचेतन कहानी नयी कहानी और अकहानी के समान शिल्प के बोझ तले न दबकर सहज अनुभवों को सहजता से अभिव्यक्त करने पर बल देती है। सचेतन कहानीकारों का मानना है कि सफल कहानी वही है जिसका कथ्य पाठकों तक सहजता से संप्रेषित हो जाए। परन्तु यह आन्दोलन कथ्य और शिल्प दोनों ही स्तरों पर कहानी को कोई नवीनता दे पाने में असमर्थ रहा और महीप सिंह व उनके कुछ साथी कहानीकारों के मध्य ही सीमित रह गया। इस प्रकार यह आन्दोलन खत्म हो गया।

सचेतन कहानी आन्दोलन को गति देने वाले कहानीकारों में महीप सिंह के अतिरिक्त मनहर चौहान, कुलदीप बग्गा, नरेन्द्र कोहली, वेदराही, श्रवण कुमार, योगेश गुप्त, हेतु भारद्वाज, रामदरश मिश्र, जगदीश चतुर्वेदी, धर्मेन्द्र गुप्त, सुरेन्द्र अरोड़ा व हृदयेश आदि प्रमुख हैं। महीप सिंह की 'उजाले का उल्लू', 'स्वराघात', तथा 'धुंधले कोहरे', जगदीश चतुर्वेदी की 'अधखिले गुलाब', मनहर चौहान की 'बीस सुबहों के बाद', सुरेन्द्र अरोड़ा की 'बर्फ', रामकुमार भ्रमर की 'लौ पर रखी हुई हथेली', वेदराही की 'दरार' तथा सुखवीर की 'दीवारें और उड़ने वाला घोड़ा' जैसी कहानियाँ 'सचेतन कहानी' का स्वरूप स्पष्ट करती हैं।

4. सहज कहानी आन्दोलन

सन् 1968 में 'नयी कहानियाँ' पत्रिका का स्वामित्व श्री अमृतराय ने खरीद लिया तथा उन्होंने अपने सम्पादन में इसे इलाहाबाद से निकालना शुरू किया। इस पत्रिका के सम्पादकीय 'सहज कहानी' शीर्षक के अन्तर्गत छपते थे। इन सम्पादकियों के शीर्षक तथा अमृतराय के कहानी सम्बन्धी विचारों से ही सहज कहानी आन्दोलन का प्रारम्भ माना जाता है। आडम्बरों से मुक्त, बनावट से परे तथा ओढी हुई वैचारिकता से आजाद कहानी ही सहज कहानी है। सहज कहानी के विषय में अमृतराय द्वारा लिखे सम्पादकियों में सहज कहानी के लिए आवश्यक जिन

गुणों का उल्लेख मिलता है उनमें अमृतराय कहानी में कथारस की अनिवार्यता पर बले देते हैं, सहज कथानक सहज शिल्प में अभिव्यक्त होना चाहिए और कहानी में सरसता, भावुकता व संवेदना का गुण होना चाहिए। अमृतराय स्पष्ट शब्दों में कहते हैं–''नयी कहानी की खोज में सहज कहानी खो गयी।''[14] वे कहानी में कहानीपन को जरूरी मानते हैं और नयी कहानी और अकहानी ने कथ्य और शिल्प के स्तर पर जो अतिरिक्त उत्तेजना व जल्दबाजी दिखाई उसका वे विरोध करते हैं। सहज कहानी आन्दोलन अमृतराय तथा उनके द्वारा 'नयी कहानियाँ' में लिखी गई टिप्पणियों तक ही सीमित रहा। उन्होंने सहज कहानी का शास्त्र तो प्रस्तुत किया पर उनके विचार केवल वैचारिक स्तर पर ही रह गये, अपनी कल्पना व अपने दृष्टिकोण को धरातल देने में वे असमर्थ रहे। अतः 'नयी कहानियाँ' पत्रिका के बन्द होने के साथ–साथ इस आन्दोलन का भी समापन हो गया। स्वयं अमृतराय के अलावा सुधा अरोड़ा ने भी इस आन्दोलन का समर्थन किया।

5. समानान्तर कहानी आन्दोलन

अक्टूबर, 1974 के 'सारिका' के अंक से कमलेश्वर द्वारा समानान्तर कहानी विशेषांकों की श्रृंखला के प्रकाशन से यह कहानी आन्दोलन अस्तित्व में आया। समानान्तर कहानी का केन्द्रीय बिन्दु 'आम आदमी' है। इस आन्दोलन के प्रस्तोता कमलेश्वर का मानना है कि आम आदमी की जिन्दगी के विविध पहलुओं को, चाहे वे किसी भी रूप में हों, हम अपनी कहानियों में निरूपित करते हैं और उसके साथ ही जिन्दगी को इस कदर सड़ा देने वाली पूँजीवादी और साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ निरन्तर जूझते रहना कर्त्तव्य मानते हैं। इस प्रकार इस कहानी आन्दोलन में आम आदमी के संघर्ष की अभिव्यक्ति है और हर स्थिति में वही नायक भी है। पूरी कहानी का ताना–बाना उसी के इर्द–गिर्द बुना जाता है तथा वह अपनी पूरी चेतना व ऊर्जा के साथ युगीन विसंगतियों के विरुद्ध डटकर मुकाबला करने को उद्यत दिखाई देता है। डॉ. हेतु भारद्वाज के शब्दों में– ''समानान्तर कहानी जीवन के स्पन्दन के साथ चलने वाली रचनात्मक विधा है और वह अपनी पूरी रचनात्मक शक्ति के साथ आम आदमी के नायकत्व को स्थापित कर भ्रष्ट राजनीतिक और चतुर पूँजीवादी व्यवस्था से संघर्ष कर सामने आ गयी है।''[15]

समानान्तर कहानी सामन्तवादी मूल्यों को अस्वीकार करते हुए नये मूल्यों की स्थापना का बीड़ा उठाती है। वह अपने केन्द्रीय पात्र 'आम आदमी' को इतना सशक्त व सक्षम बना देना चाहती है कि वह दैत्याकार व्यवस्था से न केवल संघर्ष करने का साहस जुटा पाये अपितु निरंकुश व्यवस्था को अपने तीखे प्रहारों से छिन्न–भिन्न भी कर पाये। ''समानान्तर कहानी तटस्थता और निरपेक्षता को पीछे छोड़ संबद्धता की बात करती है, वह मूल्यों को व्यवहार में लाये जाने के प्रति सजग है। उन्हें कार्यान्वित भी करना चाहती है। इस दृष्टि से आज का समय इतना भयावह है, क्योंकि सामान्य व्यक्ति इतना असहाय है कि वह भ्रष्ट नैतिकता का खुलकर विरोध नहीं कर सकता। जब तक सामान्य जन में अनैतिक को अस्वीकार करने की शक्ति नहीं आती तब तक नये मूल्य स्थापित नहीं हो सकते। इस दिशा में समानान्तर कहानी सक्रिय है।''[16]

समानान्तर कहानी आन्दोलन मुख्य रूप से कमलेश्वर के व्यक्तिगत विचारों व गतिविधियों से ही जुड़ा रहा। इस कहानी में आम आदमी पर उतना ही अधिक बल रहा, जितना नयी कहानी में अनुभव की प्रामाणिकता पर रहा था। इस आन्दोलन से जुड़े कहानीकार अपनी कहानियों में कृत्रिम मानव को परोसने लगे थे, उनका आम आदमी से सक्रिय सम्पर्क नहीं था। दूसरा अनेक कहानी आलोचकों ने इस आन्दोलन की वैचारिकता पर जो प्रश्न उठाया है वह भी इस आन्दोलन की एक सीमा रही है। डॉ. पुष्पपाल के शब्दों में– ''समान्तर' में जिस आम आदमी का शोर रहा, साहित्य रचना में वह आम आदमी कब नहीं रहा? प्रेमचन्द ने कहानी को आम आदमी की बनाया

था, तब से लेकर कहानी आम आदमी की समस्याओं को ही चित्रित करती रही है।...वस्तुतः कोई भी रचना सामान्य आदमी के जीवन संदर्भों को बिना पाये नहीं बन सकती।''[17]

इस प्रकार इस आन्दोलन में वैचारिक या कथ्य के स्तर पर कोई अतिरिक्त विशेषता प्रतीत नहीं होती और कमलेश्वर द्वारा 'सारिका' का सम्पादन छोड़ने के साथ ही यह कहानी आन्दोलन समाप्तप्राय हो गया। 'मानसरोवर के हंस', 'इतने अच्छे दिन', 'रातें' (कमलेश्वर), 'एक चालू आदमी' (दिनेश पालीवाल), 'आदमी' (आशीष सिन्हा), 'हरिजन सेवक', 'लहू पुकारे आदमी' (मधुकर सिंह), 'तमाशा' (स्वदेश दीपक), 'अंधे कुएँ का रास्ता' (अरुण मिश्र), 'चौथा आश्चर्य', (जवाहर सिंह), 'यन्त्र पुरुष' (सुरेश सेठ), 'सुरंग में पहली सुबह' (बसंत कुमार) आदि कहानियाँ समानान्तर कहानी आन्दोलन की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं।

6. सक्रिय कहानी आन्दोलन

पाश्चात्य शब्द 'एक्टिव स्टोरी' के अनुकरण पर राकेश वत्स द्वारा सम्पादित 'मंच' पत्रिका के मार्च 1978 अंक को 'सक्रिय कहानी विशेषांक' के रूप में निकाला गया। इस विशेषांक के प्रकाशन से ही सक्रिय कहानी आन्दोलन का जन्म माना जाता है। सक्रिय कहानी का सर्वाधिक बल सक्रियता पर है। यह सक्रियता पात्रों तथा विचारों दोनों स्तरों पर है। इस आन्दोलन की कहानियाँ अपने पात्रों को शोषक–शक्तियों के विरुद्ध खड़ा होने का न केवल हौंसला देती हैं अपितु उनके संघर्ष में सहयोग भी करती हैं। राकेश वत्स ने 'सक्रिय कहानी की भूमिका' में सक्रिय कहानी की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा है– ''सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है– 'चेतनात्मक ऊर्जा और जीवन्तता की कहानी, जो आदमी को बेबसी, निहत्थेपन और नपुंसकता से निजात दिलाकर स्वयं अपने अन्दर की कमजोरियों के खिलाफ खड़ा होने के लिए तैयार करने की जिम्मेवारी अपने सिर लेती है।''[18]

सक्रिय कहानी आन्दोलन व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों का विरोध करते हुए सामूहिक मानवीय मूल्यों की स्थापना पर बल देता है। यहाँ स्वहित को परहित से जोड़कर देखने की प्रवृत्ति है अर्थात् यह कहानी व्यक्तिगत स्वार्थों और लाभों को समाजगत लाभों में बदलने की नीयत रखती है। सक्रिय कहानी शोषित व पीडित वर्ग को संगठित कर शोषक वर्ग के प्रति संघर्ष पर बल देती है। जनसमर्थक मूल्यों तथा समानता की स्थापना इस कहानी आन्दोलन का मुख्य ध्येय है। 'उसका फैसला' (सुरेन्द्र सुकुमार), 'जंगली जुगराफिया' (रमेश बत्तरा), 'पहली जीत' (विकेश निझावन), 'आखिरी मोड़' (कुमार संभव), 'काले पेड़' (राकेश वत्स), 'एक न एक दिन' (नवेन्दु), 'लोग हाशिये पर' (धीरेन्द्र आस्थाना) आदि कहानियों में सक्रिय कहानी आन्दोलन की प्रवृत्तियों को देखा जा सकता है। सक्रिय कहानी आन्दोलन कहानी की कलात्मकता पर कोई बात नहीं करता, वह मात्र कथ्य पर जोर देकर चुप हो जाता है। सक्रिय कहानी आन्दोलन अपना कोई व्यक्तिगत आधार बना पाने में असमर्थ रहा क्योंकि इसकी प्रवृत्तियाँ समानान्तर व जनवादी कहानी आन्दोलन का मिश्रण–सा प्रतीत होती हैं।

7. जनवादी कहानी आन्दोलन

सन् 1982 में दिल्ली में 'जनवादी लेखक संघ' की स्थापना के साथ ही हिन्दी कहानी में जनवादी कहानी आन्दोलन का सूत्रपात माना जाता है। 13–14 फरवरी, 1982 को दिल्ली में जनवादी लेखक संघ का प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन के पश्चात् जनवादी कहानी पर 'कलम' (कलकत्ता), 'कथन' (दिल्ली), 'उत्तरगाथा' (मथुरा–दिल्ली), 'उत्तरार्ध' (मथुरा), 'कंक' (रतलाम) जैसी पत्रिकाओं में व्यापक रूप से चर्चा प्रारंभ हो गई। जनवादी कहानी आन्दोलन की वैचारिकता मार्क्सवादी विचारधारा पर आधारित है। इस कहानी आन्दोलन में

सामाजिक विसंगतियों के प्रति तीव्र आक्रोश है। श्रमजीवी वर्ग के प्रति सहानुभूति, शोषक व पूँजीपति वर्ग के प्रति गुस्सा व परम्परागत मूल्यों के प्रति अनास्था का भाव इस आन्दोलन की मुख्य प्रवृत्तियों में है।

जनवादी कहानी खोखले आदर्शों में विश्वास नहीं रखती, वह जीवन के यथार्थ चित्रांकन पर बल देती है। सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया से सही तौर पर जुड़ने व शोषण, अन्याय तथा उत्पीड़न के खिलाफ खड़ा होने के प्रति प्रतिबद्ध यह कहानी समस्याओं को जमीनी स्तर पर उठाकर उनके समाधान के लिए प्रयत्नशील है। मजदूर और किसान जनवादी कहानियों के केन्द्रीय पात्र हैं। ''जनवादी कहानी किसान–मजदूर के संघर्ष की कहानी है तथा वह इस संघर्ष को बहुत सूक्ष्मता के साथ उभारती है। जनवादी कहानी जीवन के यथार्थ के सन्दर्भ में सत्य की पराजय दिखाकर भी सत्य की ओर आकर्षित करने का कार्य करती है।''[19]

इस प्रकार यह कहानी सामान्यजन के अधिकारों के प्रति आवाज उठाती है। जनवादी कहानी के पात्र दिशाहीन नहीं हैं और न ही परिस्थितियों से आहत ही दिखाई देते हैं। वे अपने मार्ग व लक्ष्य दोनों से बखूबी परिचित हैं, अपने अधिकारों के प्रति सजग इस आन्दोलन के पात्र अन्याय के विरुद्ध आक्रामकता व संघर्ष में विश्वास रखते हैं। जनवादी कहानी अपनी विचारधारा व दृष्टिकोण के स्तर पर प्रगतिशील आन्दोलन व प्रेमचन्द की परम्परा का विस्तार है।

इस कहानी का शिल्प पक्ष की अपेक्षा वैचारिक पक्ष पर अधिक बल है। जनवादी कहानी सीधी–सादी व लोकजीवन से जुड़ी भाषा तथा सामान्य भाषा के मुहावरों का प्रयोग करती है। उसका मानना है कि कथ्य का अपना शिल्प होता है। चारों ओर जो जीवन बिखरा हुआ है, वही कहानी का मसाला है। पात्रों की कमी नहीं है। शिल्प के लिए परेशान होने की जरूरत नहीं है। कथ्य का अपना शिल्प होता है, उसी को रखते जाओ। किसी प्रकार का चमत्कार दिखाना कहानी का कार्य नहीं है। परन्तु जनवादी कहानी की विषय–वस्तु एक सीमित दायरे तक सिमट कर रह गई, जीवन के व्यापक अनुभवों के चित्रण का इसमें अभाव है। दूसरा स्वयं को जनवादी कहलाने के उत्साह में कुछ कहानीकार सोची–समझी स्थितियों पर कहानियाँ लिखने लगे जिससे इस आन्दोलन को क्षति पहुँची।

जनवादी कहानी आन्दोलन को गति देने वाले कथाकारों में 'सुधीर घोषाल', (काशीनाथ सिंह), 'आस्मां कैसे–कैसे', 'सूरज कब निकलेगा', (स्वयंप्रकाश), 'सुबह–सुबह', 'अब यही होगा', (हेतु भारद्वाज), 'दिल्ली पहुँचना है', 'मछलियां' (असगर वजाहत), 'मौसा जी', 'टेपचू' (उदय प्रकाश), 'राजा का चौक', 'काले अंधेरे की मौत' (नमिता सिंह), 'कसाईबाड़ा', (शिवमूर्ति), 'बीच के लोग', (मार्कण्डेय), 'अपराध', (संजीव), 'देवीसिंह कौन', 'कल्प वृक्ष' (रमेश उपाध्याय) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में उभरे इन कहानी आन्दोलनों ने कहानी विधा को न केवल रचनात्मक स्तर पर अनेक आयाम दिए वहीं वैचारिक स्तर पर उसका नाता सामाजिक सरोकारों से जोड़ा। इन कहानियों की विषय वस्तु न तो पुराकथाओं की कल्पनात्मकता से चमत्कृत है और न ही उनमें कपोल आदर्शों को ही चित्रित किया गया है, अपितु जीवन के विविध पहलुओं से जुड़ते हुए इन कथा आन्दोलनों ने पूरी सजगता व विवेक के साथ मानवीय जीवन की विडम्बनाओं व विसंगतियों को शुद्ध रूप में अर्थात यथार्थ प्रस्तुतिकरण किया है।

इन सभी कहानी आन्दोलनों की अपनी–अपनी उपलब्धियाँ और सीमाएँ रही हैं फिर भी हिन्दी साहित्य में कहानी की जो लोकप्रियता आज हमारे समक्ष है उसकी स्थापना में इन सभी कहानी आन्दोलनों की भूमिका असंदिग्ध है। नयी कहानी आन्दोलन ने स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय जन–जीवन को अपना विषय चुना, अकहानी युगीन विसंगतियों व व्यवस्थाओं से विद्रोह न कर

पाने की क्षमता के अभाव में मोहभंग, अनास्था, अवसाद व अनैतिकता की शिकार हो गई, सचेतन कहानी ने नैराश्य, अनास्था और मृत्यु–भय से मुक्त होकर जीवन की ओर लौटने का आग्रह किया और संघर्ष को जीवन की एक अनिवार्य स्थिति के रूप में चित्रित किया, सहज कहानी कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर सहजता व सरलता के गुणों को प्रोत्साहन देने की बात करती है, समानान्तर कहानी आम आदमी को नायकत्व देती है, सक्रिय कहानी जीवन में सक्रियता पर बल देती है और जनवादी कहानी प्रेमचन्द परम्परा के विकास की अगली कड़ी के रूप में दलित, शोषित व पीडित वर्ग के यथार्थ को कहानी का विषय बनाती है।

उपर्युक्त आन्दोलनों के अध्ययन के पश्चात निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि थोड़े हेर–फेर के साथ सभी कहानी आन्दोलन, कहानी के विकास की ही कामना करते हैं। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के प्रथम वर्ष में जन्मीं हिन्दी कहानी इक्कीसवीं सदी में अपने सशक्त, समृद्ध व प्रौढ़ रूप में प्रवेश करती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हिन्दी कहानी का इतिहास प्राचीन भारतीय साहित्य और वाङमय से आरम्भ होता है। हिन्दी कहानी में अपने प्रारम्भिक दौर से ही युगीन विसंगतियों तथा विद्रूपताओं पर प्रहार करने तथा समाज को सही दिशा में अग्रसर करने का प्रयास परिलक्षित होता है। प्रेमचन्द के आगमन के बाद हिन्दी कहानी भारतीय ग्रामीण और शहरी जीवन को एकसाथ रे खांकित करती है।

सन्दर्भ सूची :

1. मधुमती, अप्रैल 1997, पृ. 23–24.
2. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ. 214.
3. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 344
4. विजयमोहन सिंह, बीसवीं शताब्दी का हिन्दी साहित्य, पृ 160.
5. भारत भारद्वाज, पुस्तक वार्त्ता, मार्च –अप्रैल, 2011, संपादकीय, पृ. 4.
6. कमलेश्वर, नयी कहानी की भूमिका, पृ. 9.
7. डॉ. विष्णु ओझा, नई कहानी : कितने क्षितिज संवेदना के' स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी (सं. डॉ. रामकुमार गुप्त), पृ. 36.
8. डॉ. कुमार कृष्ण, कहानी के नये प्रतिमान, पृ. 27.
9. डॉ. अशोक भाटिया, समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास, पृ. 138.
10. श्री जयेन्द्र त्रिवेदी, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी : विविध आन्दोलन, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी (सं. रामकुमार गुप्त), पृ. 22.
11. डॉ. हेतु भारद्वाज, हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास, पृ. 88.
12. डॉ. हेतु भारद्वाज, हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास, पृ. 77–78.
13. डॉ. पुष्पपाल सिंह, समकालीन हिन्दी कहानी : युगबोध का सन्दर्भ, पृ. 57.
14. अमृतराय, सम्पादकीय, नयी कहानियाँ, मार्च 1968, पृ. 5.
15. डॉ. हेतु भारद्वाज, हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास, पृ 93.
16. डॉ. हेतु भारद्वाज, हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास, पृ 93.
17. डॉ. पुष्पपाल सिंह, समकालीन हिन्दी कहानी, पृ. 29–30.
18. सम्पादक–राकेश वत्स, सक्रिय कहानी की भूमिका, पृ. 1.
19. डॉ. हेतु भारद्वाज, हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास, पृ. 110–111.

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

महावीर प्रसाद द्विवेदी का अनुवाद चिन्तन

सदरे आलम

पीएच डी शोधार्थी, जे एन यू, नई दिल्ली

महावीर प्रसाद द्विवेदी का चिन्तन फलक बहुत विस्तृत है। उनका अनुवाद कर्म इसी व्यापक चिन्तन फलक का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। यदि उस पूरे काल-खंड के दायरे में उनके चिन्तन को देखा जाए तो कई बिन्दु उभर कर आते हैं। उनका चिन्तन वस्तुतः उस युग की पूरी मीमांसा को गढ़ता है। वह युग मुख्य रूप से बंगाल विभाजन (सन् 1905), प्रथम विश्व युद्ध (सन् 1914) और रुसी क्रांति (सन् 1917) जैसे अनेक भारतीय और वैश्विक घटनाओं से परिपूर्ण रहा है।

उस पूरी घटना प्रक्रिया के दौरान द्विवेदी निरंतर हिन्दी समाज को दिशा -निर्देशित करते रहे। देश-विदेश के ज्ञान से भारत को जोड़ने के लिए उन्होंने कई पुस्तकों का अनुवाद किया। जिसमें जॉन स्टुअर्ट मिल की *On Liberty* का हिन्दी में *स्वाधीनता* पुस्तक तथा हर्बर्ट स्पेंसर की *Education* का हिन्दी में *शिक्षा*पुस्तक विशेष महत्त्व के है। उनकी अनुवाद दृष्टि में उपयोगिता का विशेष स्थान है। वह रचना देश, समाज और मनुष्यता के लिए कितना उपयोगी है, यह मायने रखता है। उन्होंने लिखा हैं- “जो चीज उपयोगी है वही कीमती है। जो जितना अधिक उपयोगी है वह उतनी ही अधिक कीमती भी है। हर एक बात का उपयोगीपन ही उसकी कीमत की माप है।”[1]

द्विवेदी ने फ्रांसिस बेकन जैसे इन विद्वानों के चिन्तन और विचारों से भारतीयों को परिचित कराया। उनको जहाँ भी जिस भाषा में भी मुक्तिगामी साहित्य दिखाई दिया, उनकी पूरी कोशिश रही कि उस साहित्य को किसी भी तरीके से भारत के पराधीन लोगों तक पहुँचाया जाए,ताकि उनकी सोई हुई चेतना जाग सके। उन्होंने इन सभी घटनाओं पर लेखन कर *सरस्वती* के माध्यम से लगातार 18 वर्षों तक लोगों को ज्ञान गंगा का दर्शन संकल्प के साथ पूरा किया। वे संकल्प इस प्रकार है- “वक्त की पाबंदी करना, रिश्वत न लेना, अपना काम ईमानदारी से करना और ज्ञान-वृद्धि के लिए सतत् प्रयत्न करते रहना।” [2] उनका अनुवाद कर्म अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारोंके अनुवाद कर्म का ही विस्तार और विकास है।

जरूरी है कि द्विवेदी के चिन्तन और अनुवाद कर्म का नए सिरे से पुनर्मूल्यांकन किया जाए। अनुवादक कर्म और मौलिक लेखन की तुलना करते हुए उन्होंने लिखा है- “हमारी बुद्धि में एक नवीन पुस्तक लिखने की अपेक्षा एक भाषा के ग्रन्थ को दूसरी भाषा में अनूदित करना विशेष कठिन काम है अनुवाद में कुछ मनमाना लिख देना बस नहीं होता।”[3] तत्कालीन सामाजिक और मानसिक परिस्थितियों को जानने के लिए *सरस्वती* में छपे आलेखों के साथ पत्रिका के पूरे मिजाज को भी बारीकी से समझने की आवश्यकता है। सन् 1907 से पहले की *सरस्वती* का राजनीतिक स्वर सन् 1907 के बाद के राजनीतिक स्वर से बिलकुल भिन्न है। इसलिए उनके द्वारा सम्पादित *सरस्वती* पत्रिका को नए सिरे से देखने-समझने की कोशिश की जानी चाहिए।

अपने लेखन के प्रति द्विवेदी बहुत अधिक सतर्क रहा करतेथे। इसी कारण बायरन की पुस्तक *ब्राइडल नाईट* का छायानुवाद *सोहागरात* लिखने पर अपने आत्म-निवेदन में उन्होंने माफी माँगी। उनका साहित्य के प्रति यह नजरिया तत्कालीन समाज की आवश्यकता कही जा सकती है। कुछ निर्धारित सन्दर्भों से हटकर अगर उनके अनुवाद-लेखन-चिन्तनको देखे तो समाज के उस समुदाय पर भी वह लिख रहे थे, जिसे आज हाशिए का

समाज कहा जाता है। यह चिन्तन उनकी कविताओं, निबंधों, अनूदित पुस्तकों एवं *सरस्वती* पत्रिका में उनके द्वारा स्वीकृत लेखों में देखा गया है। उन्होंने नवजागरणकालीन स्त्री प्रश्नों पर भी खूब लिखा है। उन्होंने सुधार की अपेक्षा स्त्री अधिकार की बात कही है।

द्विवेदी का चिन्तन वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परिपूर्ण था, जो रूढ़िवादी मानसिकता का खंडन किया है। उन्होंने प्राचीन उपलब्धियों, वेदों और शास्त्रों का पुनर्मूल्यांकन भी किया है। उनकी अनूदित पुस्तक और आलोचना में भी इसे देखा जा सकता है। उन्होंने सन् 1899 में श्री हर्ष के महाकाव्य *नैषधीय चरितम* के अंश 'श्री हर्ष का कलयुग' आलोचनात्मक लेख में वेदों के विरोध और समय के साथ इनमें बदलाव की बात किया है। इन वेदों में बहुत पुराने जमाने की रूढ़ियों का उल्लेख है। वे रूढिया उस समय जाय ज थी। जन समुदाय उन्हें सुदृष्टि से देखता था। आज-कल वे कुदृष्टि से देखी जाती है। इसी क्रम में उन्होंनेस्त्री सम्बन्धी परम्परागत रूढ़ियों का भी खंडन किया है। गौरतलब हो कि समाज ने अपने कुल की रक्षा के नाम पर स्त्रियों के लिए परम्परा और रिवाजों का निर्माण किया था।

द्विवेदी ने जनवरी, 1903 से दिसम्बर, 1920 तक *सरस्वती* पत्रिका के माध्यम से आधुनिक साहित्य को विषय की विविधता और भाषा के स्तर पर परिमार्जित किया। साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना को दिशा एवं दृष्टि प्रदान करने में द्विवेदी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। तत्कालीन समय में उन्होंने *सरस्वती* के माध्यम से साहित्यिक संस्कार का संवर्धन किया। इसके साथ जनजागरण एवं पुनर्जागरण का भी अभियान चलाया। स्वाधीनता आंदोलन को भी लगातार साहित्यिक ऊर्जा *सरस्वती* पत्रिका से मिलती रही।

द्विवेदी के साहित्य-सृजन का विस्तार देखने से यह मालूम होता है कि वे न केवल हिन्दी में कविता, कहानी, निबंध और आलोचना लिख रहे थे, बल्कि देश की तात्कालिक राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था के व्याख्याकार की भी भूमिका निभा रहे थे।

गुलाम भारत में अंग्रे जी राज के शोषण के खिलाफ, विशेषतः किसानों और खेतिहरों की समस्याओं को लेकर द्विवेदी निरंतर गुहार लगाते रहे। अंग्रेजों की शोषणवादी आर्थिक नीतियों का उन्होंने सतत् विरोध किया। समाज के हाशिए पर स्थित लोगों की परिस्थितियों के आलोक में उन्होंने आवा ज उठाई। स्त्री शिक्षा, बाल विवाह और स्त्री के अधिकार विषयों पर उनकी रचनाएँ इसी श्रेणी में आती हैं।

सम्पत्तिशास्त्र जैसी रचना द्विवेदी की विश्लेषक बुद्धि, जन जागरण के लिए कटिबद्ध और तीव्र सामाजिक चिन्ता को रेखांकित करती है। हिन्दी में अर्थशास्त्र की विवेचना करनेवाली सम्भवतः यह पहली पुस्तक है। उनका मानना था कि सुदृढ़ आर्थिक आधार ही समाज को गति देता है। इस दृष्टि को उन्होंने स्वयँ अपने लेखों और अन्य रचनाकारों से भी लिखवा कर दृढ़ता से प्रतिपादित किया।

कई पाश्चात्य विचारकों जैसे बेकन, मिल और स्पेंसर के काव्य ग्रन्थ का द्विवेदी ने हिन्दी में अनुवाद किया। संस्कृत के काव्य ग्रन्थ जैसे *नैषध, रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, किरातार्जुनिय* के हिन्दी अनुवाद भी किए। लगभग पच्चासी पुस्तकों में फैला उनके रचनात्मक कार्य का विस्तार हम पाठकों को प्रेरित करता है। जिस अवधि में वे रचनाशील थे वह चुनौतियों से भरा था। हिन्दी के व्यवस्थित अध्ययन की कोई निश्चित परम्परा भी नहीं थी। उन्होंने खुद राह बनाई। उन्होंने हिन्दी में आलोचनात्मक विमर्श को आरम्भ किया।

रामविलास शर्मा ने *महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण* में सम्भवतः पहली बार द्विवेदी के महत्त्व को आंका। उन्होंने नवजागरण की चेतना का पूर्ण विस्तार कर उसकी कमजोरियों को दूर करने का प्रयास किया। तत्कालीन शिक्षा को लेकर उनके चिन्तन एवंचिन्ता दोनों *सरस्वती* में छपे लेखों में दिखाई देती है। औपनिवेशिक शिक्षा के आगमन से भारतीय को सामाजिक अध्ययन के नए संदर्भ प्रदान किए। कई भाषाओं की लगातार गुलामी के शिकार अपने समाज की आंतरिक आवश्यकताओं का उन्होंने मूल्यांकन किया।

प्रेमचंद ने तो सन् 1933 में द्विवेदी पर *हंस* का विशेषांक में सम्पादकीय में लिखा है- 'आज हम जो कुछ भी हैं उन्हीं के बनाए हुए है। यदि द्विवेदी न हुए होते तो बेचारी हिन्दी कोसों पीछे होती। समुन्नति की इस सीमा तक उसे आने का मौका ही नहीं मिलता। उन्होंने हमारे लिए पथ भी बनाया। पथ-प्रदर्शक का काम भी किया।' मसलन, हिन्दी में साहित्य के अलावा दूसरे जरूरी विषयों को समावेशित करने और उसे मूल स्थापित करने का काम किया।

सम्प्रति, हिन्दी साहित्य में सबसे बड़ी चुनौती साहित्य को साहित्येतर विषयों की प्रस्तुति की है। जिसका रास्ता वर्षों पहले द्विवेदी ने *सरस्वती* पत्रिका के जरिए दिखाया था। उन्होंने अपने समय की इन सभी घटनाओं पर लेखन किया। उन्होंने अपने चिन्तन से *सरस्वती* के सिद्धांत वाक्य "सरस्वती श्रुति महती न हीयता।"[4] को प्रतिपादित किया। उ नके समकालीन राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, केशव चंद, एनी बेसेंट, रमाबाई, सावित्रीबाई, राणाडे, आनंदीबाई, जगन्नाथन, रुक्या से प्रेरणा लेने की है।

द्विवेदी की समर्पित साधना और उनका कर्मठ जीवन बुद्धिजीवियों और साहित्यकर्मियों के लिए एक मिसाल है। जिससे सामाजिक जिम्मेदारी और सृजनशीलता के लिए समर्पण की प्रेरणा मिलती है। आशा है कि हिन्दी भाषा, विचार एवं संवेदना के विकास में उनके ऐतिहासिक योगदान के सम्यक् मूल्याँकन का पथ प्रशस्त होगा। यही पथ हमारे विवेक सर्जना का भी समुचित दिशा निर्देश कर सकेगा।

प्रत्येक युग का साहित्य समसामयिक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने द्विवेदी युग में राष्ट्र के उत्थान पर बल देकर अंग्रे जी साम्राज्य से देश की मुक्ति की पृष्ठभूमि तैयार की। *सरस्वती* राष्ट्रीय आंदोलन के इस प्रभाव से अछूती न रह सकी। इसलिए इस पत्रिका ने भारत की अंग्रेजों से मुक्ति के लिए देशोन्नति को पहली शर्त मानी है।

अंग्रेजी शिक्षा साम्राज्यवाद की जड़ों को मजबूत कर रही थी। इसमें कला-कौशल और शिल्पकारिता का पूर्णतः अभाव था। द्विवेदी युग के लेखकों ने ऐसी शिक्षा की आलोचना की, जो देश के औद्योगिक विकास में सहायक न हो सके। उन्होंने उद्योग, कृषि और विज्ञान की शिक्षा पर जोर दिया। जिससे देश का पूँजीवादी ढंग से आर्थिक विकास सम्भव हो। भारत में शिक्षा का उद्देश्य नियंत्रण था। उस शिक्षा के फलस्वरूप एक ऐसे वर्ग का निर्माण करना था जो शासकों और आम जनता के बीच बिचौलियों का काम कर सके। वह वर्ग भारतीय समाज का स्वर्ण तबका था।

औपनिवेशिक शिक्षा का उद्देश्य शासकों की संस्कृति को श्रेष्ठ बतलाना और उनके नियंत्रण में भारतीयों में भारतीय समाज के विकास की उम्मीद जताना था। इसमें द्विवेदी सफल रहे। *सरस्वती* ने जाति प्रथा, छुआछूत, सती प्रथा और बाल विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ संघर्ष करके राष्ट्रीय आँदोलन की शक्ति को बढ़ाया। स्त्री समाज के लिए महत्त्वपूर्ण मानी गई हैं। उसे शिक्षित किए बिना राष्ट्र की प्रगति सम्भव नहीं। इसलिए *सरस्वती* ने स्त्री शिक्षा की ओर सरकार और जनता दोनों का ध्यान खींचा।

संदर्भ :

1. *महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली*, भाग 10, पृ 359
2. *महावीर प्रसाद द्विवेदी रचना संचयन*, पृ9-1
3. *महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली*, भाग 14, पृ 9-10
4. *हिन्दी साहित्य के विकास में सरस्वती का योगदान*, बच्चू शुक्ल, पृ 1

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

स्वाधीनता आंदोलन में साहित्यकारों की भूमिका

डॉ0 रोहित कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
इतिहास विभाग, बीआरएम कॉलेज, मुंगेर
मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

वैश्विक स्तर पर क्रांतियों का प्रादुर्भाव वैचारिक मंथन से संभव हुआ है। क्रांतियों के निर्माण की प्रक्रिया में वाणियों, भाषणों, लेखों तथा साहित्य की विभिन्न विधाओं माध्यम से जनमानस को उद्वेलित करती है। पुनः आन्दोलित मन व्यवहृत क्रांति का रूप धारण करती है और अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अतिवादी मार्ग का अनुसरण करती है। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के वैचारिक उत्पत्ति को प्लासी के मैदान में हुए राष्ट्रीय पराजय से आरंभ माना जा सकता है तथा इसका प्रवाह भारत के विभाजन तक देखा जा सकता है। क्रांति की यह विचारधारा सामान्यजनों, कृषकों, श्रमिकों, साहित्यकारों, सुधारकों, राजनेताओं से लेकर शासकों तथा सैनिकों तक प्रवाहित होता रहा है। राष्ट्रीय आंदोलन का क्षेत्र विचारों में चाहे जितने भी अस्पष्ट रहे हों किन्तु इनका लक्ष्य शुरू से ही पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने को लेकर रहा।

भारत में ब्रिटिश राजनीतिक सत्ता का आरंभ 1757 के प्लासी के युद्ध से माना जाता है, जब अंग्रेज ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना ने बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को हरा दिया। प्लासी के युद्ध का परिणाम असीम ऐतिहासिक महत्व रहा है। इसने बंगाल तथा अंततः पूरे भारत पर अंग्रेजों के अधिकार का रास्ता खोल दिया। बंगाल के कवि नवीनचंद्र सेन के अनुसार ''प्लासी के युद्ध के बाद भारत के लिए साश्वत दुःख की काली रात का आरंभ हुआ।'' प्लासी से ही अंग्रेजी शोषण के विरुद्ध वैचारिक क्रांति की ज्वाला सुलगने लगी।बंगाल से प्राप्त भारी राजस्व के सहारे अंग्रेजों ने एक शक्तिशाली सेना खड़ी की और इसी से उन्होंने शेष भारत की विजय का खर्च उठाया। बंगाल पर अंग्रेजों के नियंत्रण फ्रांसीसियों से लड़ी लड़ाई में निर्णायक भूमिका निभाई। प्लासी की विजय ने कंपनी और उसके नौकरों को इस योग्य बनाया कि वे बंगाल की असहाय जनता को लूटकर बेपनाह दौलत जमा कर सके। जैसा कि ब्रिटिश इतिहासकार थाप्सन और जी. टी. गैरेट ने लिखा है ''किसी क्रांति का आयोजन करना दुनिया का सबसे लाभदायी खेल समझा गया है। अंग्रेजों के मन से सोने का ऐसा लालच भर गया जो कोर्तेस और पिजारो के काल के स्पेनवासियों के बाद कभी देखने को नहीं मिला था। अब खासतौर पर बंगाल को तब तक चैन नहीं मिलने वाला था, जबकि उसके खून की एक–एक बूंद न निचुड़ जाए।''[1]

अंग्रेज बंगाल में खुली और निर्लज्जता पूर्ण लूटपाट कर रहे थे। उन्नीसवीं सदी के तीसरे दशक के अन्तिम वर्षों तथा चौथे दशक के दौरान बंगाल के बुद्धिजीवियों के बीच एक आमूल परिवर्तनकारी प्रवृत्ति पैदा हुई। यह प्रवृत्ति राममोहन राय की अपेक्षा अधिक आधुनिक थी और उसे यंग बंगाल आंदोलन के नाम से जाना जाता है। इसका नेता और प्रेरक नौजवान ऍंग्लो इंडियन हेनरी विवियन डेरोजिओ था। डेरोजिओ में आश्चर्यजनक प्रतिभा थी। उसने महान फ्रांसीसी क्रांति से प्रेरणा ग्रहण की और अपने जमाने के अत्यंत क्रांतिकारी विचारों को अपनाया। डेरोजिओ आधुनिक भारत का शायद प्रथम राष्ट्रवादी कवि था। उदाहरण के लिए उसने 1827 में लिखा :–

"My Country! in the days of glory past a beautous halo circled round the brow and worshipped as a diety thou wast where is that glory, where that reverence now? the eagle pinion is chained down at last. And grovelling in the lowly dust art thou. They minstel hath no wreath to wave for thee.

Save the sad story on thy misery!''[2]

(मेरे देश! बीती हुई गरिमा के दिनों में तुम्हारे ललाट के चारों ओर एक सुन्दर प्रभामंडल व्याप्त था और पूजा एक देवता के समान होती थी। वह गरिमा कहाँ है? आज वह श्रद्धा कहाँ है? आखिरकार गरूड़ के समान तुम्हारे पंखों को जंजीर से जकड़ दिया गया है और तुम धूल में औंधे पड़े हो। तुम्हारे चरण को तुम्हारी विपन्नता की दुःखद कहानी के सिवाय गूंथने के लिए कोई माला नहीं है।)

उसके एक शिष्य काशी प्रसाद घोष ने लिखा है –

Land of the Gods and lofty name

Land of the fair and beauty's spell.

land of the bards of mighty fame

My native land! for ever farewell (1830)

(देवताओं और उच्चनाम वाली भूमि, मनोहर और सौंदर्य से सम्मोहित करने वाली, अत्यधिक यशस्वी चरणों की भूमि; मेरी जन्मभूमि सदा के लिए अलविदा।)[3]

डेरोजिओं को उसकी क्रांतिकारिता के कारण 1831 में हिन्दू कॉलेज से हटा दिया गया और वह उसके तुरंत बाद 22 वर्ष की युवावस्था के हैजे से मर गया।

उपन्यासों, निबंधों, देशभक्तिपूर्ण काव्य आदि के रूप में साहित्यकारों ने राष्ट्रीय चेतना जगाने में प्रभुख भूमिका निभाई। बंगला में बंकिम चंद चट्टोपाध्याय तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर, असमी में लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ, मराठी में विष्ण शास्त्री चिपलुणकर, तमिल में सुब्रामन्य भारती, हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उर्दू में अल्ताफ हुसैन हाली इस काल के कुछ प्रमुख राष्ट्रवादी लेखक थे।

आधुनिक हिन्दी के पिता भारतेन्दु हरिश्चंद्र (1850–84) साहित्यकार मात्र न थे। वे स्वदेशी आंदोलन के अग्रदूत और प्रसिद्ध समाज सुधारक भी थे। उन्होंने अंग्रेजों के माया, छल और घात को काफी पहचाना था और उसे जगह–जगह व्यक्त किया था। इस संबंध में उनकी पहेली देखिए।

भीतर भीतर सब रस चूसे, बाहर से तन मन धन मूसै।

जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि साजन, नहिं अंगरेज।।[4]

उन्होंने 'भारत दुर्दशा' नाटक (1976) में अग्रेजों के राज में भारत की दुर्दशा का चित्र खींचा और उसकी इस दशा पर आंसू बहाए :–

रोअहु सब मिलकै आवहु भारत भाई।

हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।[5]

राजेश्वरी विक्टोरिया में विश्वास प्रकट करते हुए भी उन्होंने बताया कि भारत का धन विदेश जा रहा है, महंगाई, दुर्भिक्ष और महामारी का प्रकोप सर्वत्र दिखाई पड़ता है और उस पर भी तरह–तरह के टैक्स लगाकर भारत को तबाह किया जा रहा है। जो स्वदेश की हालत सुधारना चाहते हैं, उन्हें राजद्रोही करार दिया जाता है और 'इंग्लिश पॉलिसी नामक ऐक्ट के हाकिमेच्छा नामक दफा' से गिरफ्तार किया जाता है। इसी नाटक में उन्होंने अंग्रेजों के राज्य को भारत दुर्देव और राक्षस तक कहा। भारत दुर्देव खुद अपने कामों का बखान करते हुए कहता है :–

मरी बुलाऊं देस उजाड़ू मंहगा करके अन्न।

सबके ऊपर टिकस लगाऊं, धन है मुझसे धन्न।

मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे इक राक्षस मानो जी।।[6]

'भारत दुर्दशा : का कारण' भारत दुर्देव' है और उसके कामों से ही पहचाना जा सकता है कि इस राक्षस का वास्तविक नाम अंग्रेजी राज है। भारतेन्दु मंडल के अन्य कवि बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन' (1862–1922), प्रतापनारायण मिश्र (1856–94)आदि की रचनाओं में भी इसी तरह देश–प्रेम की झांकी मिलती है। इस युग का पूरा हिंदी साहित्य देश प्रेम और समाज सुधार की भावना से ओत–प्रोत है।

उर्दू में कितने ही ऐसे शायर हुए जिन्होंने 1857 में ब्रिटिश शासकों के खिलाफ कलम की जगह तलवार उठाई थी और इसीलिए कितनों के सर कलम कर दिए थे। फिर उर्दू में अन्य भाषाओं के साहित्य की तरह राष्ट्रीय भावना 1870 के बाद आई। इसे आरंभ करने वाले थे मुहम्मद हुसैन आजाद और ख्वाजा अल्ताफ हुसैन हाली। हाली मुसलमानों की तबाही के मर्सिए से शुरू कर देशभक्ति तक आए थे, लेकिन मुहम्मद हुसैन आजाद ने शुरू से ही आम देशभक्ति की धार्मिक चेतना को नज्म का विषय बनाया था।

इन दोनों की कौमी शायरी के उदाहरण 'हुब्बे–वतन' (देश–प्रेम) नामक कविताएँ हैं। आजाद 'आफताबे–सुबहे–वतन' (देश के प्रभात के सूर्य) से पूछते हैं कि आज तू किधर है? मेरे बिना सब जगह अंधेरा है। देश प्रेम की वस्तु का आज अकाल क्यों है? जमाना जरूर उलट गया है। आज 'हब्बुल वतन' (देशप्रेमियों के बदले यहाँ बुगजुल वतन) (देश से द्वेष करने वाले) हैं। तेरे बिना मुल्क हिन्द के घर बेचिराग हो रहे हैं। कब तक 'शिबे सियाह' (काली रात) से लोग तबाह होते रहेंगे? उनकी दिली ख्वाहिश है कि यह आफताब जल्दी निकले और देशवासी हुब्बे–वतन के जोश से भर जाए :–

अय आफताबे सुबहे वतन, तू किधर है आज

तू है किधर की कुछ नहीं आता नजर है आज

जबरेज जोशे हुब्बेवतन सबके जाय हो

सरशारे जौक–शौक, दिल खास–ओ–आम हो।[7]

हिन्दी और उर्दू से भी उच्च कोटि का राष्ट्रीय साहित्य बंगला और मराठी में आया। बंगला के बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय, मराठी के चिपलूणकर, गुजराती के नर्मद और तमिल के भारती आदि भारतेन्दु, आजाद और हाली की ही कोटि महान राष्ट्रीय साहित्यकार थे।

हिन्दी के महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के साहित्य में भारत की पराधीनता के प्रति भयंकर विक्षोभ है। भारतेन्दु युग में देशभक्ति की जो तलवारें राजभक्ति के म्यान में रखी हुई थी, वह बंग–भंग के समय म्यान के बाहर आ गई।

जागो फिर एक बार
शेरों की मांद में
आया है आज स्यार
जागो फिर एक बार।[8]

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि उद्‌बोधन देता है। वह भारतवासियों की पुरानी वीरता की बातें याद दिलाता है। वह बताता है कि उनके लिए कोई भी कार्य कठिन नहीं है। उन्हें तो केवल अपनी विस्मृत शक्ति को याद करके उसका केवल उपयोग करना है। पहले वे अनेक बार अपनी शक्ति का परिचय दे चुके हैं।

स्वतंत्रता संग्राम में साहित्यकारों ने अपनी लेखनी का तलवार के रूप में काम लिया। उन्होंने अपनी लेखनी से जनता को जागृत करने का बीड़ा उठाया और काफी हद तक सफल भी हुए।

आचार्य शिवपूजन सहाय ने पत्रकारिता और साहित्य रचना दोनों ही माध्यमों से स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण प्रेरक भूमिका का निर्वाह किया। उनकी 'विभूति' नामक स्वनामधन्य कहानी संग्रह में आकलित राष्ट्रीय संदर्भ की 'मुण्डमाल' कहानी का स्वतंत्रता सेनानियों की प्रेरणा की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इनके द्वारा लिखित लेख 'क्रांति का अमर सन्देश' पूरा का पूरा स्वतंत्रता आंदोलन से ही संदर्भित है। इसके अतिरिक्त 'स्वतंत्रता होने से पहले' तथा 'देश का ध्यान'शीर्षक लेखों में शिवपूजन सहाय ने स्वतंत्रता सेनानियों के लिए उनकी पात्रता और उनके कर्त्तव्यों का विवेचन करते हुए स्वतंत्रता का गंभीर और चिन्तपूर्ण शास्त्र ही प्रस्तुत कर दिया है, जो आज भी प्रासंगिक और माननीय है।ऐसे ही दूसरे समर्थ कवि थे मुकुटलाल मिश्र 'रंग'। ये शृंगारिक कवि थे लेकिन वे युगचेतना संपन्न भी थे। इन्होंने 'दुर्गासप्तशती' का 'दुर्गाविजय' के नाम से पद्यानुवाद किया है, जिसमें दुर्गा और महिषासुर के युद्ध का विश्लेषण कर अनीति पर नीति की विजय की प्रेरणा दी गयी है। इन्होंने तिलक और गाँधीजी पर कविताएँ लिखी थी, जिनकी एक पंक्ति – 'राक्षस अंग्रेजन हित, चरखा सुदर्शन है।'

जन–जन में आजादी की अलख जगाने वाली कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता में लाखों के जनसमूह में वीरता का संचार करने वाला अद्‌भुत गुण था। लोग रात–रात प्रतीक्षा करते 'झांसी की रानी' आने वाली है। उनकी कविता तो जैसे 'बिगुल का आह्वान' था। वह सुभद्रा नहीं 'लक्ष्मीबाई' का मानो अवतार बनकर आई थी। उनकी कविता में देश का जन–जन, गाँव, खेत–खलिहान सब शामिल थे –

महलों ने दी आग, झोपड़ी ने ज्वाला सुलगाई थी,
यह स्वतंत्रता की चिंगारी अंतरतम से आई थी
पर पीछे हूरोज आ गया, हाय घिरी अब रानी थी
जाओ रानी याद रखेंगे हम कृतज्ञ भारतवासी...।[9]

सुभद्रा कुमारी की कविताओं तथा कहानियों में राष्ट्रीयता का स्वर प्रमुख था। वह आम आदमी के दिल की आवाज कहती थी। कहानियों के संवादों में निर्भीकता और देश के लिए बलिदान हो जाने की ध्वनि स्पष्ट सुनाई देती थी।

कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद अपने युग के हिसाब से क्रांतिकारी समाज सुधारक साहित्यकार तो थे ही उनका निजी जीवन भी संघर्ष और बगावत का रहा है। उन्होंने कदम–कदम पर अंगरेजी राज का प्रतिरोध किया। आठ फरवरी 1921 को बाले मियाँ के मैदान में महात्मा गांधी का भाषण था। महात्मा गांधी के भाषण ने मुंशी जी को अन्दर तक हिला दिया। गांधी के विचारों, स्वराज की कल्पनाओं और स्वतंत्रता के प्रति उनकी उन्मुखता बढ़ गई। जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड हो चुका था। प्रेमचंद इससे भी बहुत प्रभावित हुए थे गांधीजी की जनसभा में आने के बाद सहसा उनमें यह मानसिक परिवर्तन हुआ कि अब वे रचनाओं और जीवन को किसी बड़े उद्देश्य के प्रति समर्पित करें। सरकारी नौकरी में रहते हुए उन्होंने अंग्रेजी राज के प्रतिबंधों की कभी परवाह नहीं की थी।1905 में उनकी उर्दू की रचना 'सोजे वतन' जब जब्त हुई तो वे नौकरी में थे। अंगरेज कलक्टर ने उन्हें सख्त हिदायत दी थी कि वे सरकार के खिलाफ न लिखें। उन्होंने कभी परवाह नहीं की। धनपत राय मूल नाम के बजाय वे प्रेमचंद के नाम से लिखने लगे।[10]

1928 से 1942 तक रामधारी सिंह दिनकर जी की अनेक आग्नेय कविताएँ निकली, जिन्होंने भारतवासियों को प्रेरित करने के साथ कवि को भी असाधारण साहस प्रदान किया। इनमें प्राणभंग, हिमालय, दिल्ली, हाहाकार तथा आग की भीख आदि उल्लेखनीय हैं। नमक–कानून के उल्लंघन के साथ दिनकर जी की कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं :

'यह विस्मय बड़ा प्रबाल है, बल को बलहीन रिझाते,

मरने वाले हंसते हैं, आंसू है अधिक बहाते।[11]

इस युग में देवव्रत शास्त्री और जगन्नाथ मिश्र दो ऐसे पत्रकार थे, जो राजनीति से सीधी तरह जुड़े थे और अपने लेखों से राष्ट्रीय चेतना को बल प्रदान कर रहे थे। राहुल सांकृत्यायन की अनेक कहानियाँ भी पराधीनता की पीड़ा के अंकन की दृष्टि से स्मरणीय हैं।

कवियों में मोहनलाल महतो 'वियोगी' ने 'आर्यावर्त्त' महाकाव्य के द्वारा भारतीय इतिहास की एक अत्यंत शौर्यपूर्ण घटना के चित्रण के साथ नारी के कर्त्तव्य का निर्धारण किया है। गोपाल सिंह नेपाली ने भी देशभक्ति पर कविता लिखी है। गांधी जी के नेतृत्व में चलने वाले अहिंसक संग्राम का उन्होंने जो अंकन किया है वह है –

है अपूर्व यह युद्ध हमारा, हिंसा की न लड़ाई है,

तलवारों का धार मोड़ने, गरदन आगे आई है।[12]

जयशंकर प्रसाद जी न केवल कवि, कहानी–लेखक, उपन्यासकार अथवा नाटककार ही थे, बल्कि वे इतिहास के मौलिक अन्वेषक भी थे। हिन्दी में चन्द्रगुप्त मौर्य के संबंध में विशद ऐतिहासिक विवेचना सबसे पहले 'प्रसाद' जी ने ही की थी। सर्वत्र 1960 ई. में 'प्रसाद' जी ने यह विवेचना 'चन्द्रगुप्त मौर्य' के नाम से नाट्य–ग्रंथ के रूप में की।विदेशियों से संघर्ष में भारत की विजय दिखाकर प्रसाद ने अपने समय के स्वाधीनता संघर्ष की ओर स्पष्ट संकेत ही नहीं किया है वरन् अपनी मनोभावना को वाणी देने का प्रयत्न किया है।इस नाटक के नायक चन्द्रगुप्त की वाणी ओजस्वीपूर्ण है। चन्द्रगुप्त : आर्य। संसार भर की नीति और शिक्षा का अर्थ मैंने यही समझा

है। कि आत्म–सम्मान के लिए मर–मिटना ही दिव्य जीवन है।[13] प्रसाद ने अपनी लेखनी से भारतीयों को आत्म–सम्मान के साथ जीने का मार्ग दिखलाया। इसी नाटक में चाणक्य कहते हैं– सिकन्दर! तुम वीर हो, भारतीय सदैव उत्तम गुणों की पूजा करते हैं। तुम्हारी जल–यात्रा मंगलमय हो। हम लोग युद्ध करना जानते हैं द्वेष नहीं।[14]इस प्रकार प्रसाद ने भारतीयों में वीरत्व के गुणों को उभारने का प्रयास किया ताकि वे परतंत्रता की बेड़ी को तोड़ सकें।प्रसाद ने भारतीयों को स्वतंत्र राष्ट्र के नागरिकों के कर्त्तव्यों को अपने नाटक चंद्रगुप्त नाटक में स्थान दी है। वे चाणक्य से कहलवाते हैं– स्मरण रखना होगा कि ईश्वर ने सब मनुष्यों को स्वतंत्र उत्पन्न किया है, परन्तु व्यक्तिगत स्वतंत्रता वहीं तक दी जा सकती है, जहाँ दूसरों की स्वतंत्रता में बाधा न पड़े। यही राष्ट्रीय नियमों का मूल है।[15]

जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' महाकाव्य आधुनिक युग की अद्भुत कृति है। इसमें एक ओर विविध प्रकार की कल्पनाओं, भावनाओं और अनुभूतियों की मणियाँ भरी हुई है वहीं दूसरी ओर कवि अपने राजनीतिक विचारों को व्यक्त करते हुए शासक एवं शासित दोनों को सन्मार्ग भी दिखाते हैं।

तुम दोनों...... सुयश गीति।

दर्शन सर्ग में कवि प्रसाद ने अपने राजनीतिक विचारों को व्यक्त करते हुए लिखा है कि किसी भी राष्ट्र का शासन शस्त्र के बल पर अधिक दिन तक नहीं चलता, ऐसा राज्य क्षणिक एवं अस्थायी होता है, परन्तु जो शासक व्यर्थ का आतंक न फैलाकर अपनी प्रजा के हृदय को जीतलेता है, उसका शासन चिरस्थायी होता है और ऐसे शासक का यशोगान सर्वत्र गाया जाता है।[16] इसमें प्रसाद जी भारत में शासन कर रहे अंग्रेजों को एक प्रकार से चेतावनी देते नजर आते हैं।

मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि थे। इनकी ख्याति का मूलाधार 'भारत–भारती' (1912) है। 'भारत भारती' ने हिन्दी भाषा–भाषी भारतीय जनता में राष्ट्र के प्रति गर्व, गौरव की भावना जाग्रत की। गुप्त जी मातृभूमि को केवल भूमि–खण्ड नहीं मानते हैं अपितु 'सगुण मूर्त्ति सर्वेश की' मानते हैं।

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य चन्द युग मुकुट मेखला रत्नाकार है।
नदिया प्रेम प्रवाह, फूल तारे मण्डन है,
बन्दीजन खगवृन्द, शेष फन सिंहासन है।
करते अभिषेक पयोद है, बलिहारी इस वेष की
हे मातृभूमि। तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की।।[17]

'भारत भारती' की रचना के पश्चात् ही ये राष्ट्रकवि के रूप में विख्यात हुए। भारतीय संस्कृति के प्रवक्ता होने के साथ–साथ ये नवीन भारत के राष्ट्रीय कवि भी थे। इनकी प्रायः सभी रचनाएँ राष्ट्रीयता से ओत–प्रोत हैं। उत्तर भारत में राष्ट्रीयता के प्रचार और प्रसार में 'भारत भारती' के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता है। इनकी परवर्ती रचनाएँ भी असन्दिग्ध रूप से राष्ट्र भावना से परिपूर्ण हैं।

राष्ट्रीय आंदोलन के युग में एक ओर तो कवियों ने भारत की आन्तरिक विसंगतियों और विषमताओं को दूर करने के लिए देश का आह्वान किया और दूसरी ओर जनता को विदेशी शासन से मुक्ति पाने के लिए स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़ने की प्रेरणा दी। माखनलाल चतुर्वेदी ने राष्ट्र–प्रेम को ही मुखरित नहीं किया बल्कि उन्होंने स्वयं देश की आजादी की लड़ाई में भाग लिया। फलस्वरूप उनकी देश–प्रेम की कविताओं में अनुभूति की सच्चाई और आवेश दिखायी देता है। उदाहरणार्थ माखनलाल चतुर्वेदी ने 'कैदी और कोकिला' शीर्षक कविता में अपनी अनुभूति को ही एक उच्चतर और लोक–सामान्य भावभूमि के स्तर पर व्यक्त करने का प्रयास किया है।

क्या? देख न सकती जंजीरों का गहना।

हथकडियाँ क्यों? यह ब्रिटिश राज्य का गहना।।

कोल्हू का चर्रक चूं? जीवन की तान।

मिट्टी पर लिखे अंगुलियों के क्या गान?

हूं मोट खींचता लगा पेट पर जुआ।

खाकी करता हूं ब्रिटिश अकड़ का कूआं।।[18]

इन पंक्तियों में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोधी किसी भी ऐसे व्यक्ति की आवाज सुनी जा सकती है जिसे आजादी के लिए संघर्ष करने के जुर्म में कैद किया गया हो।

माखनलाल चतुर्वेदी एक सजग, संवेदनशील एवं उत्साही कवि थे और देश की दशा के प्रति जागरूक थे। आरम्भ में ये क्रांति के दर्शन से प्रभावित हुए थे किन्तु बाद में इनकी आस्था गांधीवाद की ओर हुई। अपनी राजनीतिक सक्रियता के कारण इन्हें कई बार बन्दी बनाया गया। जेल के जीवन काल में इन्होंने अनेक कविताओं की रचना की। इनकी प्रमुख कविता संग्रह है– 'हिमकिरीटिनी' और 'हिमतरंगिनी'। चतुर्वेदी जी की रचनाओं में देश के प्रति गम्भीर प्रेम और देश कल्याण के लिए आत्मोसर्ग की उत्कट भावना दिखायी देती है। इस मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को तभी सफलता मिल सकती है जब वह जीवन के सुख और वैभव को ठुकराकर संघर्ष और साधना का मार्ग अपनाये। इन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा देशवासियों को इसी संघर्ष और साधना के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। इनकी रचनाओं का प्रधान स्वर राष्ट्र–प्रेम और आत्मोसर्ग का है।

छायावाद युग के एक प्रमुख कवि हैं– रामनरेश त्रिपाठी (1889–1960)। त्रिपाठी जी ने 'मानसी' 1927) की कतिपय देशभक्तिपरक कविताओं के अतिरिक्त 'पथिक' (1920) और 'स्वप्न' (1920) शीर्षक खण्डकाव्यों में काल्पनिक कथाओं के माध्यम से देश के उद्धार के लिए आत्मोसर्ग की भावना को व्यक्त किया है। दोनों काव्यों के नायक सामान्य जनता के प्रतिनिधि हैं। 'पथिक' का नायक जन–जीवन के वैषम्य को दूर करने के उद्देश्य से राजतंत्र से लोहा लेता है और अन्त में इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपना तथा अपने परिवार का बलिदान कर देता है। 'स्वप्न' में कवि ने एक ऐसे संवेदनशील नायक की कथा का वर्णन किया है जो पहले तो स्वार्थ और लोकसेवा अथवा व्यक्तिगत सुख और समाज–कल्याण में विरोध देखता है, किन्तु फिर उसे कर्त्तव्य का बोध होता है और वह देश के कल्याण के लिए पूरी शक्ति से कर्मलीन होता है। 'पथिक' के विपरीत इस काव्य का अन्त सुखद है। इन दोनों काव्यों में कवि ने राष्ट्र सेवा के आदर्श की स्थापना की है तथा समाज विरोधी शक्तियों के प्रति विद्रोह करने की प्रेरणा दी है। इस प्रकार ये कल्पित कथानक भी राष्ट्र प्रेम के आदर्श नायक बन गए हैं।

स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों में साहित्यकारों ने अपनी पौरुषोदीप्त रचनाओं से आम जनता का उत्साह बढ़ाया और धमनियों में क्रांतिकारी रक्त प्रवाह तीव्र कर दिया।राष्ट्रीय आंदोलन के वैचारिक इतिहास से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि जिस समय कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बुर्जुआ नेता या तो पूर्ण स्वतंत्रता की बात करने से डरते थे या ब्रिटिश हुकूमत को युग–युग तक बनाए रखने की बात करते थे, उस वक्त राष्ट्रवादी साहित्यकारों ने भारत की पूर्ण स्वतंत्रता का और उसकी प्राप्ति के लिए सशस्त्र क्रांति का नारा बुलंद किया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि ब्रिटिश राज के सुधार का नहीं, इसके खात्मे की जरूरत है। दरअसल, राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में साहित्यकार उदारवादियों से कहीं आगे थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बिपिन चन्द्र : आधुनिक भारत, चतुर्थ संस्करण 1995 एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, पृ.41
2. पूर्वोक्त, पृ.87
3. पूर्वोक्त, पृ.88
4. शिवलोचन पाण्डेय, हृदयेश मिश्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, सप्तम संस्करण 1996, भारती भवन, पटना, पृ.149
5. पूर्वोक्त, पृ.151
6. अयोध्या सिंह : भारत का मुक्तिसंग्राम, तीसरा संस्करण, 2003, ग्रंथ शिल्पी इंडिया प्रा.लि., पृ. 64
7. पूर्वोक्त, पृ.65
8. राकेश : निराला और राग–विराग, पंचम संस्करण, 1999, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ, पृ.110–111
9. हरिकृष्ण देवसरे : संडे नई दुनिया, 2 मई से 8 मई, 2010, पृ.41
10. अशोक चौधरी : दैनिक जागरण, गोरखपुर, 31 जुलाई, पृ.2
11. एन.एन. ओझा, बिहार दिग्दर्शिका, प्रथम संस्करण, 2005, क्रॉनिकल पब्लिकेशंस प्रा.लि., नई दिल्ली, पृ.144
12. पूर्वोक्त
13. जयशंकर प्रसाद : चन्द्रगुप्त (ऐतिहासिक नाटक), लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1997, पृ.43
14. पूर्वोक्त, पृ.106
15. पूर्वोक्त, पृ.122
16. डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, कामायनी भाष्य, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ.578
17. डॉ. नागेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, 25वां संस्करण, मयूर पेपरबैक्स, पृ.500
18. पूर्वोक्त, पृ.533

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

डॉ. गोरख प्रसाद मस्ताना के कविताओं में नारी का चित्रण

डॉ0 विकास कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश
सम्पादक– International Literary Quest एवं World Translation

भारतीय वाङ्गमय में में नारी के विभिन्न स्वरूपों का विशद व्याख्याएँ उपस्थित हैं। भाषा कोई भी हो, नारी से संबंधित चिंतन और चर्चाओं को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। सच तो यह है कि नारी जीवन की व्याख्या के बिना जी साहित्य अपूर्ण है जहां उसे विस्मृत करने का प्रयास किया गया है।

गद्य हो या पद्य पारंपरिक रचनाएं हो या समकालीन चिंतन, नारी किसी न किसी रूप में वहां अपनी विशेषता के साथ उपस्थित है। काव्य का स्वरूप चाहे जो हो, नारी जीवन के चित्रण के बिना अधूरा ही प्रतीत होता है। वह कहीं ममतामयी माँ है तो कहीं त्याग और समर्पण से भाव से परिपूर्ण पत्नी। कहीं प्रेमिका है तो कहीं बहन, कहीं शक्ति स्वरूपा है तो कहीं कुसुम-कलियों से सुकुमार पात्र। कहीं विरहणी है तो कहीं प्रतीक्षारत वनिता। तुलसी से लेकर मीरा तक, सुभद्रा कुमारी चौहान से लेकर महादेवी वर्मा तक और पंत से लेकर प्रसाद तक, रामधारी सिंह दिनकर से लेकर गोपाल सिंह नेपाली तक सब ने अपनी कविताओं में, गीतों में नारी के बहुआयामी जीवन का बहुविविध चित्रण किया है।

डॉ. मस्ताना उसी परंपरा के एक रचनाकार हैं जिनके गीति काव्य और समकालीन रचनाओं में नारी जीवन का चित्र विभिन्न रंगों में उकेरा गया है। कवि की लेखनी वैसे तो साहित्य के बहुरंगी दृश्यों से परिचित कराती है किंतु कवि ने अपने गीतों और कविताओं में नारी जीवन को विविध रूपों में प्रस्तुत करने में अत्यंत सफल दिखाई देता है।

डॉ. मस्ताना ने अपने गीतों में नारी के मां- स्वरूप का चित्रण करते हुए उसे बहुत ही महत्वपूर्ण माना है। ममता की मूर्ति होती है माँ जो मात्र श्रद्धा और विश्वास ही नहीं, साक्षात सुधा- स्वरूपा है जो अपने वक्ष के अमृत बूंदों से अपने बच्चों को नवजीवन प्रदान करती है। करुणा, दया और ममत्व के आदर्शों से आप्लावित नारी का मातृ- स्वरूप सर्वदा वंदनीय है-

"मातृ ममतामयी होती कौन सा दर्शन है ये
लुटाती सर्वस्य शिशु पर कौन सा अर्पण है ये
रक्त उसे वक्त का है दूध अमृत आधार भी
हो गया कैसे ये अनुसंधान होना चाहिए ।[1]

मातृ- स्वरूपा नारी का जीवन सर्वदा त्याग और सबके कल्याण भाव से परिपूर्ण होता है। जहां अपनों की कुशलता के लिए उसकी सांसो का सितार बजता है। पूजा आराधना या वंदन- चंदन सब में कल्याण भाव निहित होता है। ' माँ' शिक्षक कविता में कवि मस्ताना ने यही भाव उकेरा है-

"वर्षों से असीम लालसा लिए जाती है/
मंदिर/
मन्नतों को मांगते हुए कब हो गई बूढ़ी/
किसी ने नहीं जाना
उम्मीदों का दीप जलाती रही माँ/ सुबह-शाम
भले तुलसी मुरझा गई
माँ ना मुरझाई /[2]

कविता मात्र विचारों का प्रणयन नहीं होती। यह सत्य से संस्कार का संसाधन है भी है। कवि डॉ. मस्ताना के गीतिकाव्यों में नारी का आर्या- स्वरूप भी बड़ी कुशलता के साथ व्याख्यायित हुआ है। नारी को जीवन का एक पहिया मानते हुए कवि कहता है- "तुम्हारा स्मरण करके हवा जब गुनगुनाती है गहन निद्रा में भी मुझको तुम्हारी याद आती है। तुम्हारी मुस्कुराहट से भी, झरते सुमन बासंती बयन से सरसते रहते हैं, मधुरिम बोल रसवंती नयन से दीप की लौ में, ये दुनिया झिलमिलाती है।"[3]

एक पति अपनी भार्या को किस दृष्टि से देखता है, यहां उसके प्रेम और उसकी कृतज्ञता देखते ही बनती है।

बुद्ध की यशोधरा भी नारी के उन्हीं गुणों से समृद्ध है तभी तो कवि यशोधरा के नारी स्वरूप का महत्व देते लिखते हैं-

"तू अपनी तप त्याग भरी,
तप त्याग में किस पर कौन है भारी
लिखा हुआ इतिहास में भी यह,

अर्पण में नित नारी है भारी। [4]

प्रेम और नारी यह दोनों शब्द एक दूसरे के पर्याय हैं। प्रेमिका भाव में गोते लेने वाली नायिका के रूप में नारी का स्वरूप प्रांजल, पवित्र और प्रेम रस से समृद्ध होता है,कवि मस्ताना ने नारी के रूप का ललित करते हुए लिखा है-

"मेरी हथेलियों पर लिख दो
अमर प्रेम का गानप्राण तू हो मेरे।
मेरी साँसो के पन्नों पर कोमल
मधुमय तान प्राण तू हो मेरे।"

नायिका को अपने पर गर्व है क्योंकि उसमें कनुप्रिया के सदृश्य प्रेम की पवित्रता है इसी भाव को डॉ मस्ताना व्यक्त करते हुए लिखा है कि

"राधा का वह स्नेह सजल था, बन गई राधा रानी

बिनु कनुप्रिया न पूरी होती, कोई कृष्ण -कहानी प्रेम कथानक लिखने वालों का है यह अवधान प्राण तू हो मेरे ।"[5]

नारी का स्नेह समर्पण इतना पावन और पुलकित कर देने वाला होता है कि यह शोध का विषय हो जाता है। वह हर स्थिति में अपने पति को आनंदमय देखने की ही कामना करती है। इसी भाव को शब्दों में व्यक्त करते हुए कवि ने लिखा है-

मैं रहूं चाहे जैसे भी जिस हाल में
तुझको मेरी खुशी में खुशी है
मेरी आंखों में सावन भादो मगर
मुझको तेरी हंसी में हंसी है।[6]

डॉ. मस्ताना के गीतों में नारी को जहां त्याग ममता और समर्पण का पर्याय माना गया है वहीं उसके सौंदर्य का चित्रण भी अत्यंत मनोहारी है। नारी का सौन्दर्य कवियों की रचनात्मकता का प्रमुख विषय रहा है। यही सौंदर्य पुरुष को उसके प्रति आकर्षण का तत्व प्रदान करता है और आसक्ति का मंत्र भी।कवि मस्ताना नारी के इसी सौंदर्य पर सम्मोहित हो अपनी लेखनी में कहते हैं कि

" चूड़ी बिंदी काजल लिख
मेहंदी वाला कुंतल लिख

मुदुल जोमधु से भाव बयन का
चाल चपल आमंत्रण दे जो
उस पर हिरनी चंचल लिख।"[7]

एक प्रेमी अपनी प्रेमिका के सौंदर्य- सरिता में जब गोते लेने लगता है तो, वह बरबस ही गा उठता है-

रस है, अधर, छंद सी आंखें
अलंकार मय तन है रे !
पद्मावत सी प्रिया तिहारो
वृदावन सा मन है रे!
चन्द्र ज्योत्सना सी आभामय,
शाम सुरमयी तू है
क्षितिजांगन में बिखरी जैसे फूलों की खुशबू है
चित्रलिपि सज्जित लगती ज्यों पुष्पों का आ अंकन है रे![8]

डॉ. मस्ताना के गीत अपने विविध रूपों में नारी जीवन के अनेकानेक पक्षों पर अपनी दृष्टि डालते दिखाई देते हैं। उन गीतों में प्रेम और सौंदर्य के साथ नारी का रूप भी विद्यमान है जो शक्ति और शौर्य का भाव भी उपस्थित करता है तब कवि कहता है -

धरा का श्रृंगार नारी, सृजन का आधार नारी चरण देवल के सरिस है, स्वर्ग का है द्वार नारी

आग भी वह है, राग भी है वह
है वही है नवरात्र पावन, सप्तरंगी फाग भी वह
समय आने पर है बनती,फूल से अंगार नारी
पुष्प की पुलकन कभी तो, शिव का तलवार नारी ।[9]

नारी का एक विरहिणी रूप भी है जो कवियों के अध्ययन का विषय रहा है। वैसे तो प्रतीक्षारत नारी परदेश गये अपने पति की आवन की फिक्र में उंगलियों घिसती रहती है, पर उसकी पीड़ा अवर्णनीय होती है जिसे कवि मस्ताना ने अपने एक गीत में व्यक्त किया है-

'जब से तुम परदेस बसे हो
जीवन ही सुनसान हो गया
स्वप्नहीन हो गये नयन

मन का आंगन वीरान हो गया ।
कोयल भी अब नहीं कूकती शोकाकुल अमराई है
सुधियों के आंगन में अब तो बस तेरी परछाई है।[10]

विरह का यह भाव अत्यंत मार्मिक बनता है जो हृदय को विह्वल कर देने वाला है।

नारी का एक पक्ष और भी है जहां वह अत्यंत लाचार और असहाय करती है। नारी एक भ्रूण रूप में अपने साथ होने वाले अन्याय को जानती है और अपनी मां से एक विनम्र निवेदन करती है -

मातृ शब्द का कलुष दाग मत कभी लगाना
मुझे जन्म देना ममता का धर्म निभाना
अपने उदर स्वर्ग से तू मत मुझे हटाना
मेरा दोष बताना मां फिर मुझे मिटाना।[11]

नारी का शोषण आज समाज का एक कलंक बनकर रह गया है किंतु शोषण के विरुद्ध जब नारी जागृत हो जाती है तो बन जाती है एक ज्वाला। कवि मस्ताना ने नारी के इसी स्वरूप को अपनी एक रचना प्रस्तुत किया है-

"छिलकों की तरह उतारे गए वस्त्र/
चोप की तरह गारी गयी अस्मिता
आम की तरह / चूसी गई इज्जत
बची केवल आँठी/ जिसका होगा पुनर्जन्म
आँठी से निकलेगी एक चिंगारी
फिर/ लोहा तो क्या
पिघल जायेगी शोषण की हड्डी तक।[12]

यह केवल नारी का क्रोध नहीं है। सामाजिक विद्रूपता के विरुद्ध उसका विद्रोह भी है। इस तरह डॉ. मस्ताना के गीतों में नारी के विविध स्वरूपों का बड़ा ही प्रांजल और अर्थपूर्ण विवेचना देखने को मिलती है और कवि अपने गीतों के माध्यम से नारी के अनेकानेक स्वरूप को चित्रित करने में सफल हुआ है और यही विविधता उनके कवि और काव्य की उपादेयता को प्रमाणित कर देती है।

संदर्भ ग्रंथ:

1. 'उपकार' गीत मरते नहीं,हिंदी गीत संग्रह, शारदा पुस्तक मंदिर, दिल्ली, 2014 पृष्ठ 91
2. 'मां', बिंदु से सिंधु तक, हिंदी समकालीन कविता संग्रह, जेबीएस पब्लिशर्स, इंडिया, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ -96
3. 'स्मरण', रेत में फुहार, हिंदी गीत संग्रह, जेबीएस पब्लिशर्स, इंडिया, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ -17
4. यशोधरा, तथागत, हिंदी खंड काव्य,नवजागरण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ संख्या 76
5. मेरे प्राण, रेत में फुहार, पृष्ठ -35
6. समर्पण, रेत में फुहार, पृष्ठ- 30
7. गीत, अक्षर अक्षर बोलेगा, संपादक डॉ गोरख प्रसाद मस्ताना, नवजागरण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019 पृष्ठ -23
8. रूप चंदन, गीत मरते नहीं, पृष्ठ 64
9. नारी, गीत मरते नहीं, पृष्ठ 94-95
10. प्रतीक्षा, रेत में फुहार, पृष्ठ 53
11. मेरा दोष बताना मां,गीत मरते नहीं, पृष्ठ 112
12. आँठी, बिंदु से सिंधु तक, पृष्ठ 35

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

संतों का गढ़ छत्तीसगढ़

संजय मिंज
शोध छात्र
संत गहिरा गुरु विश्वविद्यालय सरगुजा, अम्बिकापुर (छ.ग.)

प्राचीन काल से ही छत्तीसगढ़ संतों का गढ़ रहा है। छत्तीसगढ़ में अनेक संतों की कार्यस्थली एवं जन्मस्थली रही है। संतों ने समाज को एक नवीन क्रांतिकारी व प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रदान किये हैं। आचरण की शुद्धता पर बल देते हुए बाह्य अडम्बरों, कर्मकाण्डों का निषेध उन्होंने किया तथा समाज को एक नई दशा व दिशा दी है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह शूद्र, ब्राहमण, हिन्दु, या मुसलमान हों, गृहस्थ हो या साधक, मोची, जुलाहा या लखपति हो सभी की समानता की घोषणा करके सन्तों ने साम्यवाद की पुनः प्रतिष्ठा की। सन्तों ने सिद्धों व योगियों कर भाँति धार्मिकता को समाजिकता से पृथक, विच्छिन्न एंव विरोधी रूप न देकर दोनों को सुसम्बद्ध व सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया है। भारतीय हिन्दी साहित्य के समान्तर छत्तीसगढ़ में भी निर्गुण और सगुण भक्तिधारा गतिमान थी। अधिकांश निर्गुणिय संत अनपढ़ और अल्पशिक्षित ही थे। शास्त्रीय ज्ञान का आघार न होने के कारण ये अपने अनुभव की ही बात कहने को बाध्य थे। अल्पशिक्षित होने के कारण इन संतों ने विषय को ही महत्व दिया, भाषा को नहीं। संत सुनी सुनाई बातों पर विश्वास नहीं करते थे। सन्तों के समागम से जो कुछ सुना उसे ज्यों का त्यों नहीं मानते थे, बल्कि अनुभव के द्वारा अर्जित सत्यता को वरीयता देते थे। छत्तीसगढ़ के प्रमुख सन्तो कासमान्य परिचय नीचे प्रस्तुत है। –

संत धनी धर्मदास–:धनी धर्मदास को छतीसगढ़ का प्रथम संत होने का गौरव प्राप्त है। धनी धर्मदास संत कबीर के निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख संत और संत कबीर के प्रमुख शिष्य थे। संत धनी धर्मदास छत्तीसगढ़ में कबीर पंथ के प्रवर्तक माने जाते हैं।

संत धनी धर्मदास का जन्म सन् 1502 ई. को मध्यप्रदेश राज्य के जिला शहडोल के बांधोगढ़ में हुआ था। इनका विवाह सुलक्षणावती के साथ सन् 1530 ई. को हुआ था, जो पथरहट नगर की थी।कबीर पंथ में सुलक्षणावती को अमीनमाता के नाम से जाना जाता है।संत धर्मदास और उनकी पत्नी सुलक्षणावती ने सन् 1570ई. में बांधोगढ़ के विशाल जनसमूह के सामने अपने गुरु कबीर दास से दीक्षा ली थी। उनके अखण्ड भक्ति से प्रसन्न होकर संत कबीर दास जी ने संत धनीधर्म दास जी को अपना मुख्य उतराधिकारी शिष्य बनाया और जीवन प्रर्यन्त कबीर पंथ की अगुवाई का आशीर्वाद दिया था।संत कबीर दास जी के वचनों को एकत्रित कर उन्हें लिपिबद्ध करने श्रेय संत कबीर दास जी को ही जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी लिखा है ''संत कबीर के वाणी का संग्रह उनके शिष्य संत धर्मदास ने सन् 1570 ई. में किया था। ''ज्ञान बाँटने का एक माध्यम होता है, जैसे गीता को सुनने को श्रेय अर्जुन को है,वैसे ही संत कबीर के वचन को सुन कर उन्हें वैसे ही लिखने का श्रेय संत धनी धर्मदास जी को है।''धनी धर्मदास जी साहेब और आमिनमाता की शब्दावली ''संत धर्मदास जी की प्रमाणिक रचना मानी जाती है।जिनका सम्पादन आचार्य गृन्धमुनि नाम साहेब ने किया है। धनी धर्मदास जी संत कबीर से आत्मा, परमात्मा, जन्तु और संसार के बारे में प्रश्न पूछते जाते और प्राप्त उत्तर को लिपिबद्ध

करके संसार के उद्धार हेतु उपलब्ध कराते थे। जो छत्तीसगढ़ राज्य के बलौदाबाजार जिला मेंदामाखेड़ा वंशगद्दी में,सद्गुरू संत कबीर दास के कथन के रूप में आज भी उपलब्ध है।

संत गुरू घासीदास :– संत गुरु घासीदास जी जन्म हमारे छत्तीसगढ़ प्रदेश में तात्कालीन, सामाजिक, आर्थिक,सांस्कृतिक और धार्मिक आवश्यकताओं की फूर्ति थी।उस समय छत्तीसगढ़ की धरती अराजकता, अस्थिरता, अत्यचार, अनाचार, आडंबर, लूट आदि की ज्वाला से धधक रही थी। उनकी जीवन गाथा, पशुता के साथ मानवता, अत्याचार के साथ प्रेम, अन्याय के साथ न्याय और असत्य के साथ सत्य के संघर्ष की कहानी है।मराठा सूबेदारी शासन के नाम पर छतीसगढ़ की भोली–भाली जनता पर अत्याचार कर रहे थे। ऐसे स्थितियों में किसी ऐसे युग पुरूष की आवश्यकता थी,जो ऐसी व्यवस्था में सुधार कर जनता को ऐसी व्यस्था से मुक्ति दिला सके।छोटी से छोटी सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक घटना का घासीदास के मन मस्तिष्क पर गहरा असर होता था।

गुरु धासीदास जी का जन्म बिलाईगढ़ जमींदारी के अन्तर्गत पहाड़ियों की गोद में बसे ग्राम गिरौदपुरी में जिला बलौदाबाजार तहसील बलौदाबाजार के महानदी के तट पर 18 दिसम्बर की सुभग रात्रि में 4 बजे की पवित्र बेला में सन् 1756 ई. को पिता महंगुदास एंव माता अमरौतिन के घर में हुआ था।गुरुघासी दास के बचपन का नाम घसिया था। इनका विवाह सफुरा बाई से हुआ था,जो कि सिरपुर के अंजोरी की पुत्री थी। तत्कलीन कमजोर और पिछड़े सामाज के जीवन पर संत गुरुघासीदास जी का प्रभाव जितना पड़ा, उतना किसी और संत का नहीं पड़ा।गुरुघासीदास जी को सतनाम धर्म का प्रवर्तक कहा जाता है। जिसे साधारण बोल चाल में सतनामी धर्म भी कहा जाता है।एक बार बलौदाबाजार में भीषण अकाल पड़ा जिसके कारण गुरु घासीदास को अपने परिवार के जीविका के दर–दर की ठोकरें खानी पड़ी।अंततः गुरु घासीदास सपरिवार भटकते हुए उड़िसा के कटक शहर पहुचे। वहॉ उनकी भेंट उड़िसा के सुप्रसिध्द संत बाबा जगजीवनदास से हुआ।बाबा जगजीवनदास जी से ही संत गुरु घासीदास ने सतनाम की शिक्षा ग्रहण की। उन्होंने गुरु घासीदास के हदय को जागृत कर बताया,कि उनका जन्म संसारिक कामों के लिए नहीं बल्कि, मनुष्यों को सही पथ प्रदर्शन के लिए हुआ है।कटक से वापस आकर सोनाखान के जंगलों में तप करने के पश्चात जोंक नदी के तट पर गुरु घासीदास को सत्य का ज्ञान हुआ और उन्हें सिध्दि प्राप्त हुई।गुरु घासीदास जी जानवरों से प्रेम करने की शिक्षा देते थे।वे जानवरों पर क्रूरता पूर्वक व्यवहार के शक्त विराधी थे।सतनाम पंथ के अनुसार कृषि कार्य के लिए गायों का उपयोग नहीं करना चाहिए। संत गुरु घासीदास जी के वचनों और संदेशों का समाज के निम्न एंव पिछड़े वर्गों पर गहरा प्रभाव पड़ा। गुरु घासीदास के सिध्दांतों, संदेशों और उनकी जीवनी का प्रचार–प्रसार पंथी गीत एंव नृत्यों के द्वारा भी बहुत अधिक हुआ। रायपुर राजपत्र के अनुसार सन् 1820 ई. से 1830 ई. के बीच छत्तीसगढ़ की 12 प्रतिशत जनता गुरूजी के चरणों का चरणामृत पान कर उनकी अनुयायी हो गयी।गुरु घासीदास ने छत्तीसगढ़ के सामाजिक उत्थान के लिए एक संत के रूप में अपना सारा जीवन बलिदान कर दिया।

संत गहिरा गुरु :–संत गहिरा गुरु का जन्म 1905 ई. में रायगढ़ जिला के अन्तर्गत लैलूंगा विकासखण्ड के वनों के बीचो–बीच में स्थित ग्राम गहिरा में हुआ था। इनके पिता का नाम बुड़कीनंद और माता का नाम सुमित्रा बाई था। इनके बचपन का नाम रामेश्वर कंवर था। गहिरा गुरु कभी विद्यालय नहीं गये। बाल्यावस्था से ही इनके मन में दया,धर्म,ईमान और ईश्वर के प्रति भक्ति पनपने लगा था। बड़े होकर अपनी वचनों और सेवा–भाव से सबको सीख देने लगे। मांस,मदिरा का त्याग कर समाज सेवा करने का उपदेश देने लगे।सभी इन्हें गुरुजी के नाम से जानने लगे।

गहिरा गुरु वनवासियों और आदिवासियों की दयनीय स्थिति से बहुत ही दुःखी तथा परेशान थे।उनकी अज्ञानता को दूर करके और सनातन रीति को बचाने के लिए सत्या,शॉति,दया धारण कर साथ–साथ हत्या और झूठ को छोड़ने का उपदेश दिया। गहिरा गुरु टीपाझरन नामक स्थान पर लगातार 8 दिनों तक की साधना के बाद पूर्ण भक्त बन गए। इनके भक्तों की संख्या लगातार बढ़ती ही जा रही थी।उनकी इच्छा थी कि लोग एक ब्यक्ति से न जुड़कर संगठन से जुड़ें इसलिये इन्होंने सनातन धर्म संत समाज की स्थापना सन् 1943 ई.में की थी। उनके सभी भक्त इस संगठन के सदस्य बन गये।गहिरा गुरु के अनुयायियों ने जगह–जगह घूम–घूम कर संत समाज के आदर्शों का प्रचार किया। सामरबार, कैलाश गुफा, श्रीकोट, अम्बिकापुर, राजपुर, लैलूंगा, गहिरा में आश्रमों की स्थापना किया गया। सनातन संत समाज संस्था का पंजीयन सन् 1985 ई. को कराया गया था।सामरबार,कैलाश गुफा और श्रीकोट में संस्कृत विद्यालय खोला गया।

आदिवासी समाज के उत्थान के लिए उल्लेखनीय कार्य हेतु संत गहिरा गुरु को 1986–87 ई.में इंदिरा गॉधी राष्ट्रीय पुरस्कार दिया गया। मध्यप्रदेश शासन द्वारा सन् 1996–97 ई.में बिरसा मुण्डा आदिवासी सेवा राज्य पुरस्कार भी दिया गया। समाज कल्याण का कार्य करते–करते 21 नवम्वर 1996 ई. को 92 वर्ष की उम्र में संत गहिरा गुरु हम सब को छोड़कर परलोक सिधार गये।आज संत गहिरा गुरु हमारे बीच न होते हुए भी उनका समाज सुधार का कार्य, देशप्रेम, ईमानदारी और सेवाभाव हम सबका पथ प्रदर्शन कर रहा है।

माता राजमोहिनी देवीः–माता राजमोहिनी देवी का जन्म 7 जुलाई 1914 ई.में बलरामपुर जिला के वाड्रफनगर विकासखण्ड के अन्तर्गत सरसेड़ा शरदापुर ग्राम में हुआ था। इनका विवाह जिला सूरजपुर के अन्तर्गत प्रतापपुर विकासखण्ड के ग्राम गोविंदपुर के किसान परिवार में रंजीत गोंड़ के साथ हुआ था।इनके दो पुत्र और पांच बेटियॉ थीं। राजमोहिनी देवी का जीवन जंगली फल–फूल,कंदमूल आदि पर आधारित था।इसी बीच उनके पति रंजीत सिंह की मृत्यु 1986 ई.को हो गया था।

राजमोहिनी देवी प्रतिदिन की भॉति खुखड़ी, पुटू उठाने के लिए जंगल गई थी।सुबह से शाम हो गया किन्तु उन्हें कुछ नहीं मिला। उस समय वहॉ आकाल की स्थिति आ गई थी।लोग गॉव से पलायन के बारे में सोच रहे थे। माता जी थकान के कारण सतनदी के पास बरगद वृक्ष के नीचे बैठ कर अपने परिवार के जिन्दगी के बारे में सोच के रो रहीं थीं। तभी जंगल की ओर से अचानक एक ब्यक्ति निकलकर माता जी से राने का कारण पूछने लगा।माता जी आकाल की पूरी घटना रोते हुए उस अनजान मनुष्य को बतायी।उस मनुष्य ने मांस, मदिरा, अत्याचार और लड़ाई–झगड़ा को इस आकाल का कारण बताया। उस पुरूष की बात सुनते ही माता जी को आत्मज्ञान की प्राप्ति हो गयी। घर पहुॅचने के बाद अपनी सभी चीजों को फेंक दीं और एक पत्थर में छः दिन और छः रात हाथ जोड़कर मौन बैठी थी। गॉव के कुछ लोग ईश्वर का ताकत मानकर माता जी के लिए झोपड़ी बनाकर उनके तप में विश्वास करने लगे।सतवां दिन अचानक तेज बारिश होने लगी। माता जी अपने उपवास को तोड़कर अपनी सारी जिन्दगी समाज और देश सेवा में लगाने का संकल्प कर ली। उनका कथन था कि धर्म–कर्म करो, सफाई से रहो, मांस, मछली और मदिरा का त्याग करो। गॉव और आसपास के सभी लोग माता जी की बात मान कर मांस, मदिरा छोड़कर सादगी से जीवन यापन करने लगे।

माता राजमोहिनी देवी राष्ट्रपिता महात्मागॉधी को अपना गुरु मानती थी। माताजी विनोवा भावे के शिक्षा से गौ हत्या बंद करने के लिए अपने सहयोगीयों के साथ गुवाहवटी में अनशन में

बैठी थी।अम्बिकापुर में गौ हत्या बंद कराने के लिए चार दिन तक उपवास रखी थी। माता राजमोहिनी देवी पढ़ी–लिखी नहीं थी, लेकिन शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिए अपना सारा जीवन त्याग दिया। गोविन्दपुर में एक पाठशाला भी खोली थी।माता जी विधवा विवाह का समर्थन करती थी। माता जी का प्रमुख आन्दोलन मद्यनिषेध था। माता राजमोहिनी देवी 28 मार्च 1953 ई.में भठ्ठी ताड़ो सत्याग्रह शुरू की थी।इस सत्याग्रह का संदेश था, कि मदिरा से तन, मन, और धन तीनों का नुकशान होता है। माता राजमोहिनी देवी वर्ष 1963 –64 ई.में अखिल भारतीय नशाबंदी परिषद के सम्मेलन में शराब बंदी के लिए भाषण दी थी। इनका भाषण से खुश होकर श्री लाल बहादुर शास्त्री और मोरार जी देसाई जी भी इन्हें बधाई दिये थे।

माता राजमोहिनी देवी आचार्य विनोवा भावे द्वारा चलाया गया भू–दान महायज्ञ को सरगुजा सहित आस–पास के क्षेत्र में चलायी। सरगुजा में कई एकड़ जमीन दान में उन्हें मिला था। माता जी ने देवी बापू धर्म सभा आदिवासी सेवा मण्डल का गठन की थी। इनका आश्रम को धार्मिक संस्था की मन्यता 20 मार्च 1954 ई. को मिला। राजमोहिनी देवी जी के वर्ष में तीन बड़े कार्यक्रम चैत्र नवमी, कुवांर नवमी और माघ का पूर्णिमा में होता था।

माता राजमोहिनी देवी को समाज और देश सेवा के लिए अविभाजित मध्यप्रदेश के मुख्य मंत्री पं रविशंकर शुक्ल और भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अम्बिकापुर में बधाई दिये थे। माता राजमोहिनी देवी को 19 अगस्त 1986 ई. में इंदिरा गॉधी राष्ट्रीय पुरस्कार और 25 मार्च 1989 ई. में ''पदमश्री'' की उपाधि दिया गया ।

राजमोहिनी देवी को लोग ''माता जी'' के नाम से पुकारते थे। राजमोहिनी देवी की जीवन लीला 6 जनवरी 1994 ई.को शाम 7बजे डूब गया। इस महान् विभूति के निधन से सरगुजा अंचल में धर्म–कर्म, सत्य–अहिंसा का एक पाठ ही समाप्त हो गया।

महाप्रभु वल्लभाचार्य–:पुष्टी मार्ग के प्रवतर्क तथा हिन्दी साहित्य के सगुण शाखा के कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि संत वल्लभाचार्य का जन्म 1479ई. में रायपुर जिले के प्रसिध्द तीर्थ राजिम से 14 किलोमीटर दूर चम्पारन नामक स्थान पर हुआ था। वल्लाभाचार्य श्री विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक भी हैं इसे दार्शनिक दृष्ट्रिकोण से शुध्दादत्रद्वैतवाद भी कहा जाता है। वल्लभाचार्य अपने समय के प्रसिध्द एंव प्रतिभा सम्पन्न महात्मा थे।इनसे मुगलकालीन सम्राट अशोक भी बहुत प्रभावित थे।

वल्लभाचार्य भक्ति को भगवान को पोषण और प्राप्ति का साधन मानते थे।शिवरीनाराण, राजिम, चम्पारन से होकर उत्तर भारत से दक्षिण भारत जाने का मार्ग गुजरता है। वल्लभाचार्य के पिता श्री लक्ष्मण भट्ट और माता इल्लमा इसी मार्ग से दक्षिण भारत की यात्रा कर रहे थे। तभी लक्ष्मण भट्ट की पत्नी इल्लमा के गर्भ से वल्लाभाचार्य का जन्म हुआ। जो मरा हुआ लग रहा था। उनके माता–पिता ने बच्चे को एक वृक्ष के नीचे पत्तों में लेटाकर ईश्वर की उपासना में लीन हो गए। सुबह जब उन्होंने बच्चे को देखा तो वह अंगूठा चुसता हुआ मुस्करा रहा था।यही बालक आगे चलकर महाप्रभु वल्लाभाचार्य के नाम से प्रसिध्द हुआ। गोस्वामी मथुरेश्वर द्वारा ''श्रीमद् वल्लाभाचार्य धर्म संस्कृति शोध अन्वेषण संस्थान'' की स्थापना रायपुर जिले के चम्पारन में किया गया है।

वल्लाभाचार्य शुध्दाद्वैतवाद का समर्थन करते थे। ब्रहमा को शुध्द और जीव मुक्त अणु मानते थे।इनके अनुसार मर्यादा और पुष्ट भक्ति ही श्रेष्ट है। वल्लाभाचार्य सम्प्रदाय के भक्त आज भी कृष्णभूमि में दिखाई देते हैं। इनके पुत्र विट्ठलदास अपने पिता की तरह ही प्रतिभावान थे।

इन्होंने अपने चार समर्थक और पिता के चार समर्थकों को मिलाकर अष्टछाप की स्थापना की। जीवमात्र के प्रति प्रेम और अहिंसा इस भक्ति मार्ग का आदर्श है।

प्रमुख ग्रंथ –: सुबोधिनी टीका, श्रृंगार मण्डन, अणु भाष्य ।

शिष्य –: सूरदास, कुम्भनदास, परमानंददास, कृष्णदास ।

नागार्जुन –: नागर्जुन का जन्म भगवान बुध्द के निर्वाण के 400 वर्षों बाद छत्तीासगढ़ में हुआ था। बौध्द धर्म के महायान शाखा का संस्थापक नागार्जुन को ही माना जाता है। इनको राहुल सांस्कृत्यायन ने 'राहुल यात्रावली' में दक्षिण कोशल का निवासी बताया है। हवेनसांग के यात्रा विवरण 'भारत भ्रमण वृत्तांत' में और डॉ. दिनेश चंद्र सरकार तथा पंडित लोचन प्रसाद पांडेय ने नागार्जुन को छत्तीसगढ़ के सिरपुर के संघाराम का निवासी बताया है।

नागार्जुन ने बस्तर और आंध्र प्रदेश की सीमा पर स्थित श्रीपर्वत पर 12 वर्षों तक वृक्ष यक्षिणी की साधना करके सिध्दि प्राप्त की थी।प्रचीन काल में यह पर्वत दण्डकारण्य का भाग था। नागार्जुन बस्तर के महामयूरी विद्या के साधक थे। नागार्जुन महान् दार्शनिक और संत होने के साथ–साथ आयुर्वेदाचार्य और रस सिध्दि योगी थे। इनको ज्ञान, विज्ञान, योग और तंत्र विद्या ने महान बना दिया। प्राचीन काल मे छत्तीसगढ़ में तंत्रिक का गढ़ वर्तमान धार्मिक स्थल शिवरीनारायण था।

बोधिसत्व नागार्जुन को दार्शनिक के साथ–साथ रसायनशास्त्री व वैज्ञानिक भी माना गया है। इनको सातवाहन वंश और सम्राट कनिष्क के शासन के समकालीन माने जाते हैं। सिरपुर मे लंका के राजकुमार आर्यदेव ने नागार्जुन से ही शिक्षा प्राप्त की थी। ये वेदों में परांगत थे। बौध्द धर्म की शिक्षा प्राप्त कर उसका प्रचार–प्रसार करने में अपना सारा जीवन त्याग दिया।

बलभद्रदास :–बलभद्रदाास जी का जन्म शंभूदयाल गौड़ के पुत्र के रूप में राजस्थान राज्य के जिला जोधपुर के आनंदपुर में सन् 1524 ई. को हुआ था।इनका वास्तविक नाम बालमुकुंद था। लेकिन इनका कार्यस्थली छत्तीसगढ़ राज्य के रायपुर जिला था। अन्न–जल को त्याग कर केवल दूध का सेवन करने के कारण इनका नाम दूधाधारी महाराज पड़ गया।वे राजस्थान से चमत्कारी यात्रा करते–करते महाराष्ट्र से होते हुए छत्तीसगढ़ आ गए। गरीबदास को अपना गुरु बनाया और उनके द्वारा भंडारा जिले के पावनी में श्रीरामजानकी मंदिर में काफी दिनों तक निवासरत रहे। बलभद्रदास भोंसले शासन के दौरान भंडारा से रायपुर 17 वीं शताब्दी के प्रारंभ में आए। बलभद्रदास जी को 'दूधाधारी मठ' के पहले महंत होने का गौरव भी प्राप्त है।सेठ दीनानाथ अग्रवाल ने इस मठ में श्रीरामजानकी का भव्य मंदिर का निर्माण कराया। श्रीरामजानकी मंदिर छत्तीसगढ़ का एकमात्र ऐसा मंदिर है, जहॉ श्रीरामजानकी, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघन और हनुमान की भव्य झाकीं दिखाया गया है।लोग इनके सम्पर्क में आते गये और शिष्यों की संख्या में वृध्दि होता गया।

बलभद्रदास जी श्री सम्प्रदाय से शिक्षा प्राप्त कर भक्ति का प्रसार करने सरगुजा के रामगढ़ पहाड़ में तपस्या की। तपस्या पश्चात तुरतुरिया के वाल्मीकि आश्रम आ गये। गारीबदास के बड़े भाई रामानंद दास रायपुर मे रहते थे, जिनको तत्कालिन हैहयवेशीय राजा ने आश्रम के लिए भूमि दान दी थी। यहीं पर आश्रम बनाकर अपना कार्य करते थे।

संत पवन दीवान –:जन्म भूमि के विकास के लिए दृढ़संकल्प कर संसार के वैमनस्य जीवन त्याग देने वाले संत पवन दीवान जी का जन्म राजिम के निकट किरवई ग्रम में 1 जनवरी 1945 ई. को श्री सुखदेव दीवान के घर में हुआ था। छत्तीसगढ़ की दु:खद स्थिति को देखकर इनका मन

भी दुःखीहो जाता था। शिक्षा प्राप्त करते हुए उनके मन में छत्तीसगढ़ निर्माण का सपना उत्पन्न हुआ। संत पवन दीवान जी भागवताचार्य के साथ छत्तीसगढ़ अँचल के छत्तीसगढ़ी और हिन्दी के प्रसिध्द कवि थे, सम्पादक थे, भागवत–प्रवचनकार थे। एक मनुष्य कितन गुणी हो सकता है उसका प्रत्यक्ष साक्षी थे श्री पवन दीवान जी।दीवान जी स्वामी भजनानंद से दीक्षा प्राप्त कर सन्यास धारण कर स्वामी अमृतानंद बने। दीवान जी धर्म और आध्यत्मिक क्षेत्र में स्वामी अमृतानंद के नाम से जाने जाते हैं।

सृजनकर्ता के अर्न्तात्मा से निकली आवाज जब बड़े–बड़े जंगलों–पहाड़ों से टकरा कर वापस लौटती है तो उसकी गूँज दूर–दूर तक सुनाई देती है। ऐसी ही एक आवाज जो स्त्री, बच्चे, बड़े, बूढ़े और जावान के हदय में आज भी समाये हुए हैं वो हैं संत श्री पवन दीवान जी की आवाज। ब्रम्हचर्य आश्रम राजिम में संस्कृत विद्यापीठ का संचालन करते हुए प्रदेश भर में जनजागरण का शुरूवात किये। भागवत प्रवचन को छत्तीसगढ़ में नया रूप और उँचाई देकर भाषा को बहुत बड़ा सेवा किया दीवान जी ने। दीवान जी को लोकमंच और लोकजीवन का गहरा ज्ञान था। ज्ञान की उँचाई को पाने के बाद दीवान जी अनपढ़ और गरीब जनता को समझ में आने वाली भाषा का अध्ययन किये थे। दीवान जी हमेशा नये–नये चुनौती खड़ा कर लेते थे। ऐसा काम वही साधक कर पाते हैं जिनको डर, मोह, चिंता और कुछ पाने के जोड़–तोड से कोई लेना–देना नहीं होता। पवन दीवान को बच्चे जैसा भोला–भाला स्वभाव मिला था।छत्तीसगढ़ कर यश गाने वाले संत पवन दीवान में गुण और योग्यता बहुत था। पवन दीवान जिस काम को हाथ में लिए उसमें सफलता प्राप्त कर के ही माने। राजनीति में गये तो मंत्री बने, कविता सुनाये तो लाल किला में, भागवत बचाये तो छत्तीसगढ़ के सुखदेव कहलाये। अपने जीवन के अंतिम दशक को संत दीवान जी छत्तीसगढ़ की बेटी भगवान श्रीराम की माता कौशल्य जी के चरणों में अर्पित कर दिया।

मेरा हर स्वर इसका पूजन, अम्बर का आशीश, फूल, छत्तीसगढ़ी गीत और भजन संग्रह जैसे पॉच पुस्तक के रचनाकार दीवान जी जिन्दगी के संदेश सुनाते हुए 2 मार्च 2016 ई. बुधवार को, इस संसार से विदा ले लिये।पवन दीवान का भाषण सुन के लोग अपनी प्रतिक्रिया इस नारे के द्वारा दिया करते थे–

''पवन नहीं आंधी है

छत्तीसगढ़ का गॉधी है।''

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. शर्मा, डॉ.निरूपमा–''छत्तीसगढ़ की महिला साहित्यकार'' खण्ड–1 / विशेष –पृ.5 / जे.एम. डी. पब्लिकेशन / नई दिल्ली / सन् 2014
2. आडिल, डॉ. सत्यभामा–''संत धर्मदास'' / पृ.389 / श्रीसदगुरु कबीर धर्मदास साहेब वंशावली प्रतिनिधि सभा,रायपुर / सन्2002
3. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र–''हिन्दी साहित्य का इतिहास'' / पृ. 66 / कमल प्रकाशन, नई दिल्ली / नवीन संस्करण
4. वर्मा, परदेशीराम–''स्मारिका'' पत्रिका / पृ. 13 / छत्तीसगढ़ शासन,रायपुर / 2017
5. त्रिपाठी, शिवकुमार–''अभिनव ऋषि गहिरा गुरु रामेश्वर'' / पृ. 12 / छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी, रायपुर / संस्करण द्वितीय / 2010

6. त्रिपाठी, शिवकुमार–''अभिनव ऋषि गहिरा गुरु रामेश्वर''/पृ. 41 /छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी, रायपुर/संस्करण द्वितीय/2010
7. त्रपाठी, शिवकुमार–''अभिनव ऋषि गहिरा गुरु रामेश्वर''/पृ.,77 /छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी,रायपुर/संस्करण द्वितीय/2010
8. त्रिपाठी, शिवकुमार–''अभिनव ऋषि गहिरा गुरु रामेश्वर''/पृ. 78/छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी,रायपुर/संस्करण द्वितीय/2010
9. खुबालकर,डॉ भारती–''साहनी निबन्ध माला महान् सन्त एंव महात्मा''/पृ.34साहनी पब्लिकेशन्स,रोशनआरा रोड,दिल्ली/2013

पत्रिकाएँ

1. पाठक, डॉ. विमल कुमार–''स्मारिका'' पत्रिका/पृ. 5/छत्तीसगढ़ शासन, रायपुर/2017

2. कौशल,मुकुन्द–''स्मारिका'' पत्रिका/पृ. 7/छत्तीसगढ़ शासन,रायपुर/2017

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

Stress Management Through Yoga

Dr. Rakesh Kumar
Assistant Professor
Department of Physical Education
Sri Varshney College, Aligarh (U.P)

Abstract
In today's life, stress has become a part and parcel of life. Its constant presence for a long duration negatively affects our day-to-day living. So our stressed lifestyle becomes a major reason for health problems and diseases. In today‘s fast life-Yoga has become all the more important because of our exposure to various stresses and hazards with very little or no time to recuperate from its after-effects. One of the greatest contributions of Yoga in modern life is its concrete solutions to the problem of stress. Yoga equips an individual with ready-to-use skills to fight stress through its holistic knowledge of mind and body. In the absence of stress, an individual is relaxed in body and alert in mind. Yoga has almost everything on offer. Whether it is good physical health, mental alacrity, emotional balance, freedom from stress, or good interpersonal relations.
Keywords: Stress, Management, Yoga, Lifestyle, etc.

Introduction
Stress is the feeling of being overwhelmed or unable to cope with mental or emotional pressure. Stress is our body's response to pressure. Many different situations or life events can cause stress. It is often triggered when we experience something new, unexpected, that threatens our sense of self, or when we feel we have little control over a situation. We all deal with stress differently. Our ability to cope can depend on our genetics, early life events, personality, and social and economic circumstances. When we encounter stress, our body produces stress hormones that trigger a fight or flight response and activate our immune system. This helps us respond quickly to dangerous situations. Sometimes, this stress response can be useful: it can help us push through fear or pain so we can run a marathon or deliver a speech, for example. Our stress hormones will usually go back to normal quickly once the stressful event is over, and there won't be any lasting effects. However, too much stress can cause negative effects. It can leave us in a permanent state of fight or flight, leaving us overwhelmed or unable to cope. Long term, this can affect our physical and mental health. (Stress, 2021)

Many different things in life can cause stress. Some of the main sources of stress include work, finances, relationships, parenting, and day-to-day inconveniences. Stress can trigger the body's response to a perceived threat or danger, known as the fight-or-flight response (Goldstein, 2010). During this reaction, certain hormones

like adrenaline and cortisol are released. Stress symptoms can affect your body, your thoughts and feelings, and your behavior. Being able to recognize common stress symptoms can help you manage them. Stress that's left unchecked can contribute to many health problems, such as high blood pressure, heart disease, obesity, and diabetes. Common effects of stress on your body are headache, muscle tension or pain, chest pain, fatigue, change in sex drive, stomach upset, and sleep problems, on your mood – anxiety, restlessness, lack of motivation or focus, feeling overwhelmed, irritability or anger, sadness or depression, and on your behavior- overeating or undereating, angry outbursts, drug and alcohol misuse, tobacco use, social withdrawal, and exercising less often.

Many studies have found that a little yoga in the morning, at night, or even during a lunch break, can minimize stress and increase productivity. It is believed that yoga is so effective for stress relief because, aside from the physical benefits that yoga brings, it encourages a good mood, an increase in mindfulness, and a healthy dose of self-compassion (Riley and Park, 2015)

Stress-Relief Techniques Involved in Yoga

Many of the popular techniques found to reduce stress derive from yoga:

- Controlled breathing
- Meditation
- Physical movement
- Mental imagery
- Stretching

How yoga works on stress

In yoga breathing using a diaphragm, as you breathe can stimulate the vagus nerve and help reduce stress. The Vagus nerve is the main nerve of the parasympathetic nervous system that extends from the medulla through the diaphragm to the abdomen, and is responsible for slow respiration, reducing heart rate, lowering blood pressure, and stimulating digestive activity.

Yoga practices for stress management:

1. **Asanas:**

These are very good for the body and mind. During stress, the endocrine system is the most affected in our body. Therefore the practices that work on our endocrine system. Some asanas that are very useful for stress management are Uttanasan, Adhomukhsvasana, Paschimottanasan, Balasanaa, and Shavasana.

Utttanasana: It is a unique yoga pose that you perform while doing other exercises. This yoga exercise is practiced to reduce mild depression, fatigue, and stress. Uttanasana does the unique work of

reversing the blood circulation as the head below the heart in this exercise.

Adho Mukha Savasana: It is an amazing stress-relieving yoga pose that helps in waking up the senses and reduces fatigue and tiredness. It rejuvenates the body by improving blood circulation.

Pashimutasana: It can help distracted mind unwind. Seated forward bend is a basic yet challenging pose with several benefits in addition to relieving stress and anxiety.

Balasana

Balasana: The child pose or balasana is undoubtedly the most relaxing yoga pose that helps in calming the mind and rejuvenating the body with energy.

Savasana: The corpse pose is one of the challenging yoga exercises. This is a complete

posture of relaxation that de-stresses of the nervous system. After the exercise, you will feel calm and composed. The savasana slows the beta brain waves and hence the complete body and mind can relax.

2. Pranayama:

It does not mean just breathing in, keeping the breathed air in, and exhaling it. It also means establishing control on the entire breathing process and maintaining mental equilibrium, and concentration of mind. The inefficient functioning of the lungs affects the process of blood purification. It is for this reason that the importance of pranayama has come to be recognized, for a healthy long life.

Phases in Pranayama

- Pooraka: Breath in – Inhalation
- Rechaka: Breathe out – Exhalation
- Kumbhaka: Hold the air inside the body
- Bahya Kumbhaka: This is opposite kumbhaka. Air is exhaled and held at that condition.

Important Pranyanam:

Bhastrika
Kapalbhati
Bahya Pranayama
Agnisar
Ujjayee
Anlom Vilom
Bharmari

3. Yoga-Nidra:

Yoga- Nidra is a method of relaxation. This means asleep with awareness. It is a yogic technique of inducing us into conscious sleep for making our body and mind relaxed. In ordinary sleep, we take rest unconsciously without any control, while in Yoga-Nidra, rest is taken in a state of consciousness.

4. Antar Mauna:

Antarctic Mauna is also a Yogic technique of relaxation. In the Sanskrit language, antarctic means inner, and Mauna means silence. Thus, it is related to maintaining inner silence.

5. Meditations:

Meditation is a well-known yogic practice that is suited to the various purpose. As probably you know that in meditation, we practice withdrawing our attention from different objects or ideas of the mundane world and focusing it on a single idea/ object instrumentally for some time.

Recommendations and suggestions to control stress in daily life:

1. Acknowledgement of stress.
2. Minor change in the lifestyle
3. Effective time management
4. Proper diet
5. Rest
6. Self-renewal
7. Good relationship
8. Fun and laughing
9. Exercise every day

Conclusion:

Strong (severe and chronic) stress may cause several problems related to our life. However, the Yogic lifestyle can be a good remedy for stress. Yogic lifestyle means the adoption of Yogic principles in day-to-day living. These yogic principles are related to all aspects of living namely aahar (food), vihaara (relaxation and recreation) aahar (conduct and attitudes), and vihaara (thinking) and vyavahaara (actions) for a healthy and happy living one have to follow these yogic principles. In other words, one is to practice the right yogic food, right activities for recreation, right attitudes and emotions, right thinking, and right actions. This can make a person stress-free and overall healthy. For a stress-free healthy life, the specific yogic practices of aasan as and pranayama, yoga- Nidra, Antar- Mauna, and meditation are extremely helpful.

References:

WorkoutLabs. 2022. *Corpse (Savasana) – Yoga Poses Guide by WorkoutLabs*. [online] Available at: <https://workoutlabs.com/yoga-poses-guide/corpse-savasana/> [Accessed 5 April 2022].

Adobe Stock. 2022. *Health care icons, rainbow color*. [online] Available at: <https://stock.adobe.com/search/images?load_type=search&native_visual_search=&similar_content_id=&is_recent_search=&search_type=usertyped&k=yoga+meditation+images&asset_id=55147503> [Accessed 5 April 2022].

Adobe Stock. 2022. *Pranayama Images – Browse 10,320 Stock Photos, Vectors, and Video*. [online] Available at: <https://stock.adobe.com/search/images?k=pranayama&asset_id=423249793> [Accessed 5 April 2022].

Baleika, T., 2022. *Women silhouette. Uttanasana, forward fold yoga pose*. [online] Dreamstime.com. Available at: <https://www.dreamstime.com/stock-illustration-women-silhouette-uttanasana-forward-fold-yoga-pose-vector-illustration-image83198583> [Accessed 5 April 2022].

Goldstein, D., 2010. Adrenal Responses to Stress. *Cellular and Molecular Neurobiology*, 30(8), pp.1433-1440.

iStock. 2017. *Women silhouette. Adho mukha svanasana. Downward dog. Vector...*. [online] Available at: <https://www.istockphoto.com/vector/women-silhouette-adho-mukha-svanasana-downward-dog-gm643336320-116743471> [Accessed 5 April 2022].

Magadhuniversity.ac.in. 2022. *The role of yoga in stress management*. [online] Available at: <https://www.magadhuniversity.ac.in/download/econtent/pdf/'Yoga%20in%20stress%20management'%20pdf.pdf> [Accessed 5 April 2022].

Mental Health Foundation. 2021. *Stress*. [online] Available at: <https://www.mentalhealth.org.uk/a-to-z/s/stress> [Accessed 3 April 2022].

Mayo Clinic. 2022. *How stress affects your body and behavior*. [online] Available at: <https://www.mayoclinic.org/healthy-lifestyle/stress-management/in-depth/stress-symptoms/art-20050987> [Accessed 3 April 2022].

Scott, E., 2020. *How Yoga Can Improve the Stress in Your Life*. [online] Verywell Mind. Available at: <https://www.verywellmind.com/the-benefits-of-yoga-for-stress-management-3145205#citation-1> [Accessed 3 April 2022].

VectorStock. 2022. *Women silhouette child s yoga pose balasana vector image on VectorStock*. [online] Available at: <https://www.vectorstock.com/royalty-free-vector/women-silhouette-child-s-yoga-pose-balasana-vector-13446091> [Accessed 5 April 2022].

WorkoutLabs. 2022. *Extended Child's Pose (Utthita Balasana) – Yoga Poses Guide by WorkoutLabs*. [online] Available at: <https://workoutlabs.com/yoga-poses-guide/extended-childs-pose-utthita-balasana/> [Accessed 5 April 2022].

WorkoutLabs. 2022. *Seated Forward Bend (Paschimottanasana) – Yoga Poses Guide by WorkoutLabs*. [online] Available at: <https://workoutlabs.com/yoga-poses-guide/seated-forward-bend-paschimottanasana/> [Accessed 5 April 2022].

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

जिहाद पर एक समीक्षात्मक विश्लेषण

नसीमुद्दीन
एम.ए. अंग्रेजी, समाजशास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र, उर्दू, बीएड,
डिप्लोमा इन रेल ट्रांसपोर्ट एण्ड मैनेजमेन्ट, अदीब कामिल, मौअल्लिम,
वरिष्ठ अध्यापक, हिंदू इंटर कॉलेज, चांदपुर (बिजनौर) उत्तर प्रदेश

जिहाद एक अरेबिक शब्द है जिसका अर्थ है खुद की बुराइयों पर विजय पाना, इस्लामिक दृष्टिकोण से जिहाद का शाब्दिक अर्थ अत्यधिक प्रयास है। स्पष्ट अक्षरों में इसका अर्थ खुद में बदलाव करने की एक बड़ी कोशिश होता है। कुछ जगहों पर जिहाद को अत्याचार/जुल्म के खिलाफ खड़ा होना भी बताया जाता है। जिहाद का संकुचित अर्थ दीन ए हक की ओर बुलाने और उससे इंकार करने वाले से जंग करने को या संघर्ष करने को कहते हैं। जबकि जिहाद का विस्तृत अर्थ के बहुत से रंग हैं। जैसे कि किसी भी बुराई कीतरफ झुकने के खिलाफ संघर्ष, अविश्वासियों को बदलने का प्रयास या समाज के नैतिक भरोसे की ओर से प्रयास, इस्लामिक विद्वान आमतौर पर रक्षात्मक युद्ध के साथ सैन्य जिहाद को समानता प्रदान करते हैं। जबकि मुस्लिम सूफी आध्यात्मिक और नैतिक जिहाद को पारस्परिक रूप से जिहाद के नाम पर अधिक बल देते हैं। कुरान में जिहाद शब्द प्रायः सैन्य अर्थों के बिना वर्णित है। अक्षर मुहावरेदार अभिव्यक्ति **''अल्लाह के रास्ते (अल जिहाद फाई सेबिल अल्लाह) में कोशिश कर रहा है।'' जिहाद क व्यापक अर्थ** : 1. नैतिक मूल्यों के संरक्षण के लिए किया जाने वाला संघर्ष (जद्दोजहद) अपने हक का अधिकार के लिए संघर्ष करना 2. किसी जायज मांग के लिए भरपूर कोशिश करना या आंदोलन करना 3. धर्म की रक्षा के लिए की जाने वाली कोशिश।जिहाद का मतलब है कि मेहनत और मशक्कत (कठिन परिश्रम) करना। इस्लाम में इसकी बड़ी अहमियत है। **बीबीसी न्यूज के अनुसार** : **(सन्दर्भ : 1)** जिहाद दो प्रकार का होता है। **1. जिहाद अल असगर :** इसका अर्थ छोटा जिहाद होता है इस जिहाद का उद्देश्य इस्लाम के संरक्षण के लिए संघर्ष करना होता है। जब इस्लाम के अनुपालन की आजादी न दी जाए या किसी जगह मुसलमानों पर अत्याचार हो और उनका शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक शोषण किया जा रहा हो तो उसको रोकने के लिए कोशिश करना और उसके लिए बलिदान देना जिहाद अल असगर कहलाता है। **2. जिहाद अल अकबर –** इसका अर्थ बड़ा संघर्ष (जिहाद) कहलाता है। यह अहिंसात्मक संघर्ष होता है। जिसमें मनुष्य अपने सुधार का प्रयास करता है। इसका मकसद बुरी सोच व बुरी इच्छाओं को दबाना और कुचलना होता है। आज हम जिहाद के दोनों पक्षों को जानने की कोशिश करते हैं। वरिष्ठ पत्रकार **सुधीर चौधरी जी न्यूज** के अनुसार : **(सन्दर्भ : 2, डीएनए में प्रसारित, 9 मई 2020)** जिहाद का अर्थ पवित्र युद्ध माना गया है। संसार में जो इस्लामिक रूप से आतंक फैलाते हैं और स्वयं को जिहादी बताते हैं वे लोग इस्लाम के सही अर्थों को नहीं जानते और जो लोग निम्नवत् काम करते हैं और कट्टरता फैलाते हैं वे

इस्लाम के दायरे से बाहर हैं। 1. किसी इंसान के ऊपर इस्लाम कुबूल करवाने के लिए जबरदस्ती करना। 2. किसी देश या क्षेत्र पर कब्जा जमाने के लिए उस पर हमला करना। 3. आर्थिक फायदे के लिए किसी इलाके पर हमला करना। 4. हमला करके निर्दोष लोगों, बच्चों, महिलाओं की हत्या करना। 5. किसी पर हमला करके उसकी सम्पत्ति का नुकसान करना। 6. किसी को पराजित करने के लिए जैविक युद्ध का सहारा लेना। 7. साधारण युद्ध करना भी जिहाद में नहीं आता है। इस्लाम में साधारण युद्ध की पहल भी आप स्वयं नहीं करेंगे। युद्ध किसी सुल्तान या बादशाह के कहने पर शुरू नहीं किया जाएगा बल्कि किसी धार्मिक गुरु के कहने पर ही शुरू किया जाएगा। युद्ध में दुश्मन को भी पूरा सम्मान देना होगा और दुश्मन सैनिकों के साथ भी न्याय करना होता है और घायल सैनिकों का इलाज भी अपने सैनिकों जैसा ही करना चाहिए। उनके साथ दया का भाव अपनाना होगा। युद्ध को यथाशीघ्र ही समाप्त करना चाहिए ताकि मानवता बची रहे। अगर दुश्मन शांति की पहल करे तो फौरन युद्ध विराम की घोषणा करनी चाहिए। युद्ध के दौरान दुश्मनों के लिए कुएं, नहर, नदी या दरिया में जहर डालना प्रतिबन्धित है। रसायन या जैविक हथियार प्रयोग करना गुनाह माना गया है। लेकिन श्रीमान सुधीर चौधरी का जिहाद अवलोकन केवल जिहाद असगर की श्रेणी को बयान करता है। जबकि जिहाद अल अकबर जिहाद की उत्तम श्रेणी है।

इस्लाम के प्रवर्तक पैगम्बर मोहम्मद साहब ने कहा था कि 1. जिहाद ए अकबर (यानि बड़ी जंग) अपनी नाजायज इच्छाओं का अल्लाह (ईश्वर) की आज्ञा से दहन करना। 2. जिहाद ए असगर (छोटी जंग) स्वयं की रक्षा (आत्मरक्षा) के लिए की जाने वाली जंग।यदि कहीं पर ऐसी स्थिति बन जाए कि हमें अपनी आत्मरक्षा में हथियार उठाना पड़ जाए और इस दशा में कोई हत्या भी हो जाए तो वह अपराध नहीं है।**(सन्दर्भः 3)** ऐसा ही भारतीय संविधान की **धारा 96 से 106** में भी वर्णित है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जो जिहाद कुरान में वर्णित है वह हमारे संविधान के अनुसार भी न्यायोचित है। इसी तरह सभी देश अपनी–अपनी सेना रखते हें। यदि कोई अन्य देश किसी देश पर आक्रमण कर देता है तो उस देश की सेना अपने देश की रक्षा के लिए दुश्मन सेना, से लोहा लेती है (जिहाद ए असगर) जो जायज भी है बल्कि कर्तव्यनिष्ठा, देशभक्ति, सत्यनिष्ठा, उत्कृष्टता, वफादारी, जिम्मेदारी का प्रतीक है। जैसे कि आज के माहौल में देखे तो रूस ने यूक्रेन पर आक्रमण किया और यूक्रेनी सैनिकों ने उनका डटकर मुकाबला अपने देशहित की रक्षा के लिए किया यह भी जिहाद ए असगर की श्रेणी में आ जाता है। इसी तरह अगर कोई गैर मुस्लिम इस्लाम पर आक्रमण करे तो ऐसी परिस्थिति में जिहाद करना पड़ता है जो अपने धर्म की रक्षा हेतु की जाने वाली जंग होगी और इस प्रकार की जंग प्रत्येक धर्म में जायज है। इस्लाम में इसको जिहाद के रूप में पहचाना जा सकता है। अब कुरान के हवाले से देखते हैं कि अल्लाह के कुरान में कहां पर क्या कहा है।

'' मिन अंजलि जालिका कतबना अला बनी इस्राअईला अना हू मन खताला नफसन बिग़ैरी नफसिन अव फसादिन फिलअर्ज़ी फका अन्नामा खतालन्नासा जमीअन। वामन अहयाहा फका अन्नामा अहयन्नासा जमीअन। वलाखद जाआअत्हुम रूसुलुना बिलबय्यीनाति सुम्मा इन्ना कशीरन मिनहुम बादा ज़लिका फिल्अर्ज़ी ला मुसरिफून।'' (सन्दर्भ–4, सूरह नं0 5 व आयत नं 32)

हिन्दी में अनुवाद भी समझ लेते हैं। अल्लाह कहते हैं कि हमने (अल्लाह) बनी इस्राईल में लिख दिया था कि जिसने किसी व्यक्ति को खून का बदला लेने या जमीन में फसाद फैलाने के अलावा किसी अन्य कारण इसे मार डाले तो मानो उसने पूरी मानवता की हत्या कर दी। जिसने किसी एक व्यक्ति को जीवन प्रदान किया तो उसने पूरी इंसानियत को जीवन दान दे दिया। जो लोग इस्लामिक जेहाद को आतंकवाद से जोड़कर कहते हैं कि आतंकवादी कुरान से प्रेरित होकर आतंकवाद को बल देते हैं। वे बहुत बड़ी भूल करते हैं। जैसे कि ऊपर के पंक्तियों में भी बताया गया है और निम्नलिखित पंक्तियों से भी प्रकट हो जाता है कि जिहाद एक पवित्र संघर्ष का नाम है। आतंकवाद एक अपवित्रता का उद्घोषक शब्द है जिसका इस्लामिक जिहाद से, कोई सरोकार नहीं है। कुरान की सूरह में 25 में लिखा हैं। ''**वा अल्लाज़ीना ला यदऊना मआअल्लाहु इलाहाअन अख़ारावलां यक़्तुलूना उन्ननफसा उल्लती हररामाल्लाहू इल्लां बिअलहक़्क़ी वला यज़नना वमन यफअल ज़ालिका यलका, असामा।'' (सन्दर्भ : 5, सूरह 25 आयत 68)** हिन्दी में अर्थ : अल्लाह ने जीव का नाहक (बेवजह) खत्ल (हत्या) करना बिल्कुल वर्जित किया है और किसी के साथ व्याभिचार करना हराम बताया है और जो भी ऐसा करेगा वह अपने अक्षमाशील पाप का भोगी होगा और उसको सख्त दण्डित किया जाएगा। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अल्लाह जिहाद में कहीं भी किसी पर अत्याचार करना नहीं सिखाता है और जो भी जिहाद को लेकर अपने हिसाब से अनुमान लगाते हैं और भ्रम पैदा करते हैं वे लोग जिहाद का मूल रूप नहीं जानते हैं। वे केवल भ्रमित अफवाह पर विश्वास कर लेते हैं।

कुरान में अल्लाह मौहम्मद को सम्बोधित करते हुए कहते है कि मौहम्मद लोगों को बताओ तुम्हारे मालिक (अल्लाह) ने तुम पर क्या–क्या बातों को निषेध किया है और क्या–क्या बातों को अनुमति प्रदान करना है। जिसमें सबसे पहले यह कहा कि ईश्वर (अल्लाह) एक है इसमें किसी की कोई साझेदारी नहीं है। 2. माता–पिता के साथ सर्वोत्तम व्यवहार रखो। 3. अपनी सन्तान को सांसारिक बन्धनों के अभाव में हत्या न करो। जैसा कि आज लोग पुत्र प्राप्ति के लिए पुत्री को गर्भ में ही मार देते हैं या जिससे सम्पत्ति का बंटवारा न हो इसलिए संतान को गर्भ में ही मार दिया जाता है इससे बेहतर तो यह कि पूर्व में ही गर्भनिरोधक उपाय अपनाकर ऐसी परिस्थितियों से बचा जाए ताकि माता–पिता जिनका रूतबा ईश्वर समान है को पाप का भोगी न होना पड़े। सभी धर्म मेरे हिसाब से इस बात से सहमति रखते है यही इस्लाम का जिहाद कहता है। ईश्वर (अल्लाह) कुरान में कहते हैं ''**खुल तआलव अतलू मा हरीमा रब्बूकुम अलयकुम अल्ला तुशरिकू बिही शेयअन व बिल वालेदीना इहसानना वला तकतुल अवलादाकुम मिन इमलाक़िन, नाहनू नरज़ुकुम वा इय्याहुम वला तक़राबुल फवाहिशा मा जहरामिनहा। वमा बताना वला तक़्तुलुन्नफसल्लती हरामल्लाहुइल्ला बिल हककी जालिकुम वस्साकुम बिही ला अल्लाकुम ताकिलून'' (सन्दर्भ : 6, सूरह नं 6–आयत नं 151)** अल्लाह कहते हैं, हम तुमको भी रोजी देते हैं और उनको भी देंगे। आगे कहते हैंकि गंदी बातों के करीब भी न जाओ चाहे व खुली या छुपी कैस भी आकार में हो। आगे अल्लाह मोहम्मद से कहते हैं कि सबको बताओ सभी जीवों को अल्लाह ने आदरणीय ठहराया है और किसी जीव की हत्या न करो जब तक वह सत्य तक उचित न हो। इसका अर्थ यह है कि इस्लामिक जिहाद का अर्थ उपयोगी बातें अपनाना और अनुपयोगी बातें जो समाज और मानवता के लिए हानिकारक हैं उनका तिरस्कार करना है। जिहाद ए असगर–सामाजिक बुराइयों से लड़ना और जिहाद ए अकबर अपनी आंतरिक बुराइयों

से लड़ना है। जिहाद का अर्थ आज के अर्थों में बिल्कुट उलट दिया गया है जिसमें षड़यन्त्र की, अनुभूति होती है। जिहाद तो कल्याणकारी मनोभावना है यह विनाशकारी नहीं हो सकती। आज जो भी लोग इसको अपने आतंक फैलाने का साधन समझते हैं और जो जेहाद को आतंक से जोड़ते हैं दोनों ही बराबर के अपराधी हैं। उनका मानवता से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। एक इस्लामिक हदीस में आया है कि द डे ऑफ जजमेंट में सबसे पहले अकारण किसी इंसान की हत्या करनेवाले व्यक्ति के साथ फैसला होगा। बाकी हिसाब बाद में होगा। **(सन्दर्भ:7)** हज़रत उमर (दूसरे खलीफा) के अनुसार –''नबी मोहम्मद साहब ने कहा था कि एक ईमान वाला व्यक्ति जब तक ईमान पर मजबूती से रहता है तब तक कि उसने बेवजह खून (हत्या) न बहाया हो'' इसका अर्थ यह है कि इस्लाम धर्म के नाम पर हिंसा का पूर्णतः विरोधी है। अगर कोई व्यक्ति किसी मासूम निर्दोष जीव की हत्या करता है तो वह ईमान से बाहर हो जाता है और जिसके पास ईमान नहीं वह मुसलमान नहीं। क्योंकि मुसलमान दो शब्दों से मिलकर बना है (मुसल+ईमान) अर्थात् शाब्दिक अर्थ है कि मुसल्ले पर खड़ा हुआ मुकम्मल ईमान रखने वाला व्यक्ति और इसके बावजूद एक मुसलमान ने किसी व्यक्ति की अकारण हत्या की है तो अल्लाह सर्वप्रथम उसको ही (व्यक्ति को) बुलाएंगे और उसके पाप का दण्ड सब दण्डों में पहले दिया जाएगा **(सन्दर्भ : 8, सूरह नं0 2/ आयत नं0 178)** केवल सत्य और न्याय के लिए ही केवल अपराधी को हत्यादण्ड दिया जा सकता है। क्योंकि संसार और समाज के लिए यह जरूरी है अन्यथा चारों ओर त्राहि–त्राहि अशांति मौजूदा शांति के लिए सबसे अधिक घातक साबित होगी और फिर आतंक का जन्म होगा। इसका मतलब साफ है कि इस्लाम को आतंक से कोई रिश्ता नहीं जो भी इस्लाम की आड़ में आतंक का समर्थन करते हैं वह इस्लाम का मौलिक उद्देश्य नहीं जानते हैं और वे पथभ्रष्ट लोग हैं। इस्लाम का मौलिक उद्देश्य शांति, प्रेम और सौहार्द फैलाना है। एक स्थान पर कुरान में आया है कि **''वलाकुम फी अलक़िसासे हयावतुय्याऊ ली अलअलबाबे लाअल्लाकुम तत्ताकूना।'' (सन्दर्भ–9, सूरह 2, आयत–179 व 5/4)** बुद्धिमान समझदार मुस्लिम वे लोग हैं जो अमन शांति के लिए अपने दासों के साथ भी बहुत अच्छा बरताव करते हैं और किसी की हत्या करने से बचते हैं क्योंकि हत्या से बेहतर जीवन है जो अनमोल है। मौहम्मद साहब के अनुसारः–'' सबसे पहले अपने भाई की सहायता करो चाहे वह अत्याचारी हो या अत्याचार से पीड़ित। जिसने भी इस वक्तव्य को सुना वह आश्चर्य में पड़ गया कि पीड़ित की मदद करना तो उचित है मगर अत्याचारी की सहायता करना कैसे उचित हो सकता है? आश्चर्य में डालने वाली बात ने सबको हैरान कर दिया। फिर उनके सहयोगियों ने अंत में पूछ ही लिया कि हजरत हम अत्याचार पीड़ित की सहायता तो जरूर करेंगे लेकिन अत्याचारी की सहायता किस तरह करें? इसके जवाब में मोहम्मद साहब ने कहा कि ''इस तरह कि तू उसका अत्याचार करने के लिए उठे हाथ को पकड़ ले और उसको अत्याचार करने से रोक दे। अतः जालिम को जुल्म करने से रोकने के लिए सख्ती भी बुरी नहीं बल्कि वह सख्ती अच्छी नरमी है।'' कहने का तात्पर्य है कि अगर तुम्हारा भाई कोई अत्याचार करने के लिए किसी इंसान पर हाथ उठा रहा है तो उसका हाथ सख्ती से पकड़ लो और उसको अत्याचार करने से रोक लो। जिससे दोनों अत्याचारी व अत्याचार पीड़ित लाभान्वित हो। अत्याचारी पाप का भोगी होने से बच जाएगा और पीड़ित उसके अत्याचार का शिकार होने से बच जाएगा और उसके प्राण सुरक्षित हो जाएंगे और अत्याचारी को सांसारिक दण्ड और परलौकिक दण्ड से मुक्ति प्राप्त हो जाएगी। यहां मौहम्मद साहब के शब्दों

का अर्थ बहुत ही गहन है जिनको समझने के लिए आध्यात्म की आवश्यकता है। उनके ये शब्द मानवता के लिए कल्याण्कारी हैं और यही मूल रूप से जिहाद ए असगर है और अपने अस्तित्व (नफ्स), इच्छाओ, महत्वाकांक्षाओं, प्रलोभनों से संघर्ष (जिहाद) करना जिहाद ए अकबर है। नबी मौहम्मद साहब ने एक बार फिर कहा कि ''जालिमों पर रहम करना मजलूमों पर जुल्म है। **(सन्दर्भ : 10)** इस परिप्रेक्ष्य में **स्वामी लक्ष्मी शंकराचार्य जी पुस्तक ''इस्लाम, आतंक या आदर्श''** को भी पढ़ा जा सकता है। जो इस विषय पर काफी कुछ बयान कर जाती है। जिहाद की आवश्यकता क्यों है? कुरान में इसकी आवश्यकता क्यों है इस पर भी वर्णन आया है जो कुछ इस प्रकार लिखा है। **''फाहाज़ा मुहुम बिइज़निल्लाही। वाक़ाताला दाऊदु जालुता वा आताहुल्लाहुल्मुल्का वलाहिकमाता व अल्लामाहु मिम्मा यशाऊ। वलवला दफऊल्लाहिन्नासा बाआजाहुम बिबाजिल्ला फसादातिल अरज़ू वलाकिनल्लाहा ज़ुफज़लिन अल्ल आलामीन।'' (सन्दर्भ–11 व 12, सूरह नं0 2, आयत नं0 251)** उपरोक्त अरेबिक पंक्तियों का अर्थ यह है कि अल्लाह सत्यनिष्ठ मानव के एक समूह से कपटी मानव के समूह को हटाता रहता है। यदि असत्य पर सत्य की जीत न हुआ करती तो धरती पर प्रचुरता में बिगाड़ और बुराइयों का साम्राज्यवाद होता किंतु अल्लाह इसका संतुलन अच्छाई से बुराई पर विजय दिलाकर करता रहता है। ईश्वर पूरी मानवता के उद्धार व कल्याण के लिए हैं। आगे कुरान में अल्लाह फरमाता है **''कल्लामा अवक़द नारन ललहज़बि उज़फ्फाउ हाअल्लाहु वा यसऊना फिलअर्ज़ी फसादा वल्लाहु ला युहिब्बुल मुफसिदीन''(सन्दर्भ :13, 5:64–22:39 से 40, 4:75–2:76, 9:19 व 20–61:10 व 11–61:4 तक)** हिन्दी में अर्थ है कि अल्लाह आग लगाने वालों को, फसाद भड़काने वालों को नफरत करता है। जो भी इंसान ऐसे कार्य करते हैं वे लोग ईश्वर के समीप निकृष्ठ जीव हैं और उनको क्षमादान नहीं दिया जासकता वे अपने पाप के भोगी होंगे। उपरोक्त सूरह व आयतों में यही वर्णन है कि सत्य के लिए असत्य से जिहाद (युद्ध) करना ही पड़ता है। क्योंकि दोनों कभी भी एक साथ नहीं रह सकते असत्य एक अन्धकार है जब सत्यरूपी उजाला अस्तित्व में, आता है, तो अन्धकार को जाना ही पड़ता है फिर इसके लिए जो भी संघर्ष हो एक को अपना स्थान त्यागना ही होगा। क्योंकि एक मयान में दो तलवारें नहीं रह सकती और यहां तो दो विपरीत विचारधाराओं की लड़ाई है। निष्कर्ष यह रहा कि जिहाद एक मुकद्दस (पवित्र) इबादत है। जिहाद असत्य पर सत्य के लिए किया जाने वाला संघर्ष है। सत्य के वजूद में आने पर असत्य को जाना ही पड़ेगा क्योंकि सत्य अमर होता है और असत्य नाशवान **(सन्दर्भ : 14, सूरह नं–17 आयत नं0 81)** आज जो समाज में जिहाद के लिए फैला भ्रम है वह भी असत्य की तरह ही नाशवान है और सत्य रूपी जिहाद हमेशा से ही पवित्र था और रहेगा। आज जिहाद का अर्थ सभी को समझना होगा। लोगों ने इसको नकारात्मक दृष्टि से देखा है जब तक हम इसके सकारात्मक पहलू को नहीं समझेंगे हम इसके पवित्र उद्देश्य के मूल तत्व को नहीं समझ सकते हें। समाज में जो जिहाद के अर्थ लगाए जाते हें वे बिल्कुल इसके अर्थ के विपरीत हैं ऐसा माना जाए जैसा ही धरती से आकाश का सम्बन्ध है वैसा ही आज जिहाद शब्द को अपवित्रता की पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया गया है। जबकि जिहाद अल्लाह, कुरान व नबी के हवाले से एक मुकद्दस (अति पवित्र) इबादत नुमा संघर्ष (जंग) है। जिसका उद्देश्य स्वयं का एवं पूरी मानवता का कल्याण करना है। लोगों व सर्व समाज के भलाई के कार्यों में कमी/कंजूसी करना जिहाद के मूल मंत्र से भटकना है। इस्लाम में युद्ध भी आत्मरक्षा के लिए ही जायज है। इसलिए जेहाद इस

संसार में प्रत्येक वह व्यक्ति करता है जो अपने दुर्गुणों को त्यागने की प्रतिज्ञा लेकर सदगुणों को प्राप्त करने की कशमकश में उलझा हुआ रहता है और शोधकर्ता के अनुसार यह सब वह आत्मशुद्धि प्राप्त करके मानव समाज व कल्याण के लिए संघर्ष करता है। यही जिहाद का मूल अर्थ निकलता दिख रहा है। इसलिए सृष्टि के प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन में एक बार जिहाद करना ही पड़ता है। तभी वह मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है।

शोधकर्ता से इस लेख में कोई त्रुटि हुई हो तो पाठकगण़ क्षमादान करने की कृपा करें।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. बीबीसी.न्यूज.कॉम
2. वरिष्ठ पत्रकार सुधीर चौधरी जी न्यूज पर डीएनए में 9 मई 2020 को प्रख्यात भाषण।
3. आईपीसी की धारा 96 से धारा 106 तक का जिहाद के उसूलों में सम्बन्ध।
4. कुरान की सूरह नं0 5 व आयत नं0 32।
5. कुरान की सूरह नं0 25 व आयत नं0 8।
6. कुरान की सूरह नं0 6 व आयत नं0 51।
7. इस्लाम के दूसरे खलीफा हजरत उमर का दृष्टिकोण।
8. कुरान की सूरह नं0 2 व आयत नं0 178
9. कुरान की सूरह नं0 2 व आयत नं0 179
10. स्वामी लक्ष्मी शंकराचार्य जी की पुस्तक 'इस्लाम, आतंक या आदर्श' का सम्पूर्ण अवलोकन।
11. कुरान की सूरह नं0 5 व आयत नं0 04
12. इस्लाम के अंतिम पैगम्बर मोहम्मद के विचार।
13. कुरान के सूरह नं0 2 व आयत नं0 251
14. कुरान की सूरह नं0 5/आयत 64, सूरह 22/आयत 39 से 40, सूरह 4/आयत 75, सूरह 2/आयत 76, सूरह 9/आयत 19 व 20, सूरह 61/आयत 04, 10 व 11, सूरह 17/आयत 81।

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

भक्तिकालीन काव्य में गोवर्धन पर्वत की महिमा

आत्मा राम यादव
(प्रवक्ता)
सार्वजनिक आर्य इण्टर कालेज
फीना, बिजनौर, उ0प्र0

गोवर्धन पर्वत का भारतीय धर्म और संस्कृति के विकास में अत्यधिक योगदान रहा है। पर्वत भौगोलिक दृष्टि से ही नही अपितु मानव जीवन के विकास और समृद्धि में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते है। गोवर्धन पर्वत हिन्दुओं का अत्यंत प्राचीन एवं पवित्र धार्मिक स्थल है। महाभारत काल एवं श्री कृष्ण से सम्बन्धित होने के कारण इसका अत्यधिक महत्व है। पौराणिक कथाओं के अनुसार गोवर्धन पर्वत की खूबसूरती से पुलस्त्य ऋषि बहुत प्रभावित हुए उन्होने द्रोणांचल पर्वत से उठाकर साथ लाना चाहा तो गोवर्धन पर्वत या गिरिराज ने कहा कि जहाँ मुझे पहली बार रखेंगे वहीं पर स्थापित हो जाँऊगा। रास्ते में साधना के लिए ऋषि ने पर्वत को नीचे रख दिया फिर दुबारा उसे हिला नही सके। इससे क्रोध में आकर उन्होंने पर्वत को यह श्राप दे दिया कि वह प्रतिदिन घटता जायेगा। माना जाता है कि गोवर्धन पर्वत का कद लगातार घटता जा रहा है। श्रीमद्भागवत में द्रोण, चित्रकूट और रैवतक के साथ गोवर्धन पर्वत का वर्णन किया गया है।

द्रोणश्चिनकूटो गोवर्धनो रैवतकः।
ककुभोनीलो गोकामुख इन्द्र कीलः।।[1]

महाकवि कालिदास ने गोवर्धन को शूरसेन प्रदेश में विराजमान बताया है–

अध्यास्य चाम्भः वृषतोक्षितानि शैलेयंगधीनि–शिलातलानि।
कलापिनां प्रावृषि पश्य नृत्यं कांतासु गोवर्धन कंदरासु।।[2]

गोवर्धन का शब्दिक अर्थ 'गोवंश' की वृद्धि करने से है। इसी अर्थ में श्री कृष्ण ने गोवर्धन को लिया होगा और ब्रजवासियों को गो–वंश वृद्धि के लिए प्रेरित किया होगा। कृष्णकाल से पूर्व वैदिक परम्परा के अनुसार 'इन्द्र' की पूजा होती थी, क्योंकि इन्द्र वर्षा के देवता माने जाते थे और वर्षा पर ही कृषि निर्भर होती थी। कृष्ण ने उनके स्थान पर प्रकृति–पूजा के रूप में पर्वत और भूमि को प्रमुखता दी। इस प्रकार उन्होंने, वैदिक उपासना के स्थान पर लोक–जीवन का आधार 'गोवर्धन' अर्थात् गो–वंश की वृद्धि को स्वीकार किया। गोवर्धन पर्वत ब्रज प्रदेशका छोटा सा पर्वत है, किन्तु श्रीकृष्ण काल का एकमात्र स्थिर अवशेष होने के कारण अत्यधिक महत्व रखता है। बल्लभ सम्प्रदाय के उपास्य देव श्रीनाथ जी का प्राकट्य–स्थल होने के करण इसकी धार्मिक महत्व और भी बढ़ गई है। '' गर्ग संहिता'' में गोवर्धन पर्वत के महत्व को बताते हुए कहा गया है– ''गोवर्धन पर्वतों का राजा और हरि का प्यारा है। इसके समान पृथ्वी या स्वर्ग में कोई दूसरा तीर्थ नहीं है।''

अहो गोवर्धनः साक्षात् गिरिराजौ हरिप्रियः।
तत्समानं न तीर्थहि विद्यते भूतलेदिवि।।[3]

कृष्ण भक्ति के रास में डूबे भक्तिकालीन कवियों ने गोवर्धन पर्वत को सम्पूर्ण देवताओं में सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया है।

सब देवनि कौ देवता, गिरि गोवर्धन राज।
ताहि भोग किन दीजिए, सुरपति कौ कह काज।। [4]

भक्तिकालीन परमानन्ददास ने तो गोवर्धन को देवता के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए कहा है कि ''गोवर्धन हमारा पूज्य देवता है, जिसकी छत्रछाया में हम जीवन यापन करते है, जिसकी कृपा से सदा गोधन की वृद्धि होती है और समस्त ब्रज सुखी रहता है, उसका आश्रय छोड़कर हम किसकी आराधना करें?''

हमारो देव गोवर्धन रानो।
जाकी छत्र छांह हम बैठे, ताकौ तजि और को मानो।।
नीको तृन सुन्दर जल नीको, नीको गोधन रहत अघानो।
नीको सब ब्रज होत सुखारी, सुरपति कोप कहा पहचानो।।[5]

श्रीकृष्ण ने इन्द्र की परम्परागत पूजा बंद करके गोवर्धन की पूजा प्रचलित करके इसके धार्मिक महत्व को और भी बढ़ा दिया है। कहा जाता है कि इस पूजा से अप्रसन्न होकर इन्द्र ने ब्रज को डुबो देने के लिए प्रलयंकारी वर्षा प्रारम्भ कर दी थी किन्तु श्रीकृष्ण ने इन्द्र के प्रकोप से ब्रज की रक्षा करने के लिए गोवर्धन पर्वत को छाते के समान धारण कर लिया और ब्रजवासियों की रक्षा की। इसका वास्तविक अभिप्राय तो यह प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण के आदेशानुसार समस्त ब्रजवासियों ने गोवर्धन की कदराओं में आश्रय लेकर वर्षा से अपनी रक्षा की थी। भक्तिकालीन–साहित्य में धार्मिक महत्व की दृष्टि से गोवर्धन का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है।

गोवर्धन पूजा से अप्रसन्न होकर इन्द्र ने ब्रज को डुबो देने का संकल्प कर लिया और इस उद्देश्य से उन्होंने ब्रज के ऊपर घनघोर वर्षा प्रारम्भ कर दी। इन्द्र के प्रकोप से समस्त ब्रजवासी भयभीत हो गये और देवराज इन्द्र का निरादर करने के कारण विपत्ति से दुःखी होकर ब्रजवासी श्रीकृष्ण को भला–बुरा कहने लगे।

गिरि पर बरसन लागे बादर।
मेद्य वर्त्त, जल वर्त्त, सैन सजि, आए लै–लै आदर।।
सलिल अखण्ड धार धर टूटत, किये इन्द्र मन सादर।
मेद्य परस्पर यहैं कहत हैं, धोई करहु गिरि खादर।।[6]

ब्रजवासियों को श्रीकृष्ण का ही एकमात्र सहारा था, इसलिए इस महान आपदा से बचने के लिए उन्होंने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की। श्रीकृष्ण ने ब्रज की रक्षार्य और इन्द्र का मान भंग करने के उद्देश्य से गोवर्धन पर्वत को अपने बायें हाथ की उंगली पर धारण कर लिया।

स्याम लियौ गिरिराज उठाइ।
धीर धरौ हरि कहत सबनि सौं, गिरि गोवर्धन करत सहाइ।।[7]

परमानन्ददास ने भी गोवर्धन लीला और इन्द्र मान–भंग के प्रसंग में गोवर्धन पर्वत का अनेक बार उललेख किया है। इन्द्र प्रकोप से जब निरन्तर सात दिन और रात घनघोर वर्षा होती रही, तो श्रीकृष्ण ने अपने बायें हाथ पर गोवर्धन पर्वत धारण कर लिया और ब्रजवासियों की रक्षा करने के साथ ही साथ इन्द्र के अहंकार को भी दूर कर दिया–

कैसा माई अचरज उपजै भारौ।
पर्वत लियौ उठाय अंक–लै, सात बरस को बारौ।।
सात द्यौंस निसि इकटक ही याने बाम पानि पर धार्यौं।
बरखे मेद्य महाप्रलय के तिन ते घोष उबार्यो।
गोधन ग्वाल गोप सब राखे, सुरपति गरब प्रहार्यो।।[8]

गोवर्धन का धार्मिक जीवन में ही नही, अपितु भारत के सांस्कृतिक जीवन में भी बहुत बड़ा महत्व है। ब्रज में ही नहीं वरन् समस्त उत्तरी भारत में गोवर्धन पूजा का उत्सव, जिसे लोकाचार में 'गोधन' कहते है। दीपावली के दूसरे दिन कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को मनाया जाता है। गाय का गोबर एकत्रित करके पर्वत के आकार का पिंड बना लेते है। उसके मध्य भाग में नाभि–सी बनाकर उसमें दूध भर दिया जाता है और ग्वाल–बाल अपनी सुसज्जित गायों को लेकर एक ओर खड़े हो जाते हैं। मध्य में हरे–भरें फूल वाले छोटे–छोटे पौधे उगाये जाते है। गोपियाँ रंग बिरंगे वस्त्र धारण करके रसिया गाती है तथा गायों को पूजती हैं। उसके बाद भक्ति रस में निमग्न नर–नारी गोबर के पिंड को गोवर्धन का प्रतीक मानकर उसकी परिक्रमा करते हैं। गोमय पिण्ड की नाभि में डाला गया दूध ग्वालें को पिलाया जाता है। पूजा के पश्चात् स्त्री–पुरूष गोधन से स्वजनों के कल्याण की कामना करते हुए घर वापस लौट आते हैं। गोधन कृषकों का वास्तविक धन है। भारत के विकास और प्रगति में कृषि वृद्धि के उद्देश्य से गोधनोत्सव की प्रथा प्रचलित थी।

महाकवि सूरदास ने अपने ग्रंथ में श्रीकृष्ण के माध्यम से गोवर्धन पूजा का महत्व प्रदर्शित करते हुए कहा है कि ''यदि ब्रज की कुशलता चाहते हो तो गोवर्धन की पूजा करनी चाहिए, क्योंकि यह दूध–दही और गोवंश की वृद्धि करने वाला है।''

मेरी कह्यौ। सत्य करि जानौ।
जौ चाहौ ब्रज की कुशलाई, तौ गोवर्धन मानौ।।
दूध–दही तुम कितनी लैहौ, गोसुत बढ़ैं अनेक।
कहाँ पूजि सुरपति सौं पायो, छांडि देहु यह टेक।।[9]

श्रीकृष्ण की तर्कपूर्ण बातों से आश्वस्त होकर ब्रजवासी गोवर्धन पूजा के लिए तैयार हो जाते हैं और अत्यधिक आनन्दित होकर भिन्न–भिन्न प्रकार के पकवान और मिष्ठान लेकर गोवर्धन पूजा के लिए नाचते–गाते हुए चल देते हैं।

अति आनन्द ब्रजवासी लोग।
भांति–भांति पकवान सकट भरि लै–लै चले छहूँ रस भोग।।[10]

कविवर परमानन्ददास ने गोवर्धन–लीला प्रसंग का वर्णन किया है–

गोवर्धन पूजि के घर आये।
जननी जसोदा करत आरती मोतिन चौक पुराये।।[11]

नन्ददास ने भी इन्द्र पूजा की वैदिक परम्परा के स्थान पर गोवर्धन पूजा को श्रेष्ठ माना है और उन्होंने इन्द्र की अपेक्षा गोवर्धन को अधिक महत्व दिया है।

जहँ यह गिर गोवर्धन सोहे, इन्द्र बराक या आगे को है।
पूजौ याहि भलौ जौ चाहौ, बिनु मांगे कीतवु सर गाहौ।।[12]

गोविन्दस्वामी ने भी अपने पदों में गोवर्धन पूजा का वर्णन करते हुए कहा कि यदि तुम गोधन, गोरस (दूध, दही, घी आदि) और धर्म, अर्थ आदि चारो पदार्थो को प्राप्त करना चाहते हो, तो गोवर्धन की पूजा करनी चाहिए।

तौ तुम गोवर्धनहि पूजौ, सोचि सबै अनुसारौ।
वे हैं प्रगट भागि, वांछित फल दै हैं सकल तिहारौ।।
तब ब्रजपति बृषभान आदि सब बैठे मन्त्र विचारे।
याकौ वचन सत्य करि जानों, मानो वचन हमारे।।[13]

गोवर्धन की स्थिति के सम्बन्ध में किसी भ्रान्ति का स्थान नहीं है, क्योंकि आज भी गोवर्धन यदास्थान विद्यमान है, किन्तु इसके स्वरूप में अवश्य कुछ अन्तर आ गया है। मथुरा से डगर जाने वाली सड़क के समीप लगभग 15 मील दूर गोवर्धन नाम से एक छोटा सा पहाड़ है। श्रीकृष्ण से सम्बन्धित होने और धार्मिक महत्व के कारण इसे मथुरा मण्डलवासी 'गिरिराज' के नाम से जानते है। महाभारत में भी गोवर्धन पर्वत का उल्लेख हुआ है और इसे श्रीकृष्ण ने ब्रजरक्षार्थ अपनी उंगली पर धारण किया था।[14]

श्री विजयेन्द्र कुमार माथुर के अनुसार ''गोवर्धन की श्रृंखला वास्तव में पर्वत नहीं है वरन् एक लम्बा चौड़ा बाँध है, जिसे संभवतः श्रीकृष्ण ने वर्षा की बाढ़ से ब्रज की रक्षा करने के लिए बनवाया था। यह अधिक ऊंचा नहीं है और इसे पर्वत किसी प्रकार भी नहीं कहा जा सकता। इसके पत्थरों को देखने से भी यह प्रतीत होता है कि यह कृत्रिम रूप से बनाई गई कोई संरचना है। आज भी गोवर्धन के पत्थरों को उठाना यह हटाना पाप समझा जाता है। इस बात से भी इसका कृत्रिम रूप से जनसाधारण के हितार्थ बनाया जाना प्रमाणित होता है।''[15]

पौराणिक अनुश्रुतियों के अनुसार कृष्ण काल में यह अत्यन्त हरा–भरा रमणीक पर्वत था। इसमें अनेक कन्दरायें थीं और उनसे शीतल जल के अनेक झरने प्रवाहित होते रहते थे। ब्रज के लोग अपनी गायें उसके निकट चराया करते थे और वे उसे बड़ी श्रृद्धा की दृष्टि से देखते थे। भक्तिकालीन कवियों ने गोवर्धन के भव्य प्राक्तिक सौन्दर्य का वर्णन किया है। गोवर्धन के अद्वितीय सौन्दर्य को देखकर देवराज इन्द्र को ईर्ष्या हो जाती है। उसे गोवर्धन पर सुशोभित हरे – भरे वृक्ष लताएं, पक्षियों का कलरव और मयूरों का नृत्य सहन नहीं होता है। गोवर्धन के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण करते हुए कहा गया है कि ''गोवर्धन पर्वत पर मनोहर वृक्ष, लताकुंज, कन्दराए और शीतल व स्वच्छ जल से परिपूर्ण सरोवर विद्यमान है। विभिन्न प्रकार के अनेक पक्षी कलरव करते रहते है और कमलों पर भौरें गुंजार करते रहते है।''

ऊपरि खग मृग अरू तरू बेली, तिन पें फुही न परैं अकेली।
नाचैं मोर कुलाहल कीजैं, इन्द्र की छाती लौंन सौं मीजैं।।[16]

परमानन्ददास के ग्वाल–बाल गोवर्धन पर्वत की छाया में नाचते–गाते और कोलाहल करते रहते है।

आवहु रे आवहु रे ग्वालो या परवत की छहियाँ।
गावहुँ नाचहु करहु कुलाहल, जिन डरपहु मन महियाँ।।[17]

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि भक्तिकालीन कवियों ने गोवर्धन–पूजा, ब्रज रक्षार्थ तथा इन्द्र के मान–भंग हेतु गोवर्धन धारण आदि अनेक प्रसंगों के अन्तर्गत गोवर्धन पर्वत का विविध प्रकार से वर्णन किया है। श्रीकृष्ण भक्तिकालीन कवियों के आराध्य देव हैं, इसलिए इसका

महत्व और अधिक बढ़ गया है। परिणाम स्वरूप धार्मिक, सांस्कृतिकएवं भौगोलिक दृष्टि से उन्होंने अपने काव्य में गोवर्धन पर्वत के महत्व को प्रतिपादित किया है।

सन्दर्भ :

1. श्रीमद्भागवत, 5/19/16
2. रघुवंश, 6/5/
3. गर्ग संहिता, गिरिराज खण्ड, अ0 9
4. सूरसागर, 1459
5. परमानन्दसागर, 279
6. सूरसागर, 1476 व 1477
7. सूरसागर, 1481 एवं 1489
8. परमानन्दसागर, 268
9. सूरसागर, 1439, 1445 तथा 1446
10. सूरसागर, 1446
11. परमानन्दसागर, 272, 275, 279, तथा 280
12. गोवर्धन लीला (नन्ददास ग्रन्थावली) पृष्ठ 167
13. गोविंदस्वामी, 29 (अष्टछाप परिचय से उद्घृत)
14. महाभारत, उद्योग पर्व, अध्याय 129
15. ऐतिहासिक स्थानावलीः विजयेन्द्र कुमार माथुर, पृष्ठ–306
16. गोवर्धन–लीला (नन्ददास ग्रन्थावली), पृष्ठ 169
17. परमानन्दसागर, 265

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

संस्कृत में जन्मभूमि

डॉ0 अजित कुमार जैन
एसो0 प्रोफेसर एवम् अध्यक्ष,
संस्कृत विभाग, एस0वी0 कॉलेज,
अलीगढ़, (उ0प्र0)

संस्कृत वाङ्मय की धारा अनवरत दो प्रकार की प्राप्य है– (1) वैदिक संस्कृत (2) लौकिक संस्कृत।[1] वैदिक काल से लेकर अद्यावधि भारतीय मेधा के चिंतन में जन्मभूमि/मातृभूमि के प्रति सहज कर्तव्यबोध, श्रद्धा, पूज्यत्व, माता जैसी भावना पदे पदे प्राप्त होती है।

अथर्ववेद में पूज्य ऋषिवर्ग का यह कथन है– ''माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः''[2]। जन्मभूमि के लिए यह मातृभावना अत्यन्त प्रशस्त है। जैसे माता अपने पुत्र के हित का सब तरह से ध्यान देती है, उसी तरह यह पृथ्वी माता हमारे लिए सम्पन्नता प्रदान करे और इस आशय का कथन– ''माता पुत्राय मे पयः''[3] वैदिक में मिलता है। कल्याण अंक में भी यह उल्लेख किया गया है।[4] हर प्रकार से यह जन्मभूमि हमारे लिए ''योगक्षेमा नः कल्पतम्'' कुशल क्षेमदायिनी हो।[5] भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन के वैदिक धारा में भी इस आशय का संकेत प्राप्य है।[6]

यह पवित्र भारतभूमि भाग हम समस्त भारतीयों का गौरव एवं अस्मिता का कारण है। यह जन्मभूमि हमारे लिए अत्यन्त श्रद्धाभाव से पूज्यत्व रूप में अवतरित है। यह कथन हमें गर्व और गौरव की अनुभूति कराने में पूर्ण समर्थ है[7]–

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र संततिः।।

इसी की सादश्यता का दर्शन महाकवि कालिदास की इन पंक्तियों में दृष्टव्य है[8]–

''अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा,
हिमाणयो नाम नगाधिराजः।
...........पृथिव्या इव मानदण्डः।।''

महर्षि वाल्मीकि का 'रामायण' में मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के द्वारा कहा गया कथन संस्कृत साहित्य का रत्नवत् सुशोभित होता है[3]–

''नेत्रं स्वर्णपुरी लंका रोचते मम लक्ष्मणः।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।''

संस्कृत साहित्य में जन्मभूमि भारतवर्ष को पाकर अपने को धन्य धन्य मानने का भाव भी जागृत होता हुआ दिखता है। विष्णुपुराण में यह उल्लेख इस प्रकार से दृष्टव्य है[10]–

''गायन्ति देवा किलगीतकानि,

धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे।''

अथर्ववेद का पृथ्वीसूक्त पूर्णतः जन्मभूमि के लिए ही समर्पित दिखाई पड़ता है।[11] वैदिकोत्तर साहित्य में भी सर्वत्र जन्मभूमि के लिए आदर, प्रेम, श्रद्धा, समर्पण, पूज्यत्व आदि भावों की अभिव्यक्ति मिलती है।

उत्तरकालीन संस्कृत कवियों में प्रायः सभी ने कालिदास, माघ, भारवि आदि ने भी इस परम्परा का निर्वहन अपने अपने महाकाव्यों में किया है।

सारतः यहाँ यह कहना समीचीन है कि संस्कृत वाङ्मय में जन्मभूमि को मातृवत् पूज्य कहकर श्रद्धा, आदर, बहुमान, कर्तव्य, गौरव और स्वर्ग से भी बढ़कर बताया गया है। अतः इसकी रक्षा संरक्षा सुरक्षा के लिए यदि अपने प्राणों की आहुति भी देनी पड़े तो भी तत्परता से निर्वाह करना परम पुनीत कर्तव्य है।

संदर्भ :

1. आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास
2. अथर्ववेद– 12/1/12
3. अथर्ववेद– 12/1/10
4. कल्याण– 'कथांक', गीताप्रेस गोरखपुर, 2004, पृ0 211
5. यजुर्वेद– 22/22
6. डॉ0 मंगलादेव शास्त्री– भारतीय संस्कृति का विकास, 2010, पृ0 190
7. वायुपुराण– 19/1, वेद कथांक– कल्याण, पृ0 262
8. कविकुलगुरु कालिदास– कुमारसंभव, प्रथम सर्ग, श्लोक–1
9. महर्षि वाल्मीकि– रामायण
10. विष्णुपुराण
11. अथर्ववेद में पृथ्वी सूक्त

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

डा. रवीन्द्र उपाध्याय के गीतों में राग-विराग

देवीदत मालवीय
शोधार्थी (हिन्दी) भीमराव अम्बेदकर बिहार
वि.वि. मुजफ्फरपुर

जब व्यक्ति भावावेशित होता है तब अपने उदगारों को काव्य की भाषा में प्रकट करता है फिर गीत का जन्म होता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व और उसकी आंतरिक अनुभूतियों तथा भावों का जीवत भाषा में व्यक्त करने की क्षमता गीति काव्य की विशिष्टता है। गीतकार की अनुभूतियों की तीव्रता और व्यक्तिगत भाव, गीत में रागात्मकता के तत्व भर देते हैं। संवेदनाओं को झंकृत करने वाले गीत दीर्घकाल तक मानस पटल पर झंतकृतियाँ छोड़ जाती हैं और कभी-कभी तो एक गीत व्यक्ति के संपूर्ण जीवन में ही परिवर्तन ला देता है। यही कारण है कि सूर तुलसी और मीरा द्वारा रचित भक्ति परक गीत आज भी मानव जीवन के उदास विचार तथा सुकोमल संवेदनाओं को प्रभावित किए हुए हैं। समय के साथ जीवन मूल्य बदलते हैं, गीतकार का नजरिया बदलता है मानवीय संवेदनाओं के स्तर परिवर्तित होते हैं और इन सब में बदलाव के कारण रसिक श्रोताओं एवं पाठकों की मानसिक अवधारणाएँ भी बदल जाती है।

सच्चा गीतकार वही होता है, जो समाज का पथ प्रदर्शक बन समाज में नया स्वर भर दे, नई चेतना जगा दे। हारे थके उदास जानों में नये प्राण भर दे। गीतकार डॉ. रवीन्द्र उपाध्याय भी एक पथ प्रदर्शक गीतकार हैं। इन्होंने मानवीय जीवन में आने वाले सुख और दुःख दोनों को अंगीकार करते हुए जीत में सुख और दुःख दोनों ही के बारे में लिखा है। केवल सुख के बारे में नहीं केवल दुःख के बारे में नहीं समकालीन गीतकारों में डॉ रवीन्द्र उपाध्याय की अपनी एक अलग पहचान है। ओज का प्राकट्य उनके गीतों की विशेषता है। उन्होंने गीतों में नवाचारों का प्रयोग करते हुए भारतीय दर्शन से उसे जोड़ा है। गीतों में नये-नये आयामों का बोध कराते हुए गीतों को ऊंचाई दी है। इनके गौलों में संयोग-वियोग, धूप-छांव की रागात्मक अनुभूतियों परिलक्षित होती हैं।

उनके गीतों में प्रकृति नये रंग-रूप, नई उमंग के साथ दिखाई देती है। उपाध्याय जी के गीतों में आत्मविश्वास एवं दर्द के प्रति पूरी सहानुभूति तो दिखाई देती है, साथ ही गीतों के भावो को अनुभव के ताजगी से पूरे उमंग के साथ प्रस्तुत किया है और यही कारण है कि इनके गीत पाठकों को आकृष्ट तथा श्रोताओं को वाह वाह करने पर मजबूर कर देते हैं। डॉ रवीन्द्र उपाध्याय

के अधिकांश गीत संवेदना के धरातल पर विभिन्न भावानुभूतियों पर स्थापित होकर भी एक समानता रखते हैं। इन गीतों में सामाजिक संदर्भ का विस्तृत समायोजन है, जो गीतों में यथार्थ स्थापित करने का यथेष्ट प्रयास करता है। भावना में रचे-पके के गीतों का रिश्ता अधिक अर्थों में व्यक्ति के दुःख दर्द, उसकी निराशा हताशा से होता है, और इन गीतों में जो सौंदर्य है, यह स्थितियों का सुक्ष्म अभिनव सौंदर्य है। उपाध्याय जी के गीत इतने संवेदनशील हैं कि यह समय परिस्थिति के किसी तात्कालिक परिवर्तन के प्रभावी क्षण को अपनी लय में तुरंत ग्रहण कर लेते हैं।

डॉ रवींद्र उपाध्याय के गीत संग्रह धूप लिखेंगे- छांव लिखेंगे' में पूर्ण रूप से गीति तत्वों का समावेश है जीवन के प्रत्येक पहलुओं को बड़ी सजगता के साथ आप गीत संग्रह में प्रस्तुत करते हैं। जीवन में आने वाले झंझावातों से टकराते हुए गीतकार निरंतर मस्ती के साथ जीवन पथ पर अग्रसर होते दिखाई देते हैं

"सच हुआ नहीं सपना

चाहा करना सच स्वप्न

सच क्या होगा सपना है। यही क्या कम है?

आहत, मर्माहत हुआ नहीं कुछ गम है कुंदन बनने के लिए

सदा कंचन को तपना है।

व्यक्तिनिष्ठ, सामाजिक चेतनानुभूतिमय रागात्मकता के साथ बौद्धिक निष्पति का अद्भुत मणिकांचन योग जहां उनके गीतों में मिलता है, वही इस त्रासद जीवन में सुख दुःख, कुंठा टुटन, घुटन आदि के कालेबादल हमेशा छाए हुए हैं, बावजूद इसके गीतकार प्रबल जीजिविषा, मस्ती, उल्लास एवं उत्साह के साथ सब को अपने जीवन में अंगीकार करते हुए आगे बढ़ते हैं

"जिंदगी के इस सफर में धूप भी है- छांव भी। कंटको की सेज सोना ख्वाब फूलों के संजोना मुस्कुराना आंसुओं में हर्ष में पलकें अंगिमा इस कदम पर 'वाह' है तो उस कदम पर 'आह' भी। लुभाते बंधन सुनहले मुक्ति की है चाह भी । "

डॉ रवींद्र उपाध्याय के गीतों में जीवन का यथार्थ चित्रण है। इनके गीतों में कहीं उबाल या खलबलाहट, शोर-शराबा नहीं है। श्री गोपेश्वर सिंह लिखते हैं "कविता को राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय क्षितिज पर प्रतिष्ठित करने के लिए हलकान रहने वाले कवियों से रवीन्द्र उपाध्याय भिन्न हैं। उनमें हिंदी कविता की उस परंपरा से जुड़ने की ललक है, जिसमें राग-विराग दोनों ही भावो के

प्रति समान आकर्षण है। अनहद संगीत से स्पंदित इस जीवन जगत में लय की खोज तथा मनुष्य के प्रति अकम्प आस्था उनके गीतों और गजलों का सहज धर्म है।"

आज के समकालीन हिंदी गीत का मुख्य संबंध मनुष्य की अपनी सामाजिक बिडम्बना, विसंगतियों और उसको जख्मी रागात्मकता से है। यही जख्मी रागात्मकता मनुष्य के सामूहिक जीवन बांध का एक अंग है, जिसमें सदियों के उहापोह से जूझते हुए उसे मानव बनाया है। सभ्यता के नाम पर बँटे हुए लोग, मानव के गौरव को हानि पहुंचा रहे हैं। मानव पाश्चात्य सभ्यता के मोहजाल में इतना फंसता जा रहा है कि उसकी अपनी पहचान, उसका अपना वजूद भी आज नष्ट होने के कगार पर है। दोहरे चरित्र को धारण किया हुआ मानव संवेदना, करुणा, दया से अपने को अलग रखा हुआ है-

"किस मिजाज की चली हवा

बुरी तरह बँटे हुए लोग आँखों में शक छलक रहा

चेहरे पर भय झलक रहा सुविधा के पांव परस को

तोपी मन भी ललक रहा भीतर है भेद भयानक ऊपर से सटे हुए लोग।"

रवींद्र उपाध्याय के सामने जैसी भी जीवन अनुभूतियां आई हैं, उन्हें गीत के माध्यम से सामने रख दिया

"धूप लिखेंगे -छांव लिखेंगे मंजिल वाली राह लिखेंगे खुशियों के कोलाहल में जो दबी दबी है आह, लिखेंगे। बे-मकसद जीना क्या जीना। बिना पाल जिस तरह सफीना हर हताश को हाथ बांटना पडे ना क्यों खुद आंसू पीना मायूसी के मस्तक पर भी पल-पल का उत्साह लिखेंगे।"

गीतकार अपने गीतों में आज के मूल्यहीन मानवीय जीवन का चित्रण करते हुए बताता है कि यहां भी जाल, प्रपंच और झूठ का ही बसेरा है। स्वार्थपरता और भ्रष्टाचार की कोढ में सत्य छुप गया है। फैले हुए अंधेरों के बीच सारे सार्थक प्रसंग उलट-पुलट गए हैं

"सुर्खियाँ ढो रही वहशत प्रीत खातिर हाशिये है मेमनों के मुखोटे में घूमते अब भेड़िए हैं। स्याही शतरंज की है बिछ गई हर सू बिसाते पैचवाली चाल गहरी दाँव शाति, घाघ- घाटों आज भी जीता शकुनी है युधिष्ठिर हारा किये हैं।"

डॉ. ताराचरण खवाड़े ने लिखा "रवीन्द्र उपाध्याय मस्ती, फक्कड़पन सादगी और सच्चाई के साथ नैतिक बोध के तल्ख गीतों के गायक हैं। इनके गीत सार्थक संवाद के लिए आमंत्रित करते हैं। " रवींद्र उपाध्याय के गीत हृदयाभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रह कर समाज

को दिशा निर्देश भी देते हैं और मार्ग के अवरोधों को हटाने का प्रयत्न भी करते हैं। गीतकार ने व्यवस्था के खिलाफ विरोध केवल विरोध के लिए नहीं किया है, बल्कि विरोध के लिए कुछ खास मुद्दों को लेकर वे गलत संदर्भों को उजागर भी करते हैं। उपाध्याय जी के गीतों में ऐसे स्वर बिना किसी पूर्वाग्रह के संपूर्ण अर्थवता के साथ प्रस्तुत हुए हैं। वर्तमान को गलत करार देते हुए और सत्य को बहुत नजदीक पाते हुए लिखा

"चांदनी पर लिखो चर्चा में रहोगे

घाम पर जो लिख रहा गुमनाम है झुलसती धरती मगर जलधार लिखना राजपथ के ठुठ को छतनार लिखना लाभकर है- कुर्सियों के कसीदे लिख विरोधी स्वर का बुरा अंजाम है।"

इन गीतों में सृजनशीलता के अंतर्विरोध को कवि ने व्यक्त किया है। इन अंतर्विरोध में सत्ता के खिलाफ वास्तव में खड़ा होना मुश्किल काम है और जो मुश्किलों का सामना नहीं कर सकते तथा साहित्य को भी लाभकर बनाना चाहते हैं उन को ध्यान में रखकर कभी कहता है

"उत्सवों में पुरोहित हुए गर्दिश में तिरोहित हुए मतलय में वक्त झुक गए सधा काम लोहित हुए भीतर है भेद भयानक ऊपर से सटे हुए लोग बुरी तरह बँटे हुए लोग|

अवसरवादी चरित्र के लोगों की जीवन गति यही है। ऐसे लोगों की चेतना और चरित्र को एक साथ उलझता हुआ दिखाया है कवि ने। इसी भाव को कवि ने और कई गीतों में अलग-अलग तरह से व्यक्त किया है। कवि ऐसे चरित्र के लोगों का भाव स्थिति को कुछ यूँ चित्रित किया है

"बाहर है सब भरा-भराअंतर्घट रीता का रीता

मुंडे की जगह मुखौटा है कैद से भी आदमी छोटा है सारे रिश्ते ज्यों लाल मिर्च लाली उपर, भीतर तीता।""

रवींद्र उपाध्याय ने अपने गीतों में तीखे अनुभवों को गूथ कर पाठकों एवं श्रोताओं को भिन्न रचनात्मक ताजगी का एहसास कराया है। गीतकार ने जीवन की विकलता और प्रतिकूलता से लड़ते हुए उस पर विजय पाने की सिर्फ चाह ही नहीं रखता, अपितु वह इसके लिए अपने को निरंतर संघर्षरत रखता है। वह धारा से संघर्ष करता है, जीवन की प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलने के लिए

" है हवा प्रतिकूल, विस्तृत पाट, धारा भँवरवाली बधिर बाधाएं करें हम प्रार्थना या बके गाली रेत का ही घरौंदा फिर फिर बनाना है कि साथी, पार जाना है ? किनारे ही बैठ केवल कुलबुलाना हैं कि साथ, पार जाना है?"

इस गीत में कवि ने भावनाशीलता के साथ साथ विवेकशीलता और भाषिक रचनात्मकता का समन्वय किया है। प्रकृति के अनुभव पर भी आधारित डॉ. उपाध्याय के ऐसे गीत हैं, जो सहसा पाठकों का ध्यान अपनी तरफ खींच लेते हैं। इनके प्रकृति गीतों में छायावादी रचनाओं की विशेषता अलग-अलग रूपों में झांकने की कोशिश करते हैं और कुछ इसी तरह के रूप को लिए हुए हैं, उपाध्याय जी के प्रकृति गीत।

" चंदनगंधी हवा चली

मधुमास आ गया! धूसर, अपत डालियों पर शत-सुमन खिल गये ठिठुरे ठहरे सपनों को जो पंख मिल गये। फूली सरसों मनहर कंचन हास छा गया। स्मृति में परदेशी कितने पास आ गया। "

उपाध्याय जी ऐसे गीतकार हैं, जो चुन-चुन कर शब्द टाँकते नहीं हैं बल्कि गीत को बड़े फक्कड़पन से संवेदना में डूबा कर रवानी देते हैं। इनके गीतों में अलग मस्ती तथा रस-गंध दिखाई देते हैं, जो सरलता एवं सादगी से लवरेज हैं। ग्रामीण सभ्यता व संस्कृति को गीतकार ने हमेशा महत्व दिया है, जिस संस्कृति में पलने- बढ़ने वाले लोग सुख-दुःख को आपस में साझा करते हैं। आकांक्षाओं पर बजारी, शहरी संस्कृति हावी न हो, इसकी चिंता गीतकार को है। इनके गीतों में जन आकांक्षाओं को बचाने की बेचैनी स्पष्ट परिलक्षित होती है|

बादल भैया, बादल भैया पानी दो! इसी धरा का प्रक्षेपण तुम गगन हुए हो हम सबके सिर चढ़े, नाचते मग्न हुए हो लू- लपटों से व्याकुल धरती इसको छाँह हिमानी दो सूखा ताल तलैया, ध्वनि बाबू दइया कीअंतर्घट रीता का रीता|

मुंडे की जगह मुखौटा है कैद से भी आदमी छोटा है सारे रिश्ते ज्यों लाल मिर्च लाली उपर, भीतर तीता।"

रवींद्र उपाध्याय ने अपने गीतों में तीखे अनुभवों को गूथ कर पाठकों एवं श्रोताओं को भिन्न रचनात्मक ताजगी का एहसास कराया है। गीतकार ने जीवन की विकलता और प्रतिकूलता से लड़ते हुए उस पर विजय पाने की सिर्फ चाह ही नहीं रखता, अपितु वह इसके लिए अपने को निरंतर संघर्षरत रखता है। वह धारा से संघर्ष करता है, जीवन की प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलने के लिए-

" है हवा प्रतिकूल, विस्तृत पाट, धारा भँवरवाली बधिर बाधाएं करें हम प्रार्थना या बके गाली रेत का ही घरौंदा फिर फिर बनाना है कि साथी, पार जाना है ? किनारे ही बैठ केवल कुलबुलाना हैं कि साथ, पार जाना है?"

इस गीत में कवि ने भावनाशीलता के साथ साथ विवेकशीलता और भाषिक रचनात्मकता का समन्वय किया है। प्रकृति के अनुभव पर भी आधारित डॉ. उपाध्याय के ऐसे गीत हैं, जो सहसा पाठकों का ध्यान अपनी तरफ खींच लेते हैं। इनके प्रकृति गीतों में छायावादी रचनाओं की विशेषता अलग-अलग रूपों में झांकने की कोशिश करते हैं और कुछ इसी तरह के रूप को लिए हुए हैं, उपाध्याय जी के प्रकृति गीत।

" चंदनगंधी हवा चली

मधुमास आ गया! धूसर, अपत डालियों पर शत-सुमन खिल गये ठिठुरे ठहरे सपनों को जो पंख मिल गये। फूली सरसों मनहर कंचन हास छा गया। स्मृति में परदेशी कितने पास आ गया।"

उपाध्याय जी ऐसे गीतकार हैं, जो चुन-चुन कर शब्द टाँकते नहीं हैं बल्कि गीत को बड़े फक्कड़पन से संवेदना में डूबा कर रवानी देते हैं। इनके गीतों में अलग मस्ती तथा रस-गंध दिखाई देते हैं, जो सरलता एवं सादगी से लवरेज हैं। ग्रामीण सभ्यता व संस्कृति को गीतकार ने हमेशा महत्व दिया है, जिस संस्कृति में पलने- बढ़ने वाले लोग सुख-दुःख को आपस में साझा करते हैं। आकांक्षाओं पर बजारी, शहरी संस्कृति हावी न हो, इसकी चिंता गीतकार को है। इनके गीतों में जन आकांक्षाओं को बचाने की बेचैनी स्पष्ट परिलक्षित होती है|

बादल भैया, बादल भैया पानी दो! इसी धरा का प्रक्षेपण तुम गगन हुए हो हम सबके सिर चढ़े, नाचते मग्न हुए हो लू- लपटों से व्याकुल धरती इसको छाँह हिमानी दो सूखा ताल तलैया, ध्वनि बाबू दइया कीखुद के साथ-साथ चिंता बछड़ा गइया की मेंढक की मायूसी देखो-

रिमझिम बरखा रानी दो

बादल भैया, बादल भैया- पानी दो।"

युगसापेक्ष गीत गीत परंपरा को मजबूती देते हुए चिरकाल तक समाज में जीवित रहते हैं। गीतकार के गीतों में चिंतन के अनेक व्यापक फलक हमें दृष्टिगत होते हैं, साथ ही संवेदना का ममतक स्पर्श भी हमारे अंतःस्थल को हिला देने वाले है। समकालीन हिंदी गीतकारों में डॉ रवींद्र उपाध्याय एक ऐसे गीतकार हैं, जिनके गीतों में समसामयिकता होने के साथ-साथ सुख-दुःख, राग-विराग, इत्यादि भावों के राग हैं, जिनमें समय से टकराने की इच्छा है और कहीं-कहीं धारा के प्रतिकूल चलने की आकांक्षा भी है। इनके गीत इस मामले में भी बेजोड़ है क्योंकि गीतों की उन्मुक्त गलियों में बसेरा करते गीतकार बड़े ही निश्चल और स्वाभाविक लगते हैं।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य ज्ञानकोष (सं विजय एस. सोजिन्ना) संस्करण 2013 पृष्ठ संख्या 107, 111
2. धूप लिखेंगे- छांव लिखेंगे, पृष्ठ 13
3. वही, पृष्ठ 21
4. गीत विहंग विहार (सं. रंजीत पटेल) संस्करण 2014 पृष्ठ 197
5. धूप लिखेंगे - छांव लिखेंगे, पृष्ठ 17
6. वही, पृष्ठ- 19
7. वही, पृष्ठ- 251
8. संताल परगना के साहित्यकार एवं अन्य निबंध (सं. डॉ ताराचरण खवाड़े) संस्करण- 2010. पृष्ठ 60
9. धूप लिखेंगे- छांव लिखेंगे, पृष्ठ- 06
10. वही, पृष्ठ- 17
11. वही, पृष्ठ- 23
12. वही, पृष्ठ- 26
13. वही, पृष्ठ- 25
14. वही, पृष्ठ- 31

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

सुरेन्द्र स्निग्ध की कविताओं में लोक संस्कृति के विविध आयाम

डॉ० पंकज राय
सहायक प्राध्यापक
हिन्दी विभाग
जे०बी०एस०डी० कॉलेज, बकुची
बी०आर०ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

'लोक संस्कृति' शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द 'फोक कल्चर' का समानार्थी है। लोक संस्कृति हाशिये की समाज की संवेदनाओं को समाहित कर विराट जीवन शैली को उद्‌घाटित करता है। लोक में जनश्रुतियों के रूप में आस्था, विश्वास, मान्यताएँ एवं गाथाएँ पायी जाती है। लोग पेड़–पौधे एवं प्रतीकों की वन्दना सामूहिक अवसरों पर उत्सवधर्मिता के साथ करता है। लोकगाथाओं में त्याग, तपस्या, परोपकार, क्षमा, संयम, आस्था आदि के आदर्श जीवन मूल्यों के पोषण का संदेश रहता है। लोकगाथा के बारे में डॉ० सत्येन्द्र लिखते हैं–"लोक में प्रचलित और परम्परा से चली आने वाली मूलतः मौखिक रूप में प्रचलित कहानियाँ लोककहानियाँ कहलाती हैं।"[1]

लोकगाथाएँ लोक संस्कृति को जीवंत रखने का माध्यम रही है। लोक मानस के विविध आयाम लोकगाथाओं में प्रतिबिम्बित होता है। लोकगाथाओं के माध्यम से मनुष्य अपनी अनुभूतियों एवं जीवन दर्शन को अभिव्यक्ति प्रदान कर पाता है। लोक कथाएँ सदियों से समाज में मौजूद रही है जिसका समय के साथ विस्तारीकरण होता चला गया है। यह गाथाएँ ग्रामीण समाज में अत्यंत लोकप्रिय रहे हैं। जब मनोरंजन के साधन नहीं थे तब रात्रि के समय दादी–नानी बच्चों को कथात्मक लोकगीत सुनाती थी। इन रोचक गाथाओं को बच्चे बड़े ही मनोयोग से सुनते थे। इन गाथाओं का उद्देश्य केवल मनोरंजन कराना नहीं होता था, अपितु मानव मन को संवेदनशील एवं भावप्रवण बनाना होता था। ये गाथाएँ मानव को विषम परिस्थितियों में जूझते हुए लोकमंगल की भावना को विकसित करने वाली है। इसके पात्र आमतौर पर प्रेरणादायी एवं आदर्श चरित्र के होते हैं। प्रत्येक अंचल में अनेक लोकगाथाएँ प्रचलित रही है जिसका भारतीय संस्कृति के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान है।

सुरेन्द्र स्निग्ध की कविताओं में कोसी अंचल की लोक गाथाओं को कविता का वर्ण्य विषय बनाया गया है। इनकी कविताओं में ग्रामीण संस्कृति की कथाओं की मधुरता विद्यमान है। आधुनिक जीवन शैली के कारण ग्रामीण लोक गाथाएँ विस्मृत होती जा रही है। 'विसु राउत' कोसी अंचल की प्रसिद्ध लोकगाथा है। इस लोकगाथा की विरुदावली का लक्ष्य आदर्श जीवन मूल्यों को स्थापित करना है। कथानायक अन्याय और हिंसा का प्रतिकार करता हुआ शहीद हो जाता है। लोकमानस में विसु राउत की प्रसिद्धि लोकदेवता के रूप में रही है।

"पृथ्वी पुनः हो जायेगी गतिशील
दिक् दिगंत तक फैल जायेगी हरियालियाँ
कभी सूखेंगे नहीं आँसू, रूकेगा नहीं दूध
ममता और करुणा की बेली लहराती रहेगी
लहारता रहूँगा युगों ध्वज की तरह
मैं विसु राउत।"[2]

'कोसी का कौमार्य' कविता में कवि ने कोसी नदी को प्रतीक बनाकर एक अनब्याही माँ की विवशता का मार्मिक चित्रण किया है। यह कविता कोसी अंचल की एक लोकगीत से प्रभावित है। कोसी अपने प्रेमी रैया सरदार की दीर्घकाल से प्रतीक्षा कर रही है। जब वह पानी भरने के लिए जाती है तब अपने प्रेमी से मिलने की उम्मीद करती है। कोसी को भरोसा है कि उसका प्रेमी स्वर्णकर्णी घोड़े पर सवार होकर मिलने जरूर आयेगा। अनेक पुरुष उसके नजदीक आना चाहता है, परन्तु कोसी का अनन्य प्रेम रैया सरदार के प्रति समर्पित है।

"भरी हुई गगरी से भारी
होती जा रही है
दूध से भरी मेरी छातियाँ
दो दो ब्रह्माण्डों के भार से लदी
कैसे उठा सकूँगी गगरी"[3]

'कोसी का कौमार्य' कविता में लंबी प्रतीक्षा के बाद रैया सरदार स्वर्णकर्णी घोड़े पर सवार होकर कोसी से मिलने आता है। इस मुलाकात में कोसी अपने प्रेमी रैया सरदार का प्रणय निवेदन अस्वीकार कर देती है, क्योंकि उसे ज्ञात है कि घर में उसका नवजात शिशु भूख से तथा बूढ़ा बाप प्यास से पीड़ित है। कोसी अनब्याही माँ की बेबसी एवं पीड़ा की प्रतीक बनकर सामने आती है जो अपने प्रेमी के प्रति गहन अनुराग रखती है।

"मैंने तुम्हारे लिए ही
सदियों से बचाकर रखा है
बड़े ही जतन से
अपना अक्षत यौवन
अपना संपूर्ण कौमार्य।"[4]

सुरेन्द्र स्निग्ध की कविता 'देह में उगते मजबूत डैने' कोसी क्षेत्र की एक लोकगाथा पर आधारित है। जिसमें एक प्रेयसी सोलह श्रृंगार करके जब अपने प्रेमी से मिलने की तैयारी करती है तब उसके सातों बेटे इस कार्य में सहायक बनते हैं। उसका सबसे छोटा पुत्र अपाहिज है, जिसकी ईच्छा है कि उसके देह में मजबूत डैने उग आये जिससे वह सबसे पहले अपने माँ के प्रेमी के द्वार पर पहुँच सके। देह में डैनों का उग आना एक चमत्कारिक घटना है जिससे वह लंबी दूरी को शीघ्रतापूर्वक तय कर सकता है। शास्त्रों के विपरीत लोक में परकीया प्रेम को लेकर

विशेष दुराग्रह की भावना दिखाई नहीं देती है। इस तरह की अनेक मधुर लोकगाथाएँ मानव के अतृप्त आकांक्षाओं की पूर्ति करती है और जिससे श्रोताओं को आनंद की प्राप्ति होती है। लोकगाथाओं में समस्याओं के निराकरण हेतु आमतौर पर चमत्कारिक घटनाएँ दिखाई देती है। मनुष्य जिन ईच्छाओं की सामान्यतः पूर्ति नहीं कर पाता है वैसी घटनाएँ लोकगाथाओं में अलौकिक चमत्कार के द्वारा पूर्ण होती है।

"शाम ढलने के पहले
पूरी डोली के साथ
पहले मैं ही पहुँचूँगा
माँ के प्रेमी के द्वार
मैं माँ का सबसे प्रिय
सबसे छोटा सातवाँ बेटा
एक पैर से लाचार।"[5]

सुरेन्द्र स्निग्ध की 'ब्रह्माण्ड की रचना' कविता के अनुसार कोसी क्षेत्र के ग्रामीण अंचल के लोगों का मानना है कि 'माँ' ने ही ब्रह्माण्ड की रचना किया है तथा रचना करने के पश्चात गहरी नींद में सो गयी है। 'माँ' की कच्ची नींद किसी भी स्थिति में टूटना नहीं चाहिए। यह कविता नींद के महत्व को स्थापित करने वाली अनूठी कविता का उदाहरण है।

"ब्रह्माण्ड को रचते–गढ़ते
थक गई है माँ
थोड़ा विश्राम दीजिए।"[6]

लोकगाथा में कथा तत्व प्रबंधात्मक लोकगीतों के रूप में पाया जाता है। जिसका प्रवाह सदियों से लिखित या मौखिक रूप में चली आ रही है। वर्णनात्मक, गीतात्मक और कथानक इसकी प्रमुख विशेषताएँ मानी गयी है। लोकगाथाओं के कथानक में आमतौर पर चमत्कारिक घटनाएँ मिलती है। जिसका उद्देश्य अतृप्त आकांक्षाओं की पूर्ति करना होता है। प्रत्येक अंचल की अपनी विशिष्ट लोकगाथा होती है। कारिख महाराज, निरंजन स्वामी, दीना भदरी, लोरिकायन, आल्हा, विसु राउत, बसावन बकतौर, सती बिहुला, राजा भार्तृहरि, राजा सलेस और चुहरमल आदि प्रसिद्ध लोकगाथाएँ हैं।

वर्तमान समय में साहित्य का केन्द्रीय विषय संस्कृति–विमर्श तक सीमित हो गया है। जिसका पाठक वर्ग संपन्न एवं आभिजात्य अभिरूचि से युक्त है। सुरेन्द्र स्निग्ध के काव्य का परिवेश एवं पात्र ठेठ कोसी अंचल से संबंधित है। इन लोकगाथाओं के कथ्यों में गहरी मानवीय संवेदना समाहित है। लोकोन्मुखी रचनाओं में आम जन की आदिम पीड़ा स्वर ग्रहण करती है। इन काव्यों की सबसे बड़ी विशेषता होती है सरसता एवं रोचकता। लोकजीवन की गाथाओं में अन्तर्विरोध के कारण श्रोता एक साथ आनंदित और मर्माहत होता है। यहाँ यथार्थ रोमांटिक अंदाज में सामने आता है। सुरेन्द्र स्निग्ध की कविताएँ समृद्ध लोक संस्कृति के अनछुए पहलू को

उद्घाटित करती है। लोक संस्कृति के विभिन्न पक्ष साहित्य के भाषायी समृद्धि के लिए उपयोगी है। इन कविताओं में किसान जीवन की संस्कृति लोकगाथाओं का अभिन्न अंग है।

वैश्वीकरण के दौर में लोक संस्कृति नष्ट होती जा रही है। गाँवों की परम्परागत जीवन शैली में व्यापक विस्थापन के कारण बदलाव हो चुका है। लोक संस्कृतियाँ नष्ट होकर शहरीकरण की कृत्रिम जीवनशैली अपना रही है। आधुनिक जीवनशैली में मानवीय मूल्यों एवं संवेदना में काफी गिरावट देखी जा सकती है। सामूहिक जीवन के अपनापन का स्थान यांत्रिक मनुष्य ने ले लिया है। इस विषम परिस्थिति में सुरेन्द्र स्निग्ध की कविताएँ लोक संस्कृति के विविध आयाम को प्रतिबिम्बित करती है।

सन्दर्भ–सूची :

1. हिन्दी साहित्य कोष (भाग–1), ज्ञानमण्डल, पृ०–748
2. रचते गढ़ते, किताब महल, पृ०–19
3. वही, पृ०–14
4. वही, पृ०–16
5. वही, पृ०–22
6. वही, पृ०–12

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

हिन्दी व्यंग्य साहित्य और श्रीलाल शुक्ल

गीता देवी
अतिथि प्रवक्ता, हिन्दी विभाग,
ज0ने0रा0म0, पोर्ट ब्लेयर, अ0 तथा नि0 द्वीप समूह

श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य और समाज की अपने परिवेश और समाज से परिचित थे।और अपनी पैनी दृष्टि से उसको देखते थे।

हर युग में लिखा गया साहित्य तत्कालीन सामाजिक परिवेश की भू मिका पर रचा जाता है। उसमें अपने समय -समाज का दर्पण स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। एक जागरुक साहित्यकार अपने समाज में व्याप्त विसंगतियों, विडम्बनाओं, परम्पराओं, संस्कृति आदि का साक्षी होता है और उन्हीं में से अपने रचनाकर्म के लिए कथ्य चुनता है। श्रीलाल शुक्ल जी अपने परिवेश और समाज से रु-ब-रु थे और अपनी पैनी दृष्टि से उसको देखते थे। बेहद सरल और बेहद गूढ़ दोनों ही तरह के विषयों को उन्होंने अपनी रचनाओं में उठाया है।

उन्हें ज़िन्दगी में गहरा विश्वास है और वे जीवन रस की अंतिम बूँद तक का अनुभव करना चाहते हैं। वहीं उनके व्यंग्य की धार इतनी तेज है कि वह पाठक के मन पर गहरी चोट कर जाती है। उनकी लेखन प्रक्रिया अन्य लेखकों से कुछ अलग है। इस शोधपत्र में शुक्ल जी की व्यंग्यपरक रचनाओं के विविध आयामों का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

शुक्ल जी ने 'राग दरबारी', 'मकान', सूनी घाटी का सूरज ','पहला पड़ाव' और 'अज्ञातवास' जैसे उपन्यासों सहित 'एक नया हितोपदेश ', ' स्वामी से भी ज्यादा स्वामिभक्त', 'निर्धन पड़ोसी की कथा', 'गिरफ़्तारी' आदि कहानियों में लोगों के आर्थिक शोषण का व्यंग्यात्मक चित्रण किया है।

शुक्ल जी के सम्पूर्ण साहित्य विधा में सामाजिक स्थितियों पर हुए व्यंग्य को केन्द्र में रखा गया है। इसके अन्तर्गत वर्ग एवं वर्ण व्यवस्था , बदलते सामाजिक-पारिवारिक सम्बन्ध, दिशाहीन युवावर्ग, विवाह सम्बन्धी सामाजिक दृष्टिकोण , मूल्यों

का विघटन, नारी जीवन की विसंगतियाँ, बुद्धिजीवी पूंजीपति समाजसेवक, अपराधी वर्ग आदि सन्दर्भों की चर्चा की गयी है।

श्रीलाल शुक्ल के साहित्य में आर्थिक विसंगतियों को केन्द्र में रखा गया है।

प्रशासनिक भ्रष्टाचार एवं निष्क्रियता अफ़सरशाही , पुलिस तन्त्र , भ्रष्ट एवं स्वार्थलोलुप नेतृत्व, वोट की राजनीति एवं चुनाव, प्रजातन्त्र की विसंगतियाँ, दल बदल, कुर्सी की लालसा, राजनीति और अपराध, सरकारी नीतियों सम्बन्धी विसंगतियों के बारे में शुक्ल जी की व्यंग्य रचनाओं का मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है। श्रीलाल शुक्ल जी के साहित्य में धर्म एवं संस्कृति के विविध पहलुओं पर भी व्यंग्य किया गया है।

व्यंग्य हमारे यथार्थ की ऐसी अभिव्यक्ति है जिसमें व्यक्ति एवं समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं,कथनी और करनी के बीच के अन्तर को व्यंग्य एक सही दिशा में हमारे सामने लाता है।यह बात सही है कि वह कभी कभी आक्रामक भी होता है,लेकिन इसमें भी नैतिक और सामाजिक हितों का उद्देश्य शामिल होता है। इस संदर्भ में प्रोफेसर कांतिकुमार जैन का कथन है --"व्यंग्य की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी तात्कालिकता और संदर्भ से उसका लगाव है , जो आलोचक शाश्वत साहित्य की बात करते है, उनकी दृष्टि से व्यंग्य पत्रकारिता के दर्जे की वस्तु मान लि या गया है।उन्हें लगता है कि साहित्यकार व्यंग्य का उपयोग चटखारेबाजी के लिए भले ही कर ले, कभी गम्भीर लक्ष्य के लिए उसका उपयोग नहीं किया जा सकता।"[1]

श्रीलाल शुक्ल अपनी विशिष्ट शैली में व्यंग्य -विधा को प्रस्तुत करने के लिए चर्चित हैं। उनके पास चोट करने वाली सक्षम भाषा और आर-पार देख सकने वाली तेज दृष्टि है। उनके बारे में रघुवीर सहाय ने कहा है, "श्रीलाल को अगर हिन्दी के पानी-पाड़ों ने श्रेष्ठ साहित्य के चौके में नहीं बैठाया तो वह हँसोड़ बिरादरी में भी नहीं दाखिल हुए। उनका व्यक्तित्व ग्राम-शोभा के वर्णन से यहाँ तक विकृति की सृष्टि नहीं, उसकी खोज करता रहा है, इस मामले में वह अपने समकालीन परसाई से काफी भिन्न है। जोकि टूटने योग्य है, उसे तोड़ ही डालने के कायल हैं और शरद जोशी या रवीन्द्रनाथ त्यागी से तो बहुत ही भिन्न हैं जिन्होंने चुकी हुई चीजों पर हँसने -हँसाने दक्षता अर्जित की है।"[2]

प्रेमचंद और निराला की तरह श्रीलाल शुक्ल भी टूटे मूल्यों की स्थापना के लिए प्रेरित करते हैं। साहित्य और समाज की विसंगतियों को उन्होंने उजागर किया है। साहित्य के बारे में एक उदाहरण दृष्टव्य है---

"दरबार में हजारों कवि और लेखक-नौकर थे। वे दिन-रात साहित्य लिखते रहते और साहित्य फल भले ही न रहा हो , फूल बड़े जोर से रहा था फूलने की एक मिसाल यह है कि एक पड़ोसी बादशाह ने मुल्क पर हमला किया तो उस मौके पर लिखी जाने वाली कविताओं से साहित्य इतना फूला, इतना फूला कि कहीं-कहीं भक्क से फूट गया। जहाँपनाह की हुकू मत का एक पूरा का पूरा महकमा साहित्य लिखने के लिए था। साहित्य एक तरह से हुकूमत बन गया था।"[3]

शुक्लजी का उपन्यास 'राग दरबारी' हिन्दी का श्रेष्ठ व्यंग्य उपन्यास माना गया है। उपन्यास में व्यंग्य के माध्यम से देश की वर्तमान स्थिति का वर्णन किया गया है। शिवपालगंज एक गाँव नहीं , पूरे भारत का प्रतीक है। इसमें पूरे देश के परिवेश में व्याप्त विसंगतियों का विश्लेषण है। स्वतंत्रता के बाद की कर्त्तव्यहीनता, गैरजिम्मेदारी, सत्ता हथियाने के लिए किये गये साम , दाम, दंड और भेद, सभी क्रिया-कलापों की पोल, सीधी-सीधी भाषा में खोल कर रख दी गयी है। चालाकी, मक्कारी और फरेब सब यहाँ शिवपालगंज में मौजूद है। "यहाँ नेता का काम सिर्फ रात -दिन भाषण देना है , विश्वविद्यालय अस्तबल के समकक्ष हैं , प्रोफेसर और प्रिंसीपल भाड़े के टट्टू हैं जो अपनी नौकरी बचाने के लिए कुछ भी करने को तैयार हैं। "[4] उपन्यास का नायक रंगनाथ इतिहास में एम०ए० करके रिसर्च आरंभ करता है, उसी के शब्दों में 'घास खोद रहा हूँ।' "उसे शिवपालगंज के बारे में ज्ञात होता है कि , जो कहीं नहीं है, वह यहाँ है और जो यहाँ नहीं है , वह कहीं नहीं है।"[5] देश की शिक्षा पद्धति पर व्यंग्य कसते हुए लेखक कहते हैं-"वर्तमान शिक्षा पद्धति रास्ते में पड़ी हुई कुतिया है जिसे कोई लात मार सकता है।"[6] गाँव की राजनीति के कुशल खिलाड़ी वैद्य जी हैं, वे गाँव के सब कुछ हैं। वे गाँव की कई संस्थाओं के मैनेजर हैं। "कॉलेज की यह खुशकिस्मती थी कि वैद्य जी मैनेजर हैं, क्योंकि ऐसा मैनेजर पूरे मुल्क में न मिलेगा। सीधे के लिए बिल्कुल सीधे हैं और हरामी के लिए खानदानी हरामी। "[7] भाई-भतीजावाद का आलम भी उपन्यास में देखने लायक हैं। बड़े-बड़े पदों पर आसीन सभी अपने-अपने आदमियों को ही काम पर लगाए हुए है।

कॉलेज के अधिकतर शिक्षक वैद्य जी और प्रिंसीपल साहब के नाते -रिश्तेदार है,इनके अलावा अन्य किसी और के लिए कॉलेज में कोई रिक्तियां ही नहीं है।

'राग दरबारी' उपन्यास का एक पात्र गयादीन कहता है , "जो जहाँ है अपनी जगह गोह की तरह चिपका बैठा है। टस -से-मस नहीं होता। चाहे जितना कोंचो , चाहे जितना दुरदुराओं, वह अपनी जगह चिपका रहेगा और जितने नाते -रिश्तेदार हैं, सब उसकी दुम के सहारे सड़ासड़ चढ़ते हुए ऊपर तक चले जायेंगे। "[8] यहाँ अच्छे और ऊंचे विचार आदमी के गधेपन को साबित करते है। विसंगति को चारों ओर से उजागर करता हुआ यह उपन्यास दृष्टिहीनता पर आक्रमण करता है।

शिवकुमार मिश्र ने श्रीलाल शुक्ल के इस उपन्यास के बारे में टिप्पणी करते हुए कहा हैं-"किन्तु श्रीलाल शुक्ल के यहाँ गाँवों के प्रति ऐसा कोई संवेदनात्मक लगाव नहीं दिखाई पडता । राग दरबारी आजादी के बाद गाँवों की सतह पर बजबजा रही विकृति का आख्यान है जो इतना विरूप और वीभत्स है कि असहनीय है। प्रगतिशील सोच वाले किसी यर्थाथनिष्ठ लेखक से एक प्रबुद्ध पाठक की यह अपेक्षा जायज़ है कि वह इस असहनीयता के खिलाफ आलोचनात्मक रूख अपनाते हुए , उसके जिम्मेदार व्यक्ति , संस्थाओं तथा सत्ता का पर्दाफाश करते हुए ऐसी ताकतों से भी उसका सा क्षात्कार कराये जो उस विकृति में जीते हुए भी उसके खिलाफ संघर्षरत है।"[9]

यह कहना असंगत नहीं होगा कि विकृतियों से पूर्ण इस युग में भोग प्रति, राग-दरबारी में संवेदना दिखाई नहीं पड़ती। व्यंग्य की मार पीड़क और पीड़ित सभी व्यक्ति के ऊपर समान रूप से पड़ती है। व्यंग्य ऊपर से कितना ही अक्रामक क्यों न हो, उसके अंतर में करुणा और मानवीय संवेदना की भावना होती है। "श्रीलाल शुक्ल की यथार्थ की पकड़, उनकी पैनी दृष्टि , उनकी धारदार शैली , हम इन सबका आदर करते हैं , परन्तु उनसे यह अपेक्षा भी रखते हैं कि वे अपनी यथार्थ दृष्टि को उस मानवीय संवेदना से जोड़कर अपनी रचनाओं में अर्थवान बनायें जो अपने बाद की यथार्थवाद रचनाकार पीढ़ी को प्रेमचंद की सबसे बड़ी वसीयत रही है। "[10] फिर भी इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि अपनी शैली , शिल्प और कथ्य में 'राग-दरबारी' एक अनूठा उपन्यास है। देश में व्याप्त विसंगतियों पर दसों दिशाओं से सीधा प्रहार भी कम साहस का काम नहीं है। "राग दरबारी के पूर्व व्यंग्य उपन्यासों का व्यंग्य आवरण की अपेक्षा रखता था। हरिशंकर परसाई ने 'रानी नागफनी की कहानी' में फैंटेसी का सहारा लिया था और राधाकृष्ण को सपनों की सनसनाहट से गुज रना पड़ा। काल्पनिक प्रसंगों,

चूहों और गधों के बहाने सामयिक परिदृश्य पर व्यंग्य करने का युग 'राग दरबारी' के साथ समाप्त हो गया। ॥"[11]

'अंगद का पाँव ' व 'यहाँ से वहाँ ' श्रीलाल शुक्ल की अन्य व्यंग्य रचनाएँ हैं। अपनी पुस्तक 'यहाँ से वहाँ' में उन्होंने वर्तमान शिक्षा व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य करते हुए लिखते है "विद्यार्थियों का एक गुट , एक ग्रेजुएट द्वारा प्रचारित कुंजियों की अंग्रेजी, कुशवाहाकान्त और प्यारेलाल 'आवारा' की हिन्दी और देशज व्यक्तित्व में काली चमड़ी की तरह चिपकी स्थानीय ग्रामीण बोली का भावात्मक समन्वय पे श कर रहा है। बुजुर्गों के चेहरों पर विद्यार्थियों की इस अभिजात्यहीनता के कारण नफरत की धूल-सी चढ़ रही है।"[12] समाज में व्याप्त विसंगतियों पर श्रीलाल शुक्ल ने अपने ढंग से प्रहार किया है। वे सधी हुई भाषा में सीधा प्रहार करते हैं।

व्यंग्य की कचोट के साथ -साथ करुणा और हास्य का पुट अपनी रचनाओं में विद्यमान करना ही श्रीलाल शुक्ल की विशेषता है। इन्होंने भी राजनीति और अर्थनीति के खोखलेपन पर सशक्त व्यंग्य किया है। उनके व्यंग्य -लेखन में तीखी मार के साथ -साथ रोचकता भी है। श्रीलाल शुक्ल ने ही व्यंग्य को कलात्मक शिल्प प्रदा न किया है। उन्होंने अपने व्यंग्य -लेखन में साहित्यिक क्षेत्र में व्यास विसंगतियों को भी अधिक महत्त्व दिया है। श्रीलाल शुक्ल के पास सक्षम भाषा एवं तीखी चोट करने वाली प्रहारक शक्ति है।

श्रीलाल शुक्ल ने साहित्य की सभी विधाओं में साहित्य के मान्य विधागत साँचों को तोड़ा है। वे जनभावनाओं में बदलाव में परिवर्तन लाने के लिए पौराणिक विश्वासों पर भी आए अतः उन्होंने उसका एक तरह प्रस्तुतिकरण किया कि पाठक उनपर फिर सोचने को विवश हो जाए।

व्यंग्यकार जन-साधारण को सचेत करने के लिए व्यंग्य लिखता है। वह लोंगों की संवेदनाओं को के न्द्र में रखता है। व्यंग्यकार आवश्यकता पड़ने पर स्वयं को भी नहीं छोड़ता। श्रीलाल शुक्ल ऐसे ही श्रेष्ठ व्यंग्यकार है जिन्होंने अपनी रचनाओं में तटस्थ होकर सामाजिक विसंगतियों एवं विद्रूपताओं उजागर किया है। दरअसल दुनिया में निरन्तर बदलाव के कारण एक बेचैनी , एक व्या पक असंतोष उनके साहित्य का मुख्य स्वर है।

श्रीलाल शुक्ल जितने बड़े लेखक हैं, उससे कहीं अधिक बड़े मनुष्य। बड़ा लेखक होने की आवश्यक योग्यता मेरी समझ से बड़ा मनुष्य होना ही है। जो व्यक्ति मानवीय नहीं होगा, वह सामाजिक कैसे होगा ? और, सामाजिक नहीं होगा, तो साहित्य कैसे रचेगा? हिन्दी में वैसे उस तरह के लेखकों की कमी नहीं है, जिन्होंने लेखक के रूप में तो अपनी बड़ी इमारत खड़ी कर ली है, पर व्यक्ति के रूप में वे बहुत नीचे हैं। उनके लेखन से उनके व्यक्तित्व, आहार-व्यवहार, मान्यताएँ आदि कहीं मेल नहीं खातीं। श्रीलाल शुक्ल इस मामले में बिल्कुल भिन्न हैं। सम्भव है कि हिन्दी में उनके जैसे चन्द लेखक और हों, पर यहाँ हमें श्रीलाल जी की बात करनी है, जिन्होंने साहित्य-सृजन में प्रबन्धन-क्रम को कभी महत्त्व नहीं दिया।

श्रीलाल शुक्ल के स्थापना-काल और घनघोर लेखन का जो दौर था, वह हिन्दी साहित्य में कई मायनों में विचित्र था। सन् 1945 की अपनी कहानी बताते हुए वे अपनी एक व्यंग्यात्मक कविता की चर्चा करते हैं, जो उन्होंने बीस वर्ष की आयु में लिखी थी। वे खुद अपने सक्रिय लेखन का शुभारम्भ सन् 1954 से मान रहे हैं, अर्थात् स्वाधीनता प्राप्ति के सात व र्ष बाद। तब तक देश आजाद हो गया, कुछ चालाक शिक्षित और कुछ प्रशिक्षित चालाक स्वाधीन भारत की व्यवस्था में अपने लिए कुर्सी, या थोड़ी-सी जगह पा लेने के उद्योग में लगे हुए थे; कम-से-कम कुर्सी के आस-पास भी बने रहने की जुगत बैठा रहे थे। साहित्य का आँगन इस वृत्ति से बचा नहीं रहा था। स्वाधीनतापूर्व के समय जिस साहित्य ने फिरंगी -वर्चस्व को धूल चटा दिया था, स्वातन्त्र्योत्तर काल में पाँव स्थिर करने वाले कई साहित्यजीवी -साहित्यभोगी उसी भाषा-साहित्य के आँगन में धन्धा और प्रबन्धन की विद्यापीठ स्थापित कर ली। चुनावी घोषणा पत्र की तरह साहित्य में भी घोषणाएँ होने लगीं। साहित्य को आत्म -स्थापन और आत्म-प्रचार का माध्यम बनाया जाने लगा था। बदकिस्मती से सक्रिय लेखन में श्रीलाल शुक्ल का आगमन उसी दौर में हुआ और उन तमाम विसंगतियों को झेलते हुए, उन्हें अपनी अलग छवि दृढ़ करने की मशक्कत करनी पड़ी। हिन्दी कहानी के मद्देनजर तो बीसवीं शताब्दी का छठा दशक कई तरह से चर्चा में है।

स्वातन्त्र्योत्तर काल के प्राथमिक दो दशक (सन् 1947-1967) भारतीय लोक-तन्त्र के लिए विकराल हलचल का समय है। श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास--'सूनी घाटी का सूरज', 'अज्ञातवास', 'रागदरबारी' और 'अंगद का पाँव' (व्यंग्य संग्रह) इसी दौरान लिखे गए। इन दो दशकों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और साहित्यिक परिदृश्य का

जैसा चेहरा श्रीलाल शुक्ल के समक्ष था , उसके सामने साहित्य में व्यंग्य से बड़ा हथियार कुछ नहीं हो सकता था। सत्ता के गलियारे में भटक रहे बुद्धिजीवियों; वणिक् धर्म अपनाकर आत्म विज्ञापन , और आत्मोन्नयन के प्रबन्धन में लिप्त हो गए साहित्यसेवियों को देखकर निश्चय ही श्रीलाल शुक्ल के समक्ष सन्नाटे की स्थिति खड़ी हो गई होगी। आजादी की खुशी, उन्माद और उल्लास के आनन्द में विभोर रहने के बावजूद सन् 1947 से 1967 तक के अन्तराल में देश का विभाजन, सीमा संघर्ष, प्राकृतिक आपदाओं , विप्लवों, दलबन्दियों, हत्याओं, बलात्कारों, दंगों, तानाशाही और शासकीय बेहयाई का जो ताण्डव मचा उससे मानवता शर्मसार हुई। मुक्तिकामी भारतीय जनता ने इन तमाम विसंगतियों के समक्ष खड़े होकर अनाज-पानी के देवताओं और भारत के नव निर्वाचित भाग्य विधाताओं को अपनी क्षमता का परिचय दिया। श्रीलाल शुक्ल के साहित्य लिखने की मजबूरी ये ही स्थितियाँ बन। और , इन परिस्थितियों के बीच साहित्य का धन्धा करना उनसे सम्भव नहीं हुआ। सम्भवतः यही कारण हो कि उन्होंने सघनता और सक्रियता से कहानी लिखकर नई कहानी अथवा समान्तर कहानी के विद्यालयों में शामिल होने की बजाए व्यंग्य का मार्ग अपनाया।

व्यंग्य श्रीलाल शुक्ल की अभिव्यक्ति का मूल धर्म है , यह उनके उपन्यासों में भी बखूबी दिखता है। उनके अभ्यासकाल की रचनाओं में भी व्यंग्य के ती खे स्वर ही दिखाई देते हैं। अपनी युवावस्था के आवेशपूर्ण क्षण में ही उन्होंने देश की जैसी दशा देखी थी, उसमें सम्भवतः अनुमान कर लिया था कि इस देश में आम नागरिक के जगने से अधिक आवश्यक है बुद्धिजीवियों का जगना। और , बुद्धिजीवियों को जगाने के लिए सहज रास्ता सही नहीं होगा, व्यंग्य से ही उन्हें सही तरीके से जगाया जा सकता है।

ऐसे विराट व्यक्तित्व, उदारतम स्वभाव के महान लेखक के पूरे साहित्य पर पूरी किताब का लिख जाना भी कम पड़ेगा। यहाँ उनकी टिप्पणियों के एक संग्रह पर बात करते हैं।

खबरों की जुगाली उनकी छियालीस व्यंग्यात्म क टिप्पणियों का ताजा -तरीन संकलन है। ये टिप्पणियाँ वर्ष 2003-2005 में 'इण्डिया टुडे' (हिन्दी) पत्रिका के पाक्षिक स्तम्भ में प्रकाशित हुई थी।

दस उपन्यास, चार कहानी संग्रह , एक साक्षात्कार संग्रह , नौ व्यंग्य संग्रह , एक आलोचना पुस्तक , दो विनिबन्ध , चार अनूदित पु स्तक, एक सम्पादित पुस्तक के रचनाकार श्रीलाल शुक्ल का जितना विराट लेखकीय व्यक्तित्व है।

उनकी प्रसिद्ध कृति राग दरबारी को पाठकों के बीच रामचरित मानस और गोदान की तरह प्रशस्ति मिली। उस पुस्तक का मूल स्वर व्यंग्य ही है। उसे व्यंग्य - लेखन की दिग्दर्शिका कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी ।

श्रीलाल जी की पहली पुस्तक सूनीघाटी का सूरज उपन्यास सन् 1957 में प्रकाशित हुआ। सन् 1968 में रागदरबारी का प्रकाशन हुआ। तत्कालीन घटनाओं और परिस्थितियों पर चिन्तनशील लेखक का क्षणिक , मगर जागरूक टिप्पणी है। इसे प्रस्तुत करते हुए लेखक ने साफ-साफ कहा है कि यह एक तरह की जुगाली है , पर निरुद्देश्य नहीं है, इनमें दर्ज शंकाओं , सम्भावनाओं, प्रश्नों का जिक्र लेखक ने पाठकों की तरफ से किया है। पुस्तक के आच्छादप पृष्ठ पर सही लिखा गया है कि ये रचनाएँ भारतीय लोक -तन्त्र के धब्बों , जख्मों, अन्तर्विरोधों और गड्ढों का आख्यान प्रस्तुत करती हैं। हमारे विकास के मॉडल , चुनाव, नौकरशाही सांस्कृतिक क्षरण , विदेश नीति, आर्थिक नीति आदि अनेक जरूरी मुद्दों की व्यंग्य -विनोद से सम्पन्न भाषा में तल्ख और गम्भीर पड़ताल है।

इस आलोक में उन्होंने मुफलिसी , अशिक्षा, बेरोजगारी और ऐसी ही अनेक दुर्गतियों से जूझते भारतीय समाज के सुख -दुख, राग-विराग के प्रति सजगता और संवेदना रखी है। अपने लेखन के हर मौके पर उन्हें पाठकों की रुचि और अनुभव की गहराइयों की चिन्ता रही है। जो साहित्य उदात्त संवेदनाओं को पनपने न दे , अनुभूति-जगत की ऊपरी सतह खुर चकर ही हरी -हरी फसल उगाने की कोशिश करे , उसे वे घटिया साहित्य मानते हैं, पाठक वर्ग और समाज के लिए अहितकर मानते हैं।

इस संकलन की टिप्पणियों में वे अपने पूर्व निर्धारित छवि के पार बेशक नहीं गए, पर इसलिए यह कहना जायज नहीं होगा कि इनमें उनकी उक्त धारणाओं की पुष्टि नहीं होती। उन्होंने जो कुछ लिखा , सदैव की तरह अपनी मान्यताओं और स्वानुभूति से निर्धारित मानदण्डों के अनुकूल ही लिखा। इक्कीसवी सदी के शुभद नारों का तुमुल कोलाहल भी थोथे साबित हुए। विकास प्रक्रिया के नाटकीय मिजाज से सब कुछ चल रहा था। जिस दौर में ये रचनाएँ लिखी गईं और प्रकाशित होकर पाठकों के मन-मिजाज में समायोजित हुईं , वह दौर पूरी तरह से अराजकता की हद पार का दौर

था। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, बौद्धिक, व्यापारिक हर संकाय से नैतिक मूल्य का लोप चुका था।

अपने वक्तव्यों के अनुसार श्रीलाल शुक्ल साहित्य से हमेशा को ई बड़ी उम्मीद नहीं रखते, कोई बहुत बड़ी अपेक्षा नहीं रखते। वाकई, यदि ऐसा होता, तो उनकी इन जुगालियों से देश में बहुत कुछ परिवर्तन हो जाता। व्यंग्य वाकई प्रबुद्ध मस्तिष्क वाले पाठकों की प्रतीक्षा करता है।

बहुपठित और विज्ञ होने के साथ -साथ नागरिक संवेदना से ओत -प्रोत लेखक श्रीलाल शुक्ल ने हर जगह अपने जनसम्बन्ध और नागरिक चिन्ता का संकेत दिया है। छोटे-छोटे विषय की व्याख्या करते वक्त उन्होंने विराट लक्ष्य की ओर संकेत किया है।

संदर्भग्रंथ सूची:-

1. हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई/ डॉ.मदालसा व्यास
2. यहाँ से वहाँ/श्रीलाल शुक्ल/परिचय,रघुवीर सहाय के लेख से
3. यहाँ से वहां/ श्रीलाल शुक्ल/ पृष्ठ 35
4. राग दरबारी/श्रीलाल शुक्ल/पृष्ठ 9
5. राग दरबारी/श्रीलाल शुक्ल/पृष्ठ 9
6. राग दरबारी/श्रीलाल शुक्ल/पृष्ठ 13
7. राग दरबारी/श्रीलाल शुक्ल/पृष्ठ 35
8. राग दरबारी/ श्रीलाल शुक्ल/ पृष्ठ 116
9. प्रेमचंद:विरासत का सवाल / शिवकुमार मिश्र/पृष्ठ 138
10. प्रेमचंद:विरासत का सवाल / शिवकुमार मिश्र/140
11. हिन्दी का स्वतन्त्रयोत्तर हास्य और व्यंग्य/ बालेन्द्रूशेखर तिवारी/157
12. यहाँ से वहाँ/ श्रीलाल शुक्ल/ पृष्ठ 78

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

पौराणिक साहित्य में भारतवर्ष

डॉ0 अजित कुमार जैन
एसो0 प्रोफेसर एवम् अध्यक्ष,
संस्कृत विभाग, एस0वी0 कॉलेज,
अलीगढ़, (उ0प्र0)

संस्कृत वाङ्मय में पुराण साहित्य काफी विस्तृत है। पुराणों की भाषा सरल संस्कृत है। वर्णन की शैली अत्यन्त रोचक और मनोहारी है। कहा जा सकता है कि पुराण में मूल कथ्य के रूप में सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय व प्राचीन राजाओं की वंशावली और इतिहास प्राप्य है। कुल पुराण अठारह हैं–

(1) विष्णु पुराण, (2) पद्म पुराण (3) ब्रह्म पुराण (4) शिव पुराण (5) भागवत पुराण (6) नारद पुराण (7) अग्नि पुराण (8) मार्कण्डेय पुराण (9) ब्रह्मवैवर्त पुराण (10) लिंग पुराण (11) वराह पुराण (12) स्कन्द पुराण (13) वामन पुराण (14) कूर्म पुराण (15) मत्स्य पुराण (16) गरुड़ पुराण (17) ब्रह्माण्ड पुराण (18) भविष्य पुराण।

इनके अतिरिक्त उपपुराण भी अठारह हैं–

(1) सनत्कुमार (2) नारसिंह (3) नारदीय (4) शिव (5) दुर्वासा (6) कपिल (7) मानव (8) औशनर (9) वरुण (10) कालि(11) शांब (12) नन्दासौ (13) पाराशर (14) आदित्य (15) माहेश्वर (16) भार्गव (17) वाशिष्ठ (18) जय।

भारतवर्ष के प्राचीन सात महाद्वीप– जम्बू प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कन नाम से जाने जाते हैं।

पुराण साहित्य में प्राप्य है कि जम्बूद्वीप के अधिपति आग्नीध्र, प्लक्ष के अधिपति इध्मजिह्व, शाल्मलि द्वीप के अधिपति यज्ञबाहु, कुशद्वीप के अधिपति हिरण्यरेता, क्रौंच द्वीप के अधिपति घृत, शाकद्वीप के मेधातिथि और पुष्कर द्वीप के अधिपति वीति होत्र जाने गये।1

श्रीमज्जिन सेन आचार्य प्रणीत आदि पुराण के अनुसार नाभिराय के समय में अजनाभवर्ष के नाम से जम्बूद्वीप का यह वर्तमान क्षेत्र विख्यात था। इनकी गणना विष्णु भगवान के चौबीस अवतारों में भी की जाती है। भगवान आदिनाथ (ऋषभदेव) के सौ पुत्र हुए। जिनमें ज्येष्ठ भरत थे। उनकी अत्यन्त लोकप्रियता हुई। समस्त सद्गुणों से सम्पन्न हुए। उनके सद्गुणों के प्रभाव से ही 'अजनाभवर्ष' का नाम भारतवर्ष हुआ। यह निर्विवाद स्पष्ट एवम् सुस्थापित तथ्य है।2

''ऋषभाद् भरतोजज्ञे ज्येष्ठः पुत्रशतस्य सः।

ततश्च भारतं वर्षम् एतल्लोकेषु गीयते।''

यह काव्य विष्णुपुराण 2/1/28, 32 में प्राप्त है। तात्पर्य यह है कि ऋषभजी से भरतजी का जन्म जो इनके सौ पुत्रों में ज्येष्ठ थे। तभी से इनके नाम के आधार से इस मध्यलोक में हिमवर्ष या अजनाभवर्ष का नाम भारतवर्ष के रूप में जाना।

इसी तथ्य के प्रमाण हेतु यह काव्य उद्धृत किया जा रहा है[3]–

''ऋषभो मरुदेव्यां च ऋषभाद् भारतोऽभवत्

भरताद् भारतं वर्षं भरतात् सुमतिस्त्वभूत।

पुनश्च यह दृष्टव्य है[4]–

''हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्।

तस्मात् तद् भारतं वर्ष तस्य नाम्ना विदुर्बुध।''

मार्कण्डेय पुराण के इस उद्धरण से भी यह तथ्य पुनः प्रमाणित हो रहा है कि ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम से भारतवर्ष का नाम चल पड़ा–

''हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ

तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मन।

नारसिंह पुराण में उल्लेख है[6]–

''ऋषभाद्व भरतो भरतेन चिरकालं धर्मेण पालितत्वादिदं भारतं वर्षमभूत्।''

वृहत् नारदीय पुराण पूर्वभाग में यह काव्य सुलभ है[7]–

आसीत् पुरा मुनिश्रेष्ठ भरतो नाम भूपतिः।

आर्षभो यस्य नाम्नेदं भारतं खण्डमुच्यते।।[6]

ब्राह्मीसंहिता पूर्वभाग में यह उल्लेख मिलता है–

''भरताय यः पित्रा दत्ता प्रातिष्ठता वनम्।

ततश्च भारतं वर्षमेतल्लोकेषु गीयते।।''

यद्यपि यहाँ मतान्तर के रूप में कथनीय है कि दुष्यन्त और शकुन्तला पुत्र भरत के नाम पर भारतवर्ष नाम हुआ। किन्तु यहाँ मेरा अभिमत है कि कालिदास कृत अभिज्ञानशाकुन्तलम् या अन्य इस विषयक साहित्य में कहीं कोई प्रामाणिक सन्दर्भ प्राप्त नहीं है।

कुछ यह भी मतान्तर है कि दशरथ पुत्र भरत के नाम से भारतवर्ष गिना गया। किन्तु ऐसा कोई प्रामाणिक सन्दर्भ न होने से प्रभावी नहीं है।

सारतः, यह सुस्पष्ट एवम् निर्विवाद रूप से और तथ्य है कि भारतवर्ष का नाम ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत के नाम से ही प्रारम्भ हुआ और अनवरत रूप से जाना जा रहा है।

संदर्भ :

1. श्रीमद्भागवत्– 5/1/33, वायुपुराण– 33/3–7, देवीाागवत 8/4/9–28, कूर्मपुराण– अध्याय–8, अ0प0/30–40 मार्कण्डेय पुराण– 53/15–19, शिवपुराण ज्ञानसंहिता– 47, स्कन्दमहापुराण–माहेश्वरखण्ड/कुमारिकाखण्ड अ0 31, वराहपुराण– अ0 74
2. श्रीमद्भागवत– 5/7/3– ''अजनाभं नमितर्द्ध भारतमिति''
3. अग्निपुराण– 107/11–12
4. वायुपुराण– 33/52, ब्रह्माण्डपुराण– 2/14/62
5. मार्कण्डेय पुराण– 53/39–41
6. नरसिंह पुराण– 30/7
7. वृहन्नारदीय पुराण– पूर्वभाग– 48/5
8. ब्राह्मीसंहिता, पूर्वभाग– 40/41

उत्तर शती के हिंदी उपन्यासों में दलित चेतना

डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कूबा पी0जी0 कॉलेज,
दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़

उत्तर शती के उपन्यास लेखन का फलक विषय एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से जितना व्यापक है, उतनाही वह विविधतापूर्ण भी है। उत्तर शती के काल प्रवाह में उपन्यासों के द्वारा मानव जीवन की निजी संवेदनाओं से लेकर पर्यावरण तक के तमाम पहलुओं की दखल ली गयी है। बावजूद इसके उत्तर शती का रचना समय 'स्त्री' तथा 'दलित' इन दो हाशिए के बिंदुओ को साहित्य जगत की मुख्यधारा में ला खड़ा करने में सफल रहा है। निश्चितही इसके पीछे स्त्री तथा दलित रचनाकारों की भूमिका अहम रही है। परिणाम स्वरूप आज 'स्त्री' और 'दलित' इन दो विषयों में लेखक, पाठक तथा आलोचकों को नये और अलग दृष्टिकोण से सोच विचार करने के लिए विवश किया है।

सन् 1970 के दशक के आस–पास मराठी साहित्य में दलित लेखकों द्वारा लिखित विद्रोही तथा आत्मकथनात्मक साहित्य का विस्फोट हुआ और उसीसे प्रेरणा लेकर भारतीय साहित्य में 'दलित विमर्श' विगत तीन दशकों की सृजन यात्रा का सफर तय करने के बाद अपनी स्वतंत्र पहचान कायम करने में सफल साबित हुआ है। हालांकि आज भी हिंदी का दलित साहित्य मराठी की तुलना में प्रौढ और परिपूर्ण नहीं बना है। परंतु यह साहित्य उपन्यास, आत्मकथा, कहानी, कविता तथा वैचारिकी के रूप में निरंतर विकासमान बनने की अवस्था में है।

आज हम हिंदी में दलित साहित्य की जब चर्चा करते हैं तब इस साहित्य के दो पहलू हमारे सामने आते हैं– एक 'दलित विमर्श' और दूसरा 'दलित चेतना'। 'दलित विमर्श' पर टिप्पणी करते हुए तेजसिंह कहते हैं– ''हिंदी साहित्य में दलित साहित्य के प्रादुर्भाव से पहले दलित चेतना नाम की कोई अवधारणा मौजूद नहीं थी। पर उसमें दलित विमर्श की प्रक्रिया अवश्य मौजूद थी जो निश्चित रूप से भारतीय जनजागरण की चेतना का परिणाम है।''[1] वे आगे कहते हैं– ''भारतीय नवजागरण के व्यापक प्रभाव तथा तत्कालीन सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक दबावों के चलते कुछ सवर्ण साहित्यकारों ने दलितों के प्रति अपनी चिंता प्रकट करते हुए दलितों की सामाजिक–आर्थिक और धार्मिक समस्याओं पर अपना ध्यान केंद्रित किया। इस तरह हिंदी उपन्यासों में 'दलित विमर्श' की प्रक्रिया शुरू हुई।''[2] इसी प्रकार 'दलित चेतना' की संकल्पना को स्पष्ट करते हुए डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे जी ने कहा है– ''यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि दुनियाभर के संवेदनशील साहित्यकारों की दृष्टि मानवतावादी होती है, फिर दलित चेतना की दृष्टि की विशिष्टता क्या है, तो इसका उत्तर है कि परंपरा में स्थित मानवतावाद आदर्श के स्तर तक ही रहता है, परंतु दलित चेतना का मानवतावाद 'यथार्थ' के स्तर पर, आचरण के स्तर पर क्रियाशील है।''[3] दलित चेतना की संकल्पना यदि हर्बर्ट मार्क्यूस के शब्दों में कहे तो ''यह एक प्रति–सांस्कृतिक चेतना है और इसी लिए विद्रोही भी। इस चेतना की जड़ में भारतीय सामाजिक संरचना है, जो न सिर्फ जातिपर आधारित है, बल्कि इस जाति व्यवस्था को धार्मिक वैधता भी प्राप्त है।''[4] अतः दलित साहित्य में दलित लेखकों द्वारा अभिव्यक्त जीवन की व्यथा, उपेक्षा तथा

आक्रोश पर कमलेश्वरने कहा है– ''दलित साहित्य दलितों के पाँच हजार वर्षों से भोगते आ रहे दुःख, दर्द, अपमान, उपेक्षा के विरुद्ध कलमबद्ध आवाज है।''[5] अतः यह कहा जा सकता है कि ''समकालीन संदर्भ में दलित साहित्य की चर्चा जोरों पर है, दलित आंदोलन का संबंध भी इसके साथ असंदिग्ध रूप से है। यह वर्ग दबाव की जिस पीड़ा को भोगता आ रहा है, उसकी सहज प्रतिक्रिया के रूप में इसका आविर्भाव हुआ है।''[6]

जैसा कि उपर हमने कहा है, 'दलित विमर्श' और 'दलित चेतना' यह दोनों पहलू भिन्न है। हिंदी उपन्यास साहित्य का आरंभ से यदि अवलोकन करे तो पाएंगे कि अधिकतर उपन्यासों में दलित जीवन के विविध आयामों को मात्र अभिव्यक्ति मिली है और कुछेक उपन्यासों में दलित पात्र दीन–हीन रूप में दर्शाए गए हैं। परंतु दलित विमर्श की यह स्थिति उत्तरशती के उपन्यासों में परिवर्तित हुई दिखाई देती है। क्योंकि सत्तर के दशक के बाद मराठी के ''दलित साहित्य के कारण सामाजिक अभिसरण की प्रक्रिया आरंभ हुई और बदलाव की हवा तेज हुई। अनेक दलित लेखक लिखने लगे। समाज के विविध संस्तरो से लेखक पैदा हुए।''[7] परिणाम स्वरूप उनके द्वारा रचित दलित साहित्य में विषमता के प्रति विद्रोह समानता का आग्रह तथा परिवर्तन के लिए हाशिए के लोगों में चेतना भर देनेवाला वैचारिक आंदोलन स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। ''दलित वर्ग में जब शिक्षा का विकास हुआ और उनमें रचनाकार बने, तो उन्होंने अपने दमन और शोषण के लिए इतिहास को खंगालने की कोशिश की।''[8]

''बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दो दशकों में प्रकाशित उपन्यासों ने जिन विषयों को शिद्दत के साथ उठाया है, उससे उनकी क्षमता का पता चलता है। यह मात्र संयोग नहीं है कि उपन्यासकारों ने इतिहास के किसी कालखण्ड या इतिहास की किसी ऐसी घटना को जिसके सूत्रों ने पूरे इतिहास को ही बदल दिया हो, पर अपनी संवेदनशील नजर से उपन्यास लिखे, राजनीतिक के क्षरण के बीच से निकल रही चिन्ता–धारा को उपन्यासकारों ने सकारात्मक दृष्टि से उभारा है, स्त्री–पुरुष सम्बन्धों को नये नजरिये से देखा–परखा है। अपने इतिहास पुरुषों को उनके सम्पूर्ण कार्यकलापों और तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं के साथ भारतीय जन–मानस की आवश्यकताओं को कसौटी पर परखा तथा यह यह भी देखा है कि हमारे पूर्वजों ने कहां ऐसी गलती की है, जिसका परिणाम हम आज तक भोग रहे हैं। यह केवल संयोग मात्र नहीं है कि उपन्यासकारों ने भारी–भरकम विषयों के साथ बहुत ही छोटे लेकिन बहुत प्रभावशाली विषयों को अपने उपन्यासों में लिया है और घटनाओं के साथ उनके घटित होने की स्थितियों की अधिक पड़ताल की है।''[9]

उत्तर शती के समय प्रवाह में 'दलित विमर्श' तथा 'दलित चेतना' को केंद्र में रखकर लिखे गए उपन्यासों में महत्वपूर्ण है– 'धरती धन न अपना' (जगदीशचंद्र), 'मुर्दाधर' (जगदंबाप्रसाद दीक्षित), 'एक टुकड़ा इतिहास' (गोपाल उपाध्याय), 'नाच्यौ बहुत गोपाल' (अमृतलाल नागर), 'यथा प्रस्तावित', 'परिशिष्ट' (गिरिराज किशोर), 'सोनभद्र की राधा' तथा 'जंगली सूअर' (मधुकर सिंह), 'अनारो' (मंजूल भगत) 'कगार की आग (हिमांशू जोशी), 'हजार घोडों का सवार' (यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र'), 'सर्पगंधा' (शैलेश मटियानी), 'शैलूष' (शिवप्रसाद सिंह), 'किस्सा गुलाम' (रमेशचंद्र शाह), 'छप्पर' (जयप्रकाश, कर्दम), 'हिरा परा बाजार में' (सुबोधकुमार श्रीवास्तव), 'धार' (संजीव), 'मोरी की ईट' (मदन दीक्षित), 'उस शहर तक' (तेजिंदर), 'अपनी सलीबें' (नमिता सिंह), 'मुक्तिपर्व' (मोहनदास नैमिशराय), 'जस तस भई सबेर' (सत्यप्रकाश), 'मिट्टी की सौगंध' (प्रेम कपाडिया), 'अल्मा कबूतरी' (मैत्रेयी पुष्पा) आदि।

समग्र उपन्यासों में पिछड़े वर्ग के अंतरंग और बहिरंग पक्ष का विश्वसनियता के साथ उद्घाटन किया गया है। उत्तर शती के इन दलित विमर्शमूलक उपन्यासों की यदि पड़ताल की जाए तो यह स्पष्ट होगा कि यह उपन्यास मात्र दलित वर्ग की व्यथा का बखान ही नहीं करते बल्कि उन लोगों में वैचारिक चेतना भी संचारित करते है। ''अतः पिछड़े वर्ग से यहाँ वह समूचा समाज अभिप्रेत है जो आज की सभ्यता तथा संस्कृति की मुख्यधारा से कटकर किनारों पर पड़ा है और शिक्षा तथा अन्य सभी जरूरी सुविधाओं से वंचित रहकर उपेक्षित शोषित–गृहित जीवन जीने के लिए अभिशप्त है।''[10] उत्तर शती के इन दलिताख्यानमूलक उपन्यासों का समग्रता से यदि अध्ययन किया जाए तो पाएंगे कि यह उपन्यास उस समाज में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक चेतना जगाने का भी काम करते हैं।

उत्तर शती के उपन्यासों में व्यक्त बहुआयामी चेतना पर यदि गौर करे तो सबसे पहले जगदीशचंद्र के 'धरती धन न अपना' की दखल लेना आवश्यक होगा। इस उपन्यास में ''स्वाधीनतापूर्ण पंजाब की ग्रामीण पृष्ठभूमि में दलित जीवन की कथा गहरी संवेदना और कलात्मक तटस्थता के साथ प्रस्तुत की गयी है।''[11] अंत मे 'उपन्यासकार ने सामूहिक शक्ति का भी संकेत दिया है, जो सही नेतृत्व पाकर समाज में क्रांति को जन्म दे सकती है।' इसी प्रकार गोपाल उपाध्याय का उपन्यास 'एक टुकड़ा इतिहास' की चनुली ब्राह्मन युवक से प्रेम विवाह कर दलित जाति के अभिशाप से मुक्ति पाना चाहती है, पर उसका सपना पूरा नहीं होता। इसके बावजूद वह हार नही मानती और अपनी संघर्ष क्षमता का परिचय देती हुई 'चंदा देवी' में रूपांतरित होकर दलित समाज के उत्थान के लिए लड़ती और सवर्ण समाज को चुनौति देती है। शैलेश मटियानी कृत 'सर्पगंधा' का विषय पर्वतीय क्षेत्र का दलित समाज है, जो अपने अधिकार की लड़ाई लड़ रहा है। कबीलाई जीवन जीनेवाली 'नट' जाति को केंद्र में रखकर शिवप्रसाद सिंह ने 'शैलूष' इस उपन्यास का निर्माण किया है। इस उपन्यास में एक पढ़ी–लिखी ब्राहमण युवती सावित्री एक नट युवक से प्रेम विवाह कर नट–पत्नी बनकर उच्चवर्ग के दमन और शोषण से नटी की मुक्ति का संघर्ष छेड देती है। और इस संघर्ष में जीत नट–समाज की ही होती है। रमेशचंद्र शाह के 'किस्सा गुलाम' में दलित जाति में जन्में एक संवेदनशील पात्र कुंदन की कुंठा और विद्रोही भावना का अंकन किया गया है। कुंदन दलित समाज में पैदा हो रही राजनीतिक चेतना और सामाजिक विद्रोह का प्रतिनिधित्व करता है। मधुकर सिंह का उपन्यास 'सोनभद्र की राधा' का नायक गोविंद चमार जाति का सुशिक्षित युवक है। यह जातियता की दशा को कम करने के लिए गाँव की अनुराधा नामक युवती से अंतरजातिय विवाह कर रामलीला मंडली के द्वारा गाँव–गाँव घूमकर सामाजिक समता स्थापित करने का प्रयास करता है। उन्हीं का एक अन्य उपन्यास 'जंगली सूअर' में दलित जाति के लोग अपने हक्क और अधिकारों के लिए 'खेतिहर मजदूर किसान संघ' की स्थापना कर जुल्म के खिलाफ विद्रोह करते हैं। नमिता सिंह ने 'अपनी सलीबें' इस उपन्यास में आई. ए. एस. अफसर दलित युवक ईशू और सवर्ण युवती निलिमा के अंतर्जातिय विवाह की घटना को प्रस्तुत कर जातियता की दीवारें गिरने का संकेत दिया है।

'काशी के मुसलमान बुनकर भी पिछड़े वर्ग की हमारी अवधारणा के अंतर्गत ही आएँगे जिनपर बहुत सार्थक उपन्यास अब्दुल बिस्मिल्लाह ने लिखा है। उनका 'झीना–झीनी–बीनी चदरिया' यह उपन्यास बुनकरों को पूँजपति तथा व्यावसायिकों के आर्थिक शोषण सेमुक्त होने के लिए एकजुट होकर संघर्ष करने की चेतना प्रदान करता है। इसी प्रकार मंजुल भगत की 'अनारों' महानगर में रहते हुए आर्थिक संघर्ष कर अपने परिवार का गुजारा करती है वह कहीं भी लाचार नजर नहीं आती। शताब्दी के अंतिम दशक में दलित वर्ग से जुड़े उपन्यासकारों ने भी अपने उपन्यासों के द्वारा दलित चेतना को सशक्त रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। इनमें

जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर' तथा मोहनदास नैमिशराय का 'मुक्तिपर्व' है। यह दोनों उपन्यास सुशिक्षित दलित युवकों के संगठनों द्वारा अपने समाज में जागृती निर्माण करने की प्रक्रिया का लेखा–जोखा प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार सत्यप्रकाश कृत 'जस तस भई सवेर' तथा प्रेम कपाडिया का 'मिट्ठी की सौगंध' इस दिशा में महत्वपूर्ण उपन्यास माने जाते हैं। इसके अलावा भी ऐसे कई उपन्यास है जिनमें कम अधिक मात्रा में दलित विमर्श तथा दलित चेतना का जिक्र आया है।

अतः कहा जा सकता है ''दलित साहित्य अपने समय से लड़ते हुए आनेवाले कल की बेहत्तर जिंदगी के लिए आशावादी है। तमाम विपरित परिस्थितियों, चुनौतियों के संकट के बावजूद दलित साहित्य ने अपनी उर्जा और सम्भावनाएँ क्षीण नहीं होने दी है।''[12] निश्चितही भविष्य में भी यह साहित्य दलित वर्ग के तमाम पहलुओं पर निष्पक्षता तथा इमानदारी से अपना रचना कर्म निभाएगा इसमें कोई शक नही।

संदर्भ :

1. हंस– सं. राजेंद्र यादव, (जनवरी 2001), पृ.28
2. दलित साहित्य : स्वरूप और संवेदना – डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे, पृ.37
3. दलित प्रसंग – सं. प्रणव बंद्योपाध्याय, पृ.17
4. हंस सं. राजेंद्र यादव, (सितंबर, 1995), पृ.79
5. हंस सं. राजेंद्र यादव, (जनवरी, 1997), पृ.55
6. समकालीन हिंदी उपन्यास – सं. बी. के. अब्दुल जलील, पृ.238
7. समकालीन भारतीय साहित्य – सं. प्रभाकर श्रोत्रिय, (जन. फर. 1998), पृ.138
8. हिंदी साहित्य कोश – सं. शंभुनाथ, पृ.1667
9. समकालीन हिदी उपन्यास – डॉ. सूरज पालीवाल, (भूमिका से)
10. हिंदी उपन्यास का इतिहास – गोपालराय, पृ.396
11. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र – ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.28
12. आजकल – सं. फरहत परबीन (जन. 2015), पृ.58

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

'भूमण्डलीकरण के भंवरजाल मे जड़ से उजड़ते लोगों की करुण कथा'

बृजेश कुमार
शोधार्थी
(म.गां.अं.हिं.वि.वि. वर्धा, महाराष्ट्र)

"भागते लोग सिर्फ पत्तों की तरह बज सकते हैं।" (जल प्रान्तर)

उजड़ना-बसना, बसना-उजड़ना. फिर बसना फिर उजड़ना, घर की तलाश में जीवन भर भटकना,घर में रहते हुए भी घर से बेघर हो जाना, जंगल का शहर बनना, खेत का दफ्तर बनना, गांव का ग्लोबल होना, हमारे समय का सबसे बड़ा सच है। आधुनिक भारत के इतिहास में दो तारीखें सबसे यादगार रहेंगी। एक 15 अगस्त 1947, जब भारत अंग्रेजों की परतंत्रता से मुक्त हुआ। उजाले के इस दिन को या इस दिन के उजाले को कवियों, लेखकों और शायरों ने दाग़-दाग़ उजाला कह कर संबोधित किया। इस दाग़ दार उजाले से उत्पन्न विस्थापन, दुनिया का सबसे बड़ा विस्थापन था। जिसे हिंदी के साहित्यकारों ने कथासाहित्य में पूरी प्रामाणिकता से दर्ज किया है। दूसरी तारीख सन् 1990-91 है, जब भारत में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई और उसने देखते ही देखते पूरे भारत को अपने जादुई हाथों में जकड़ लिया। आज भारत का ऐसा कोई खोना नहीं, जीवन का ऐसा कोई अंग नहीं, जिस पर भूमंडलीकरण का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव न पड़ा हो। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसने भारत के जल,जंगल, जमीन और सांस्कृतिक मूल्यों तक को मथ डाला है और लोगों को अपनी जड़ों से उखाड़ दिया है। इसका सबसे ज्यादा प्रभाव आदिवासी इलाकों में पड़ा है। इसका सीधा संबन्ध विकास की अवधारणा से है। विकास हमारे समय का सबसे भ्रामक शब्द है। भूमंडलीकरण से उत्पन्न विकास और विस्थापन के बीच समानुपातिक संबंध है। तथाकथित विकास(वर्तमान विकास) जैसे-जैसे बढ़ता जाता है विस्थापन की प्रक्रिया भी वैसे-वैसे तीव्र होती जाती है।"विकास का मकसद कृषि अर्थव्यवस्था को नष्ट कर औद्योगिक विकास व्यवस्था को मजबूत बनाना है"[1] विकास की आधुनिक अवधारणा से उपजा विस्थापन, पूर्ववर्ती विस्थापनों से भिन्न, ज्यादा हिंसक और ज्यादा कारुणिक है। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण को अपना हथियार बना कर विचरण करती बहुराष्ट्रीय कंपनियां और मुनाफे की संस्कृति ने बहुत बड़ी संख्या में लोगों को विस्थापित

किया है और उनकी संस्कृतियों को रौंद डाला है। विस्थापन की अवधारणा में सांस्कृतिक पहलू अनिवार्य रूप से जुड़ा होता है। विस्थापित व्यक्ति धीरे-धीरे अपनी संस्कृति से कटता जाता है और कुछ समय बाद वह स्थानापन्न स्थान की संस्कृति का हिस्सा बन जाता है। लेकिन भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने तीसरी दुनिया के देशों पर एक सांस्कृतिक हमला कर दिया है। इसने एक नए प्रकार के विस्थापन 'सांस्कृतिक विस्थापन' को जन्म दिया है। जिसके कारण दुनिया की अनेक संस्कृतियों पर खतरा मंडराने लगा है। यह सांस्कृतिक हमला विस्थापन की अवधारणा में नया अध्याय जोड़ता है। आधुनिक विकास से विस्थापित हुए लोग जीवन भर भटकते रहते हैं। वह कभी भी और कहीं भी अपना स्थाई ठिकाना नहीं बना पाते। अरुंधति राय कहती हैं "लाखों-लाख विस्थापितों का अब कोई वजूद नहीं है। जब इतिहास लिखा जाता है, वो इसमें नहीं होते कुछ तो लगातार तीन-तीन बार और चार-चार बार विस्थापित हुए हैं। बांध के लिए, चांदमारी के इलाके के लिए, दूसरे बांध के लिए, यूरेनियम की खान के लिए, बिजुली परियोजना के लिए। एक बार वो लुढ़कना शुरू करते हैं, तो फिर रुकने की कोई जगह नहीं होती। इसमें से बहुत बड़ी संख्या आखिरकार हमारे बड़े शहरों की परिधि पर झोपड़पट्टियों में खप जाती है जहां यह सस्ते निर्माण मजदूरों की बहुत बड़ी भीड़ में बदल जाती है"[2]

भूमंडलीकरण में ने बहुत बड़े स्तर पर प्रत्यक्ष विस्थापन उत्पन्न किया है। उसने जितना प्रत्यक्ष विस्थापन उत्पन्न किया है, उतना ही अप्रत्यक्ष रूप से भी लोगों को उनकी संस्कृतियों, रीति-रिवाजों, पर्व-त्यौहारों और उनके संस्कारों से उन्हें अलग किया है। 1990 के बाद बहुत तेजी से आदिवासी अपने जल-जंगल-जमीन से बेदखल होते जा रहे हैं। उनकी सांस्कृतिक पहचान खोती जा रही है। उनकी जीवन शैली छिन्न-भिन्न हो गई है। इस प्रक्रिया ने आदिवासियों के साथ-साथ किसान, मजदूर, निम्नमध्य वर्ग, मध्यवर्ग, सबको प्रभावित किया है। अब घर से बेघर होकर भी लोग विस्थापित हुए हैं और घरों में रहते हुए भी लोग घर के अहसास से बेघर हो रहे हैं। यह भूमंडलीकरण का करिश्मा है कि वह जड़ से जुड़े रहने पर भी लोगों को जड़ों से काट देता है। 1990 के दशक के कुछ कहानीकारों ने अपनी कहानियों में भूमंडलीकरण की चालाकियों, बारीकियों, उसके खोखले वादों, नकली आभामण्डल और उसके चक्रव्यूह को बहुत बारीकी से पकड़ा है और उससे उत्पन्न होने वाले विस्थापन एवं सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों को प्रामाणिकता के साथ चित्रित किया है। विस्थापन को अभिव्यक्त करती जिन कहानियों में भूमंडलीकरण आईने की तरह चित्रित हुआ है, उनमें से 1.बुड़ान 2.टापूटोल 3.कागज का जहाज,4.जल प्रान्तर 4.बेला एक्का घर लौट रही हैं 5.भैया एक्सप्रेस 6.राजकुमारों के देश में 7.जोड़ा हारिल की रूपकथा 8.जलडमरूमध्य 9.पगहा जोरी-जोरी रे घाटो

10.मैं जीती हूं 11.सलाम भाटू 11.मोहभंग 12.रात बाकी 13. रद्दो बदल जैसी कहानियां अपना विशेष महत्त्व रखती हैं।

बड़े बांधों का निर्माण, बहुराष्ट्रीय उत्खनन कम्पनियों का जंगलों में प्रवेश, आदिवासी इलाकों में सामंती-पूंजीवादी दिकुओं का हस्तक्षेप, जातीय हिंसा और साम्प्रदायिक हिंसा, रोजगार का अभाव वर्तमान विस्थापन के सबसे बड़े कारण हैं। बुड़ान, टापूटोल, कागज का जहाज, जल प्रांन्तर और रात बाकी ये पांचों कहानियां बांध से उत्पन्न होने वाले विस्थापन का त्रासदी पर आधारित हैं। हृषिकेश 'सुलभ' की कहानी 'टापूटोल',पनार के तट पर बसा एक गांव है, पूरा गांव अचानक आई बाढ़ में समा जाता है और छोटी डोंगी के सहारे बच निकलने वाले लोग रेलगाड़ी में बैठ कर दिल्ली-बम्बई-कलकत्ता जैसे महानगरों में समा जाते हैं। लेकिन कहानी का प्रमुख पात्र 'आरिफ' वहीं रह कर अपनी प्रेमिका 'जमीला' को (जो बाढ़ की विशाल जलधारा में समा गई थी) खोजने का फैसला करता है। 'टापूटोल' गांव अब सिर्फ आरिफ की आंखों में उभरता है। बाढ़ की जलधारा में अपने लोगों को खोजता हुआ आरिफ कहता है- "....नहीं। वह नहीं जाएगा दिल्ली, पंजाब। कटिहार जाकर वह नहीं पकड़ेगा दिल्ली- पंजाब जाने वाली बड़ी रेलगाड़ी। वह इन्तजार करेगा पनार के उतरने का। वह इसी पनार की गोंद में रहेगा।"[3] बाढ़ के बाद जमीला को पूरी ज़िन्दगी खोजता आरिफ पाठकों को अन्दर तक झकझोर देता है। वह रोज सैतपीर (दर्द भरा गीत) गाता है।

भारत के विभिन्न राज्यों में कुल 5200 बांध हैं। 3600 बांध प्रस्तावित हैं। भारत में बड़े बांधों का निर्माण पिछले 35-40 वर्षों में घटित होने वाली परिघटना है। इस परिघटना के बाद भारत की नदियों में अप्रत्याशित और अप्राकृतिक बाढ़ आने लगी है। इन बाधों से राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय पूंजीपतियों का भारी फायदा हूआ, प्रकृति का भारी नुकसान और आम जनता का बड़े पैमाने पर विस्थापन हुआ। ये कहानियां बाढ़, बांध, प्राकृतिक आपदा,भूमण्डलीकरण और विस्थापन के बीच की गुत्थी को सुलझाती हैं। कहानी के कुछ वाक्य इस गुत्थी को सुलझाते हैं। "डाइन कोशी का पेट फूल रहा है। जब से नेपाल की सीमा पर बांध बना है, गर्भवती धामिन सर्पिणी की तरह फूलता जा रहा कोशी का पेटा।"[4] "अब तो बाघिन की तरह आती है पनार।"[5] अरुण प्रकाश की विमर्शों वाली कहानी 'जल प्रान्तर'(जिसमें 13 पात्र हैं,जिसके प्रत्येक पात्र विस्थापन से जुड़े अलग-अलग पहलुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं) में अचानक बाढ़ आती है और पण्डित वासुदेव के पहाड़ीथान के साथ-साथ चार किलोमीटर की दूरी में फैलै सभी गांव दो दिन में पानी में पूरी तरह जलमग्न हो जाते हैं। "अगले दिन दोपहर होते-होते गंगा विकराल हो उठीं और पहाड़ीथान से एक किलोमीटर दूर गुप्ता बांध तिनके की तरह बह गया।"[6] छोटे बांध गांव की रक्षा

करते थे और बड़े बांध गांव को बहा ले जाते हैं। इसीलिए छोटे बांधों की उपेक्षा की जा रही है और बड़े बांध पल्लवित हो रहे हैं। भूमण्डलीकरण को गांव की चिंता नहीं है। वह छोटे बांध यानी लघु और कुटीर उद्योग को खत्म कर देना चाहता है। इसलिए कहानी में गुप्ता बांध की उपेक्षा होती है।

बाढ़, बांध और विस्थापन पर लिखी गई कहानियों में रणेन्द्र की कहानी रात बाकी अपना विशेष महत्त्व रकती है। भूमण्डलीकरण के बाद बदलते आदिवासी जीवन और जंगल की बदलती राजनीति का बहुत जीवन्त चित्रण इस कहानी में हुआ है। झारखण्ड में बन रहे दुर्गावती बांध का विरोध करने के लिए आस-पास के आदिवासी जुटते हैं,स्थानीय प्रशासन सामंती सेना के गुंडों (सनलाइट सेना) से मिलकर आंदोलनकारियो पर गोली चलवा देता है। जिसमें 17 आदिवासी मारे जाते हैं। आंदोलन की नेत्री 'पुष्पा चेरो' पर जानलेवा हमला होता है और बलात्कार के बाद मरा समझ कर छोड़ दिया दिया जाता है। अनगिनत गांव पानी में डूबने और विस्थापित होने को मजबूर हो जाते हैं। आज आदिवासी क्षेत्रों में बड़े बांधों का बनना, अन्धाधुंध उत्खनन, मारपीट, हत्या, बलात्कार, विस्थापन और इसके खिलाफ संघर्ष आदिवासी जीवन का सच है। अब भारत के आदिवासी हथियारबंद आंदोलन की ओर जा रहे हैं। रात बाकी कहानी में इसका स्पष्ट चित्रण हुआ है। पुष्पा चेरों ने आंदोलनकारियों के साथ हुई घटनाओं का वर्णन कुछ इस प्रकार किया। "आप लोगों के वहां से जाने के पांचवीं रात को ही हमला हुआ, मेम ने बात शुरू की,'लिबरेशन वालों को खबर थी, दोनों ओर से फायरिंग होती रही। रात भर चली। पहली रात कोई हताहत नहीं हुआ। दूसरी रात की फायरिंग ज्यादा मारक थी। रामावतार जी और उनके दो साथियों को गोली लगी। लिबरेशन दस्ता के दो कामरेड मारे गए। उधर भी कई लोगों को गोली लगी। .... दिन में ही सैकड़ों की भीड़ ने हमला बोल दिया.... न केवल परती के पूरे हो चले घरों को ढहा दिया गया बल्कि बांध की झोपड़ियों में आग लगाकर बच्चों, बूढ़ों-औरतों को झोंक दिया। पुष्पा की आजी मां को भी नहीं छोड़ा। चाला पच्चो भी जिंदा जला दी गई। जो सामने आया, उस पर तलवार-गंडासे, कट्टे, राइफल चले। जितने लोग मारे गए उससे ज्यादा हताहत हुए।"[7] इस तरह की घटनाएं आदिवासी जीवन का सच हैं।

पूरन हार्डी की कहानी बुड़ान में बाढ़ से विस्थापित होने वालों का बहुत ही मार्मिक चित्रण हुआ है। बाढ़ में अनगिनत गांव पानी में डूब दाते हैं। तितर-वितर होकर लोग विस्थापित हो जाते हैं। बचे हुए लोगों को सर छुपाने भर की जगह देकर कहीं दूर बसा दिया जाता है। जिनके पास घर-द्वार, खेत-खलिहान, बाग-बगीचा, गांव-पड़ोस सब था, वो सब भूमिहीन और अजनबी जनता में बदल जाते हैं। कहानी के दो पात्र गुन्नू और चोंई (दोनों छोटे-छोटे बच्चे हैं) फेंकी हुई

भुतही हांड़ी को नांव बनाकर बाढ़ के अथाह पानी में अपना गांव देखने जाते हैं। गुन्नू चोंई से कहता है-" कितनी अजीब बात है न चोंई कि कल तक हम सब इस घर में रहते थे, सोते थे, चलते-फिरते हंसते-रोते, लड़ते-झगड़ते थे और अब इस घर में मछलियां, केकड़े, कीड़े-मकोड़े घूम फिर रहे होगें....."[8] चोंई और गुन्नू अपने घर को कुछ इस तरह याद करते हैं। "हमारी बाड़ी थी तो बहुत छोटी, लेकिन उसमें हरी सब्जी, भाजी जोंधरा और खीरे की भरमार रहती थी, जोंधरा और खीरा खाने का मजा ही कुछ और था। अब ये सब कहां ... ।"[9]

मो. आरिफ द्वारा लिखी कहानी 'कागज का जहाज' में बाढ़ से होने वाली तबाही और घर से बेघर होने को मजबूर लोगों की ज़िन्दगी का बहुत कारुणिक चित्रण है। यह कहानी अपने समय के सवालों से टकराती है और राजनीतिज्ञों से, प्रशासन से, वैज्ञानिकों से, समाज से और अपने समय से सवाल सवाल करती है। "अगल-बगल, दायें बायें, ऊपर-नीचे, बस पानी ही पानी। जितनी दूर देख सको। जहां तक आंख दिखाए..... बस पानी ही पानी। कहां से आ रहा है इतना पानी? कहां जाएगा यह पानी? कब जाएगा आखिर?"[10] यह कहानी गण्डक नदी में आई हुई बाढ़ में डूब गए मोरछा, देउली, बेरहा जैसे अनेक गांवों का चित्रण करती है। कहानी के मुख्य पात्र रामदीन-सोनवा बच्चों सहित बाढ़ के पानी से विस्थापित होकर रेलवे लाइन की पटरी को बसेरा बनाये होते हैं कि रात में आचानक आई पानी की तेज धार में बह जाते हैं। रामदीन और सोनवा की गृहस्थी, खेत-खलिहान और जानवर सब बह जाते हैं। शासनसत्ता और सरकारी मशीनरी उनके प्रति उदासीन होती है, स्थानीय लोग दुर्व्यवहार करने लगते हैं। अपना और अपने बच्चों का पेट भरने के लिए सोनवा को अपने जिस्म तक को दांव पर लगाना पड़ जाता है। बाढ़ पीड़ित विस्थापितों के लिए खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना-बिछाना सब कुछ एक चुनौती बन जाता है। विस्थापितों की इज्जत आबरू दातून हो जाती है। उसी को बचाने के लिए सोनवा राहत सामग्री में से खाने के पैकेट से पहले कपड़ों पर टूट पड़ती है। "उसे खिचड़ी, चूड़ा, चना, प्याज, नमक और गुड़ के पैकेट मिले न मिले, परवाह नहीं। उतरन की साड़ी ब्लाउज देखी नहीं कि मुंह में पानी आया। जान पर खेल जाती है सोनवा। करतब दिखलाते हुए भीड़ में घुसती है और हाथ में मोती लेकर निकलती है।"[11] विस्थापितों के लिए भूंख का सवाल सबसे बड़ा सवाल बन जाता है। भूंख मिटाने लिए लोग कुछ भी खाने और कुछ भी दांव पर लगाने को तैयार हो जाते हैं। "क्या उड़ाये रामदीन बाबू आज? ऊदल ने उसे छेड़ा। रामदीन छुपाना चाहता था। इसलिए कि ऊदल क्या सोचेगा कि एक बाढ़ क्या आयी कि रामदीन मुसहर बन गया। और इसलिए भी कि दुसरे हरिजन टोला वाले मरे बैल भैंस और सुअर खा रहे हैं। अगर पता चल गया कि उसे जिंदा चूहे मिल जाते हैं तो नाक में दम कर देंगे। साले चूहे भी आदमी की तरह बाढ़ में मरना नहीं चाहते।"[12] "बहुत मरे। जानवर, शिशु, चूहे, बिल्लियां। कुत्ते आदमी को सूंघते साथ-साथ भागे थे। अचानक पानी ही

सब कुछ हो गया। सरकार, ताकत, दया, क्रोध।......भागते लोग सिर्फ पत्ते की तरह बज सकते थे। राहत के लिए थकी पलकों को ऊपर उठाकर देख सकते थे कि कोई हेलीकाप्टर आए और बासी रोटी और प्याज का पैकेट गिरा दे।"[13]

. 'रेलिया बैरन पिया को लिये जाय रे'यह पंक्ति विस्थापन की पीड़ा को बयान करती है। जड़ से उजड़ते लोगों की उजड़ने की गति को रेल के इंजन ने और बढ़ा दिया। इस संदर्भ में अरुण प्रकाश की कहानी भैया एक्सप्रेस बहु चर्चित और जीवन्त कहानी है। कहानी का प्रमुख पात्र विशनदेव घर की तंगहाली और बेकारी की हालत में काम की तलाश में अपने गांव (बिहार) से पंजाब जाता है। वह काम की तलाश में दर-बदर भटकता एक दिन साम्प्रदायिक हिंसा के भेट चढ़ जाता है। विशनदेव की कहानी यू.पी. और बिहार से काम की तलाश में निकले लाखों-लाख मजदूरों के विस्थापन की कहानी है। कोई व्यक्ति जिन परिस्थितियों में अपना घर-बार छोड़ने को मजबूर होता है, उसका एक दृश्य कहानी में इस प्रकार है। "खेतिहर मजदूर विशनदेव का घर आर्थिक तंगी से गुजर रहा था। पैसे की समस्या सांप की तरह फन काढ़े फुफकार रही थी। पुस्तैनी पेशा-अनाज भूनने में क्या रखा है? कंसार में लोग अनाज भुनवाने आते नहीं। मकई की रोटी अशराफ लोग खाते नहीं। इतनी मंहगी है कि लोग चने की दाल बनवाएंगे कि कंसार में चना भुनवा कर सत्तू बनाएंगे। .....आखिर माई उपले पाथकर, गुल बनाकर बेचने लगी थी। तब किसी तरह भोजन चलने लगा था। लेकिन कोई काम आ पड़ता तो कर्ज लेने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचता था।"[14] इस तरह के हालात किसी व्यक्ति को विस्थापित होने के लिए मजबूर कर देते हैं। "अगर विशनदेव पंजाब नहीं जाता तो वे सब बेघर हो जाते।"[15] मजदूर पूरे घर को बेघर होने से बचाने के लिए स्वयं को विस्थापन की अंधेरी सुरंग में झोंक देता है।

आदिवासी जीवन पर आधारित कहानियां ('जोड़ा हारिल की रूपकथा', 'बेला एक्का घर लौट रही हैं'और 'राजकुमारों के देश में') ये तीनों कहानियां, भारत के आदिवासी क्षेत्रों में मल्टीनेशनल कंपनियों के बढ़ते प्रभाव, उससे उत्पन्न विस्थापन और दिकुओं के बढ़ते हस्तक्षेप से उत्पन्न परिस्थितियों का सूक्ष्म और प्रामाणिक चित्रण करती हैं। भूमंडलीकरण के बाद भारत के जंगलों में यूरेनियम की कंपनियां, बॉक्साइट की कंपनियां, कोयला उत्खनन की कंपनियां, लौह अयस्क की कंपनियां और ऐसी न जाने कितनी राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय कंपनियां पांव पसारने लगीं, पेड़ों को काटने लगीं, नदियों को सोखने लगीं, पहाड़ों को खोदने लगीं, धरती की छाती चीरने लगीं और जंगल के रखवालों से जल-जंगल-जमीन छीनने लगीं। जिसका प्रभाव यह हुआ कि पहाड़ दरकने लगे, नदियां सूखने लगीं, जंगल कटने लगे, धरती की छाती में चेचक जैसे गड्डे उगने लगे, हरियाली गायब होने लगी और महामारियां फैलने लगीं। जंगल में दिकुओं का

हस्तक्षेप बढ़ने लगा। जिसके कारण बड़ी संख्या में आदिवासी जल-जंगल-जमीन से बेदखल होने लगे और देखते ही देखते आदिवासियों का एक बहुत बड़ा हिस्सा भूमिहीनता और विस्थापन का शिकार हो गया। उनकी अपनी सांस्कृतिक पहचान खोने लगी, उनकी भाषाएं विलुप्त होने लगीं और आदिवासियों के कुछ प्रजातियां अस्तित्व के संकट से जूझने लगीं। प्रकृति का दोहन करने वाली वर्तमान मुनाफा केंद्रित संस्कृति ने प्रकृति पूजक संस्कृति के सामने गहरा संकट उत्पन्न कर दिया। परिणामत:आदिवासियों का एक बड़ा हिस्सा वर्तमान शासन व्यवस्था को अपना दुश्मन मानने लगा। अब वो आदिवासियत और प्रकृति को बचाने के लिए वर्तमान व्यवस्था के सामने बड़ी चुनौती बनकर उभर रहे हैं।

इन कहानियों में वैश्वीकरण के बाद आदिवासी समाज में होने वाले बदलाओं का व्यापक चित्रण हुआ है। जंगल विभाग और सामंती दिकू लोग उनकी बहन-बेटियों के साथ जोर-जबरदस्ती करने लगे। राकेश कुमार सिंह की कहानी 'जोड़ा हारिल की रूपकथा'के प्रमुख पात्र 'बागुन मुण्डा'के गांव में जंगल विभाग का आतंक बढ़ने लगता है और सामंती 'दिकू'बद्री मिसिर जबरदस्ती आदिवासियों की जमीन पर कब्जा करने लगता है। एक दिन आदिवासी लड़की 'देमुनिया'की खून से लथपथ बेपर्दा लाश जंगल में मिलती है। जंगल विभाग के बढ़ते आतंक और दिकुओं के हस्तक्षेप का ग्रामवासियों द्वारा विरोध करने पर बागुंडा मुंडा के पिता 'जादिक मुण्डा'को जंगल विभाग का बाबू गोली मार देता है और पूरे गांव पर नक्सली होने का आरोप लगाकर छापे मरवाने लगता है। जिसके कारण अनेक आदिवासी गांव से भागने को मजबूर हो जाते हैं। 'बागुन मुण्डा'न्याय पाने के लिए लंबे समय तक दर-बदर भटकता रहता है। बागुन मुण्डा अन्त में अपने पारम्परिक हथियारों से बद्री मिसिर के खिलाफ संघर्ष करने का बिगुल बजा देता है। "आंवे की भांति सुलग रहे थे मुण्डा। इसी बीच कोढ़ में खाज! एक सांझ पलाशखण्ड की देमुनियां की बेपर्द खूनमखून ल्हास जंगल किनारे पड़ी मिली तो आंवे धुंवा उठे।"[16] 'राजकुमारों के देश में कहानी में'भी आदिवासी मंगलू काका-काकी की बेटी 'चंदा'के साथ दिकुओं ने बलात्कार किया और वह हमेशा के लिए सो गई। इस सदमे को काका-काकी सह न सके और वो भी जहर खाकर हमेशा के लिए सो गए। जंगल में नई-नई समस्यायें रोज जन्म ले रही हैं। "एक जंगल कट रहा था। पेड़ों का जंगल। एक जंगल उग रहा था। बेरोजगारी का, भूख का, विपन्नता का और अंतत:बँधुआ मजदूरी का। अब जंगल बाबू जंगल में घुसने नहीं देता था। जंगल में जाने का रूपया माँगता है।"[17] जंगल के बाशिंदों से,जंगल के रखवालों से, जंगल में जाने का रूपया और परमिट मांगा जा रहा है। यह आधुनिक विकास का सच है। "वनपुत्र या तो पहाड़ों में लगी क्रशर में खटने लगे थे या फिर बद्री मिसिर के खेतों में। जंगल पुलिस (वनपाल) लड़कियों

की बांह पकड़ लेते थे। साथ सोने को बोलते थे।"[18] 'बागुन मुण्डा' के खेतों पर कब्जा करने वाला बद्री मिसिर उस गांव में दिकू हैं।

"बद्री मिसिर और जंगल साहब एक बोतल के यार थे। एक के बदले चार रूख काटे जा रहे थे। लाह, गोंद चिरौंजी, कत्था, गोलोचन, बंशलोचन मधु और ईधन......! सपना होने लगे थे सब! जंगल था तो जीवन था, जीने के सहारे थे। जंगली पदार्थों की बिक्री से नमक-भात चलता था। टेंट में चार पैसे रहते थे।"[19] आब न महुआ बचा है न तेंदू पत्ता, सब ठेकेदारों के हाथ में चला गया है। "जंगल में बसे गांव अब नंगे हो रहे थे और साफ जमीन पर गढ़े जा रहे थे बद्री मिसिर के खेत।"[20] "पुलिस जंगल-दफ्तर और बद्री मिसिर जैसे ठेकेदारों की तीन तरफा लूट का अभयारण्य बन गया था पलामू का जंगल।"[21]

अदिवासी समाज के लोग इस तीन तरफा लूट से बाहर निकलकर तथाकथित 'मुख्यधारा' में शामिल होना भी चाहें तो इस मुख्यधारा में ससम्मान समायोजित होने की जगह उनके लिए बहुत कम है। आदिवासियों में यदि कोई स्त्री मुख्यधारा के साथ जुड़ना चाहे तो उसे और अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। आदिवासी स्त्रियां अंततोगत्व इस फैसले पर पहुंचती हैं कि स्त्री विषयक दृष्टिकोण को लेकर मुख्यधारा का समाज, आदिवासी समाज की तुलना में कम विकसित और कम लोकतांत्रिक है। अरुण प्रकाश की कहानी 'बेला एक्का घर लौट रही हैं' इसका जीवन्त प्रमाण है। बेला एक्का झारखण्ड के धनबाद जिले की आदिवासी स्त्री हैं। वह पढ़ लिखकर अध्यापक की नौकरी करने मुगलसराय आती हैं। उन्हें शारीरिक, मानसिक और सांस्कृतिक रूप से इतना परेशान किया जाता है कि वो पहले आत्महत्या करने की कोशिश करती हैं और अन्त में इस्तीफा देकर अपने गांव चली जाती हैं। उनका इस्तीफा तमाम आदिवासी महिलाओं का मुख्यधारा के समाज से इस्तीफा है। भारत का आदिवासी समाज स्वतंत्र और अनिशासित समाज है। बेला एक्का जंगल से बाहर निकलकर जो कुछ देखती हैं उसे देख कर रो रही हैं। कहानी की शुरुआत इन वाक्यों से होती है। "दरवाजा बन्द कर सुश्री एक्का धम्म से बिस्तर पर जा गिरीं। हिचकियों की आवाज सुश्री एक्का रो रही हैं।"[22]

सवाल यह है कि बेला एक्का क्यों रो रही हैं? उनके कमरे से हिचकियों की आवाज क्यों आ रही हैं? क्या बेला एक्का अपने मां-बाप की याद में रो रही हैं? क्या सुश्री एक्का मृदुल (उनका प्रेमी) के लिए रो रही है? क्या सुश्री एक्का आशंका से रो रही हैं? क्या सुश्री एक्का अपनी जड़ों से कटने के कारण रो रही हैं? क्या सुश्री एक्का कथाकथित मुख्ययधारा के समाज की संस्कृंति से दु:खी होकर रो रही हैं? क्या सुश्री एक्का मुख्यधारा के समाज की आदिवासियों के प्रति धारणा से दुखी होकर रो रही हैं? क्या: सुश्री एक्का आधुनिक शासन व्य वस्था द्वारा

आदिवासियों को जबरदस्ती विस्थापित करने, उपेक्षित करने, हाशिये पर ढकेल दिये जाने के कारण रो रही हैं? क्या सुश्री एक्का अपने साथ हो रहे व्यावहार को आधुनिक सुर-असुर संग्राम से जोड़कर आहत हैं और रो रही हैं? बेला एक्का के पिता एक दफ्तर में चपरासी की नौकरी करते हैं। वो अपनी ऑफिस में गैरआदिवासियों द्वारा अपने साथ किये जाने वाले दुर्व्यवहार से दुखी रहते हैं। वो बेला को पढ़ने का पैसा भले न दें लेकिन सरकार से लड़ने वाले लड़कों को नियमित चंदा देते हैं।

पीटर पाल एक्का अपनी कहानी 'राजकुमारों के देश में'लेखक जंगल के आदिवासी क्षेत्रों को राजकुमारों का देश कहता है। उनकी चिंता यह है कि वह स्थान जहां साफ हवा थी, स्वच्छ पानी था, स्वतंत्रता और स्वनुशासन था, सम्मान से जीने का एहसास था, अब वहां विकास के हरकारे पहुंचे हैं। जंगल तेजी से बदलने लगा है। कहा जा रहा है कि जंगल में मल्टीनेशनल्स और जंगल विभाग के पहुंचने से आदिवासियों का विकास होगा, प्राकृतिक संसाधनों का सही इस्तेमाल होगा, गांव-समाज और देश आगे बढ़ेगा। लेकिन ये कहानियां जो महावृत्तान्त रचती हैं, उससे जो चित्र बनता है वह एकदम भिन्न है। "कोलियरी फील्डत ने पूरे पहाड़ी अंचल को समेट लिया है। किनके घर आबाद हुए, देश-समाज कितना आगे बढ़ा, कुछ कहा नहीं जा सकता। हां, उस पर्वतीय इलाके में आदिवासियों के जो मिट्टी के घर थे, जहां मंगलू काका जैसा छोटा सुखी परिवार रहता था- अब न वह रह गया था, और न वह प्रकृति-प्रांगण और न ढोलक-मजीरा की वह डिमडिमाती आवाज जो इस देश के राजकुमार आजादी बेफिक्री में खुशी के पलों को उजागर करते उन्मुक्त बजाते थे।"[23] इतना ही नहीं, भूमण्डलीकरण ने सिर्फ जंगल और जंगल के बाशिंदों की जिंदगी को ही उजाड़ नहीं बनाया; उसने भारतीय समाज के निम्न मध्यवर्ग और मध्यवर्ग को भी बहुत गहरे प्रभावित किया है। उसने उसे घर से बेदखल कर के विस्थापित तो नहीं किया लेकिन घर में रहते हुए भी घर के एहसास से, अपनी परम्पराओं से, अपनी जीवन शैली से, अपनी संस्कृतियों से बेदखल कर दिया है। भूमण्डलीकरण द्वारा किये गए सांस्कृतिक हमले के तमाम पहलुओं को बहुत बारीकी से रेखांकित करने वाली हिंदी कहानियों में मनोज रूपड़ा की कहानी 'रद्दोबदल'बहुत महत्त्वपूर्ण कहानी है। जिसमें यह सिद्ध किया गया है कि आज तमाम मल्टीनेशनल्स कम्पनियां साम-दाम-दण्ड-भेद-लोभ-लालच जैसे तमाम मूल्यों का इस्तेमाल करके दुनियाभर के लोगों को ब्रान्डेड वस्तुओं के प्रयोग का अभ्यस्त बना रही हैं। भूमण्डलीकरण ने हर ऐसी चीज को जिससे किसी व्यक्ति को मौलिक होने का गर्व हो सकता था, उनसे छीन लिया है। आज उठना-बैठना, चलना-फिरना, खाना-पीना, हँसना-रोना जैसी सभी गतिविधियों को साँचे में ढाला जा रहा है और कुर्सी, मेज, दीवान, चूल्हा, बेलन, कड़ही, चिमटा, चम्मच, पैंट, सर्ट, अन्डरवियर, बनियान, जूता, चप्पल, मोजा, ब्रश, पेस्ट, साबुन,तेल

इत्यादि जीवन में प्रयोग की जाने वाली लगभग सभी चीजों को ब्रान्ड में बदला जा रहा है। इस तरह ब्रान्ड की संस्कृति ने दुनिया की तमाम संस्कृतियों पर हमला कर दिया है। भूमण्डलीकरण ने बहुत बड़े स्तर पर लोगों का व्यक्तिगत और सामाजिक-सांस्कृतिक विस्थापन किया है। इसीलिए सच्चिदानन्द सिंहा ने भूमण्डलीकरण को हॉलोकास्ट की संज्ञा दी है।“वैश्वी करण जिसका पैगाम लेकर नई सदी आई है एक अर्थ में संस्कृतियों का हॉलोकास्ट है।”[24] यह मनुष्यों के विस्थापन के साथ-साथ संस्कृतियों के विस्थापन की भी सदी है।

संदर्भ सूची-

1. किड़ो, वासवी, भारत में विस्थापन की अवधारणा और इतिहास, पृ.......63
2. मण्डलोई, लीलाधर,सं., नया ज्ञानोदय, साहित्य वार्षिकी, 2016, (आलेख-हुसैन, जाबिर, उजड़ने का दर्द स्थाई होता है), पृ....249
3. मित्र, पंकज, सं., कहानियां रिश्तों कीः गांव-घर, कहानी, टापूटोल, पृ.. 136
4. मित्र, पंकज, सं., कहानियां रिश्तों कीः गांव-घर, कहानी, टापूटोल, पृ..134
5. मित्र

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

आत्मकथा का स्वरूप–विवेचन

नन्दराम
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
धर्म समाज महाविद्यालय, अलीगढ़, उ0प्र0

'आत्मकथा' हिन्दी साहित्य की आधुनिक गद्य–विधाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। पश्चिमी–साहित्य के प्रभाव से हिन्दी में इस नवीन विधा का जन्म हुआ। अंग्रेजी भाषा के शब्द 'बायोग्राफी' को हिन्दी शब्द 'आत्मकथा' का समानार्थी माना गया है। अंग्रेजी के बायोग्राफी शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के शब्द 'बायोस' अर्थात् लाइफ (जीवन) और 'ग्राफियर' अर्थात् टू राइट (लिखना) के मेल से हुई है। इस प्रकार आत्मकथा शब्द का आशय 'जीवन के सम्बन्ध में लिखना' है।

आत्मकथा विधा में जीवन की कथा किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा न लिखी जाकर लेखक द्वारा स्वयं लिखी जाती है। इसीलिए इसे अंग्रेजी में 'ऑटो बायोग्राफी' और हिन्दी में 'आत्मकथा' कहते हैं। अर्थात् जब कोई महान व्यक्ति कलात्मक एवं साहित्यिक ढंग से अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का शृंखलाबद्ध, व्यवस्थित एवं संवेदनापूर्ण साहित्यिक विवरण स्वय ंलिखता है, तब उसे आत्मकथा कहा जाता है।

डॉ0 कमलेश सिंह आत्मकथा को परिभाषित करते हुए लिखते हैं–

''आत्मकथा में जिए हुए जीवन का, भोगे हुए क्षणों का, झेले हुए सुखों–दुखों का और आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक सुखों–दुःखों का सच्चा लेखा–जोखा आत्मकथा लेखक अपने समग्र जीवन के पुनरीक्षण के रूप में करता है।''[1]

'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' में आत्मकथा की परिभाषा देते हुए स्पष्ट किया गया है कि– ''आत्मकथा व्यक्ति के जिए हुए जीवन का पर्याप्त ब्यौरा है, जो स्वयं उसके द्वारा लिखा जाता है।''[2]

आक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार– ''आत्मकथा स्वयं का स्वलिखित इतिहास है; स्वयं के द्वारा लिखित स्वयं की कहानी है।''[3]

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ लिटरेचर' के लेखक कैसल के अनुसार– ''आत्मकथा व्यक्ति के जीवन का विवरण है, जो स्वयं के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है; इसमें जीवन के अन्य प्रकारों से सत्य का अधिकतम समावेश होना चाहिए।''[4]

'डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर' में जे0टी0 शिपले ने आत्मकथा की परिभाषा देते हुए लिखा है–

''आत्मकथा मूलतः लेखक के जीवन का सत्यता पूर्ण विवरण होता है, जिसमें मुख्य भाग आत्म–निरीक्षण और अपने जीवन की सार्थकता पर बाह्य परिवेश में प्रस्तुत किया जाता है।''[5] सैम्यूअल जॉनसन ने लिखा है कि– ''प्रत्येक व्यक्ति का जीवन–चरित्र स्वयं के द्वारा ही सबसे अच्छे तरह से लिखा जा सकता है।''[6]

यहाँ आत्मकथा के अर्थ एवं परिभाषा के संबंध में हिन्दी सहित अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों और आलोचकों द्वारा दी गई परिभाषाओं एवं अवधारणाओं पर विचार करना समीचीन होगा। भारतीय समीक्षक डी0जी0 नायक ने आत्मकथा के संबंध में लिखा है कि– ''जीवन स्वयं गतिशील है, इस गतिशीलता का विवरण जब क्रमिक अथवा कहानी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तब वह आत्मकथा कहलाती है।'[7]

बांग्लाभाषा के प्रसिद्ध कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार– ''आत्मवृत्तांत आयुष्य की स्मृतियों के संयोग से गुँथा हुआ जीवन का इतिहास नही है, वरन् यह अज्ञात चितेरे तथा उसकी कल्पना के अनुसार बनाया हुआ चित्र है।''[8] वियोगीहरि के अनुसार– ''आत्मकथा जीवन की कुछ घटनाओं और अनुभूतियों की एक अभिव्यंजना है।''[9]

हरिवंशराय बच्चन आत्मकथा को 'जीवन की एक तस्वीर' कहते हैं। रामावतार अरूण लिखते हैं कि– ''आत्मकथा व्यक्ति के संघर्ष में जीवन का वह सत्यांकित इतिहास है, जो स्वयं मेघ की तरह उमड़कर बरस जाता है, जो स्वयं फूल की तरह खिलकर झड़ जाता है।''[10] अमृता प्रीतम ने अपनी आत्मकथा 'रसीदी टिकट' में ''आत्मकथा को लेखक की अपनी आवश्यकता मानते हुए यथार्थ से यथार्थ तक पहुँचने की प्रक्रिया माना है।''[11]

डॉ0 नगेन्द्र ने आत्मकथा को स्पष्ट करते हुए लिखा है– ''आत्मकथाकार अपने संबंध में किसी मिथक की रचना नहीं करता, कोई स्वभाव दृष्टि नहीं रचता, वरन् अपने गत जीवन के खट्टे–मीठे, उजले–अँधेरे, प्रसन्न–विषण्ण, साधारण–असाधारण संरचना पर मुड़कर एक दृष्टि डालता है, अतीत को पुनः कुछ क्षणों के लिए स्मृति में जी लेता है और अपने वर्तमान तथा अतीत के मध्य सम्बन्ध सूत्रों की अन्वेषणा करता है।''[12]

इस प्रकार स्पष्ट है कि आत्मकथा में लेखक की जिंदगी के भोगे हुए पलों, अच्छी बुरी स्मृतियों तथा समय और परिवेश के प्रामाणिक अनुभवों का प्रभावपूर्ण चित्रण होता है। यह संस्मरण से मिलती–जुलती किन्तु पर्याप्त भिन्न विधा है। संस्मरण में लेखक जहाँ अपने आस–पास के समाज, परिस्थितियों एवं अन्य घटनाओं के बारे में लिखता है, वहीं आत्मकथा में केन्द्र लेखक स्वयं होता है। आत्मकथा सदैव व्यक्तिपरक होती है अर्थात् इसमें लेखक का अपना दृष्टिकोण पूर्णतः समाहित होता है।

सन्दर्भसूची :

1. सिंह, डॉ0 कमलेश, 'हिन्दी आत्मकथा : स्वरूप एवं साहित्य', पृष्ठसं0– 01
2. An Autobiography is the account of an Individual human life, written by the subject himself- Encyclopedia Britannica, Vol. II, Page 855-1971
3. Oxford Dictionary, Vol. I, Page 573

4. Autobiography is the narration of a man's life by himself. It should contain a greater guarantee of truth than any other from of biography....... cassel's Encyclopedia of literature by S. H. steinspurg, Page 62

5. The autobiography proper is connected narrative of the author's life, with stress laid on introspection, or on the significance of his life against a wider background. J. T Shipley, Dictionary of world Literature Page 23, 1970

6. Dr. Samual Johnson, Qoated from Ander Mourn's Aspect of Biography Page - 133

7. Nayak. D. G., Art of Autobiography, Page 44

8. टैगोर, रवींद्रनाथ, जीवन स्मृति (अनु0 सूरजमल जैन), प्रस्तावना से उद्धृत।

9. हरि, वियोगी, मेरा जीवन प्रवाह, पृष्ठसं0–03।

10. पोद्दार, रामावतार अरूण, 'अंरूणायन : एक आत्मकथा', भूमिका से उद्धृत।

11. प्रीतम, अमृता, 'रसीदी टिकट', पृष्ठसं0– 149

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

'जूठन' का मार्मिक पक्ष

राजमणि सरोज
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
धर्म समाज महाविद्यालय, अलीगढ़, उ0प्र0

'जूठन' केवल ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा नहीं वरन् दलित समाज का भोगा हुआ यथार्थ है। गृह राज्यों तक अपनी जड़ें जमा चुकी जाति व्यवस्था जिसका मूल कारण है। भारतीय समाज में दलित समुदाय इसी जाति व्यवस्था का शिकार बना हुआ है जिसे हिन्दू समाज अछूत समझकर तिरष्कृत करता है, उसके साथ जाति के आधार पर भेदभाव करता है। दलित समुदाय को अपने देश में ही अपेक्षित, अपमान जनक जीवन जी ने के लिए विवश होना पड़ता है। श्रेष्ठ जाति के अभिमान के नशे में चूर तथाकथित उच्च वर्ग के लोग दलित को पशु से भी हीन समझते हैं। दलित समुदाय के लोगों को जातीय अपमान का घूंट पीकर मानसिक पीड़ा का सामना करना पड़ता है। यह कैसा समाज है? जहाँ मनुष्य और मनुष्य के बीच अंतर समझा जाता है, भेदभाव किया जाता है, जाति के आधार पर श्रेष्ठता हीनता का निर्धारण किया जाता है।

आत्मकथा 'जूठन' में दलित समुदाय की पीड़ा, मानसिक कष्ट, उत्पीड़न आदि की अभिव्यक्ति हुई है। जूठन में वर्णित घटनाएं, प्रसंग, वर्णव्यवस्था की निर्ममता का प्रमाण देती हैं। दलित जीवन की सम्पूर्ण सरोकारों को समेटती यह आत्मकथा केवल दलित जीवन की त्रासदी को ही प्रकट नहीं करती बल्कि हिन्दू समाज द्वारा उनके साथ किये जा रहे व्यवहार, भेदभाव, शोषण एवं उनकी जड़ मानसिकता को अभिव्यक्त करती है। अपने इस साहसपूर्ण सृजनात्मक प्रयास के माध्यम से लेखक ने भारतीय समाज की वास्तविक सच्चाई को उजागर किया है। देखकर अनुभव की गयी यातना और भोगकर अनुभव की गयी यातना के विवरण में बहुत फर्क होता है। इस पुस्तक को पढ़ने के बाद यह कहावत सत्य प्रतीत होती है– ''जिसके पांव न फटे बिवाई। वह क्या जाने पीर पराई।। लेखक द्वारा भोगे गये यथार्थ जो जातीय अपमान, उपेक्षा, भेदभाव पर आधारित है, का वास्तविक चित्रण आत्मकथा 'जूठन' में हुआ है।

आत्मकथा 'जूठन' में भारतीय समाज की अमानवीय जातिवादी व्यवस्था के प्रति आक्रोश प्रकट किया गया है। यह व्यवस्था दलित के प्रति क्रूर और असंवेदनशील है। इस अन्याय पूर्ण सामाजिक व्यवस्था के कारण दलित समुदाय को जातिगत उत्पीड़न एवं अपमान सहना पड़ता है। भारतीय समाज व्यवस्था व्यक्ति की योग्यता नहीं बल्कि जाति को महत्व देती है। दलित वर्ग पढ़ लिखकर समाज की मुख्य धारा से जुड़ना चाहता है लेकिन जातिवादी मानसिकता से ग्रसित उच्चवर्ग लोग उन्हें मुख्य धारा में आने से रोकने का प्रयास करते हैं, उनसे भेदभाव का व्यवहार करते हैं, अपने से उन्हें हीन समझते हैं। उनकी बुद्धिमता, योग्यता, कार्य–कुशलता पर सन्देह

प्रकट किया जाता है। उन्हें प्रताड़ित, अपमानित एवं हीनताबोध कराने के लिए तमाम हथकंडे अपनाये जाते हैं। इस मानसिक पीड़ा को दलित ही जानता है जिसने इस जातिवादी व्यवस्था की विभीषिका के नश्तर की चुभन को महसूस किया है।

लेखक ओम प्रकाश वाल्मीकि की दो खण्डों में प्रकाशित आत्मकथा 'जूठन' दलितों में सबसे नीचे क्रम की जाति में पैदा होने की यातना और उससे उबरने के संघर्ष का सुलगता दस्तावेज है। यह लेखक की आपबीती होते हुए भी पूरे दलित समुदाय की आपबीती बन जाती है। 'जूठन' में भारतीय समाज के भयावह जातिवादी मुखौटे को उजागर किया गया है जिसमें यह दिखाया गया है कि दलित समुदाय का व्यक्ति अपनी प्रतिभा, मेहनत से महत्वपूर्ण सेवा का पद तो हासिल कर सकता है, जीवन के लिए भौतिक संसाधन जुटा सकता है परन्तु समाज में उसका जाति से पिण्ड नहीं छूट सकता। भारतीय समाज में जाति एक महत्वपूर्ण घटक है। व्यक्ति के आदर–सम्मान, सामाजिक प्रतिष्ठा के मामले में जाति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जातीय श्रेष्ठता एवं हीनता के क्रम के कारण मनुष्य–मनुष्य के बीच भेदभाव किया जाता है। दलित समुदाय को जाति की निचली पायदान पर होने के कारण बार–बार हीनताबोध का अनुभव कराया जाता है। निश्चित रूप से एक सभ्य समाज के लिए इस व्यवस्था को कहीं से भी मानवीय नहीं ठहराया जा सकता है। उच्च वर्ग के लोगों को इस जातिवादी मानसिकता के भंवर से निकलने की कोशिश करनी चाहिए। व्यक्ति को महत्व उसकी जाति से नहीं अपितु कर्म से दी जानी चाहिए। आधुनिक भारत में इस तरह का भेदभाव सर्वथा त्याज्य है।

प्रो0 चमन लाल के शब्दों में– ''वास्तव में जब भी कोई दलित लेखक सचेत और सजग रूप में अपने जीवन के अनुभवों को आत्मकथा या अन्य कोई साहित्यिक रूप देगा तो उसे वाल्मीकि के अनुभवों से गुजरना ही पड़ेगा और जिन कुछ लोगों को यह अविश्वसनीय और अतिरंजनापूर्ण लगता है, वह वे लोग हैं, जिन्होंने बचपन में चांदी के चम्मच से दूध पिया है जिन्होंने जिन्दगी को कभी नजदीक से देखा ही नही है। जैसे कड़वे अनुभवों से वाल्मीकि गुजरें है, वे इतने यथार्थ और वास्तविक है कि उन्हीं से 'जूठन' दिल दहला देने वाली दलित लेखक की सच्ची कहानी बन गयी है।''

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

भारत में उच्च शिक्षा : दिशा और उद्देश्य

डॉ0 पूनम मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
राजर्षि रणंजय सिंह आसलदेव पी0जी0 कॉलेज,
पीपरपुर, अमेठी

भारतीय मनीषा के सहस्त्रों वर्षों की साधना, चिंतन व विचार मंथन की निष्पत्ति थी–'सा विद्या या विमुक्तये।' किन्तु उसी भारत में आज यह सूक्ति अप्रासंगिक बना दी गयी है। यह सुभाषित एक ऐसे दार्शनिक कथन, जो भारतीय आध्यात्मिक चिंतन में वर्णित 'मोक्ष' की अवस्था से सम्बन्धित है एवं मानव तथा समाज जीवन की लौकिक वास्तविकताओं तथा दैनंदिन व्यववहार की अनदेखी करता है, के रूप में प्रतिष्ठित है। भारत की प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक प्रणाली व व्यवस्था में व्याप्त अनेकानेक विषमताओं, विद्रूपताओं व विडम्बनाओं का मूल कारण है, उपरोक्त सूक्ति के भाष्य के विराट स्वरूप को समाज चिति से ओझल कर, उसके संकुचित, एकांगी मात्र पारलौकिक अर्थ की समाज के सम्मुख आवर्त प्रस्तुति और वह भी तब जब जन साधारण के मन में यह धारणा बिठा दी गयी हो कि लौकिक जीवन ही यथार्थ है और पारलौकिक जीवन मात्र एक परिकल्पना है, अर्थात् किसने देखा है? जब भारतीय लोकचेतना में लौकिक और पारलौकिक जीवन की संततता कदाचित खण्डित की जा चुकी थी। यह एक ऐसा बड़ा षडयंत्र था जिसका आरम्भ विदेशी आक्रांताओं द्वारा हमारे समग्रता में चितंन करने वाले समृद्ध साहित्य व मानव जीवन के विविध पक्षों पर समाज का सफलतापूर्वक पथ प्रदर्शन करने वाली संस्थाओं के ध्वंस से होता है और जिसकी परिणति विदेशी शासकों द्वारा प्रमाणित व प्रसारित विज्ञान सिद्ध पाठ्यसामग्री में सिक्त तथा जीवन के विविध पक्षों पर वैज्ञानिक दृष्टि और दिशा देने वाली उक्त शासकों के द्वारा स्थापित संस्थाओं से परिष्कृत व परिमार्जित बुद्धिजीवियों द्वारा प्रचलित वर्गीकृत ज्ञान व खण्डित अथवा असतत् चिंतन प्रणाली में हुई है।

'सा विद्या या विमुक्तये' का अर्थ है 'विद्या वह है जो मुक्तिदायिनी है' अर्थात् विद्या वह है जो दिलाती है मुक्ति अनभिज्ञता से, मुक्ति रुग्णता से, मुक्ति दुर्बलता से, मुक्ति अकाल मृत्यु से, मुक्ति निर्धनता से, मुक्ति अक्षमता से, मुक्ति हीनता से, मुक्ति शोषण से, मुक्ति दुर्गुणों से, मुक्ति पशुता से, मुक्ति पराधीनता से। मुक्ति की इस व्यापक किन्तु वास्तविक संकल्पना को अंगीकार करने वाले समाज के लिए 'व्यष्टि' और 'समष्टि' के स्तर पर, एक साथ और एक ही समय में, इस महती उद्देश्य की पूर्ति अनिवार्य और अपरिहार्य हो जाती है। इस महान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए 'व्यष्टि' और 'समष्टि' का एकात्मिक चिंतन व एकीकृत प्रयास एक मात्र अभीष्ट उपकरण होता है। दुर्भाग्य से, भारतीय समाज को सुनियोजित प्रयासों द्वारा भ्रमित कर आदिकाल से चली आ रही एकात्मिक समग्र चिंतन की हमारी परम्परा को तोड़कर उसके स्थान पर 'व्यष्टि' और 'समष्टि' को अलग–अलग खानों में रखकर विचार करने वाली वर्गीकृत खण्डित चिंतन प्रणाली को पल्लवित–पुष्पित किया गया। स्वतंत्रता के पूर्व सबके समान शत्रु के रूप में विदेशी शासन की स्पष्ट पहचान होने के कारण भारतीय समाज में एकजुटता थी। इस एकजुटता के मूल में

विदेशी वैचारिक आक्रमण से 'स्वतत्व' के संरक्षण तथा 'स्वत्व बोध' के परिणामस्वरूप किसी सीमा तक उपजा एकतात्मता का भाव था। किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् अपने ही बीच छिपे भारतीय स्वतत्व के शत्रुओं को पहचानने में देश की जनता असफल रही। यही कारण है कि भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली घोर दुर्दशा का शिकार है।

अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'राग दरबारी' में श्रीलाल शुक्ल ने भारत की शिक्षा नीति को रास्ते में बैठी एक कुतिया की उपमा दी, जिसे आते जाते राहगीर लात जमाते जाते हैं। वस्तुतः स्वतंत्र भारत की शिक्षानीति वर्गीकृत चिंतन प्रणाली में प्रशिक्षित, राष्ट्रीयता के स्वाभिमान बोध से च्युत, शिक्षा के प्रति एकांगी (मात्र लौकिक) दृष्टिकोण रखने वाले तथा स्वयं को नवीन विचारों के वाहक व प्रगतिशील सिद्ध करने की होड़ में लगे राजनेताओं, शिक्षाविदों तथा शैक्षिक प्रशासकों के निर्मम्, निरंकुश तथा भ्रांत प्रयोगवाद का विषय रही है। समय के साथ कब शिक्षा मानव के सर्वांगीण विकास अथवा व्यक्ति निर्माण के माध्यम से उन्नत, सुगठित व सुदृढ़ समाज के निर्माण की प्रक्रिया के परम्परागत वाहक से बदल कर मानव संसाधन का विकास कर अर्थव्यवस्था एवं राजसत्ता के पोषण का निमित मात्र बनकर रह गई, समाज को इसका आभास भी न हुआ। भारत की शिक्षा नीति समाज, राज्य व अर्थव्यवस्था की दिग्दर्शिका की अपनी भूमिका खो बैठी और राजसत्ता द्वारा स्वीकृत 'वाद'एवं तदनुसार रचित व प्रचलित अर्थनीति से दिशा–निर्देश से पीछे–पीछे चलने वाली अनुचारी बनकर रह गई। जब महात्मा गाँधी के विचारों से अनुप्राणित कांग्रेसियों का प्रभाव केन्द्र व राज्य सरकारों पर घटने लगा तथा सत्ता की बागडोर मार्क्स के समाजवाद के प्रशंसक कांग्रेसियों के हाथ में आयी तो शिक्षा के त्वरित विस्तार और शिक्षा में व्याप्त हो रही अनियमितताओं को दूर करने के नाम पर निजी क्षेत्र द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं को राज्य के अधीन लाया गया, एक प्रकार से शिक्षा का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। उच्च शिक्षा के संदर्भ में अनुदान देने के बदले में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा राज्य सरकारें समय–समय पर उच्च शिक्षण संस्थाओं तथा विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता का हरण करती रही है और आज भी कर रही है।

1990 के दशक में उमड़ी वैश्वीकरण की आँधी ने भारत की शिक्षा नीति को भी झकझोर कर रख दिया। अर्थव्यवस्था की समस्याओं का समाधान शिक्षा के प्रति राज्य के दायित्व में कटौती के रूप में ढूँढ़ा गया। सरकारों के पास संधाधनों की कमी की दुहाई देते हुए विश्व बैंक व विश्व व्यापार संगठन की सलाह से प्रभावित होकर निजी–सार्वजनिक सम्मिलित भागीदारी प्रतिदर्श को क्रियान्वित किया जाने लगा। शिक्षा में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ाने के लिए जिस प्रकार नियमावली में परिवर्तन किए गए उसके परिणामस्वरूप शिक्षा के व्यापारीकरण को बढ़ावा मिला। अनेक बड़े व्यापारिक प्रतिष्ठान किसी अन्य व्यापार की तुलना में शिक्षा को अधिक लाभकारी पाकर अपने–अपने शिक्षण संस्थानों की स्थापना करने लगे। निजी विश्वविद्यालयों, निजी व्यवसायिक शिक्षण संस्थानों, स्ववित्त पोषित महाविद्यालयों आदि की बाढ़ सी आ गयी। सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा स्थापित पोषित संस्थान की स्ववित्त पोषित पाठ्यक्रमों को खोलकर व्यापारीकरण के इस खेल का आनन्द ले रहे हैं। भारत में, धीरे–धीरे शिक्षा 'सर्वोत्कृष्ट दान की वस्तु' से एक प्रचुर लाभ दिलाने वाली व्यापारित सेवा में रूपान्तरित होती जा रही है। यह सब कुछ विश्व व्यापार संगठन की इच्छा के अनुकूल हो रहा है। धनी देशों के दबाव में विश्व व्यापार संगठन शिक्षा को एक व्यापार योग्य सेवा के रूप में स्वीकृत करवाना चाहता है।

शिक्षा में निजी व सार्वजनिक सम्मिलित भागीदारी की वकालत करते हुए तर्क दिए जाते हैं कि इससे शिक्षा का विस्तार और गुणवत्ता में त्वरित वृद्धि होगी और इसी क्रम में शिक्षा के स्तर को अन्तर्राष्ट्रीय मानक प्रदान करने की दृष्टि से विदेशी विश्वविद्यालयों को अनुमति देने के

प्रावधान बने भी और उन पर अमल भी हुआ। किन्तु इन सबके परिणामस्वरूप शिक्षा की गुणवत्ता व समाज की दृष्टि में शिक्षण संस्थानों व शिक्षकों की प्रतिष्ठा में भारी गिरावट आई है। उच्च शिक्षा में न केवल इस पतन की विभीषिका अधिक है वरन् सरकारी नीतियों के कारण व्यापक स्तर पर कदाचार होने लगा है। बड़े–बड़े औद्योगिक घरानों द्वारा खोले गए व्यावसायिक शिक्षा संस्थान, अन्तर्राष्ट्रीय मानक तो दूर सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा स्थापित संस्थानों की बराबरी करने में भी असफल हुए हैं। सुविधा सम्पन्न कक्षाओं और छात्रावासों के कारण उच्च मध्यम व उच्च आय वर्ग के विद्यार्थियों के आकर्षण का केन्द्र अवश्य बने हैं।

शिक्षा का कार्य समाज में समता और समरसता को स्थापित करना होता है। किन्तु वर्तमान भारत में शिक्षा का चल रहा व्यापारीकरण आर्थिक विषमता के प्रभाव में शैक्षिक विषमता को बढ़ा रहा है। पुनः शैक्षिक विषमता आर्थिक विषमता को बढ़ा रही है, भारतीय समाज इस दुष्चक्र में बुरी तरह उलझ गया है। सामाजिक समरसता क्षीण हो रही है व समाज में बढ़ता तनाव यदा–कदा परिलक्षित भी होता है। इतना ही नहीं कम आर्थिक क्षमता वाले माता–पिता अपना पेट काटकर अपनी संतति को अच्छी गुणवत्ता युक्त और फलदायी (अच्छी आय प्रदान कराने वाला रोजगार दिलाने में समर्थ) शिक्षा उपलब्ध कराने के प्रयास में मानसिक तनाव से ग्रस्त होते जा रहे हैं, और मन में घर कर गई घबराहट के वशीभूत होकर अपना तनाव अपनी संतान के मन में अंतरित कर रहे है। भारत की युवा पीढ़ी एक मृग–मरीचिका में फँसती जा रही है। विद्यार्थियों में बढ़ती आत्महत्या की प्रवृत्ति, येन–केन प्रकारेण परीक्षा में सफलता प्राप्त करने के प्रयासों का चलन, साधन की शुद्वत–अशुद्धता के विचार का युवाओं में शनै–शनैः लुप्त होते जाना। मोटी आय वाला रोजगार प्राप्त करने की जीवन की सफलता का मापदण्ड बनाना आदि लक्षण इस प्रश्न को जन्म दे रहे है कि बहुसंख्य युवाओं को जो मिल रही है वह शिक्षा है या कुशिक्षा?....और यह प्रश्न दिन–दिन विकराल होता जा रहा है।

दशकों से शिक्षा नीति के नाम पर, विशेषकर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में किए गए असंगत व दिशाहीन प्रयोगों ने देश की शिक्षा प्रणाली व क्षमता में एक खोखलेपन को जन्म दिया है। चिकित्सा, अभियांत्रिकी, विधि, प्रबंध शास्त्र एवं अध्यापक प्रशिक्षण के आदि पाठ्यक्रमों के जिने संस्थान कार्यरत हैं शिक्षकों के सभी रिक्त पदों को समुचित उपाधि प्राप्त योग्य शिक्षकों से भरने के लिए जितनी योग्यता पूरी करने वाले शिक्षक चाहिए उतने शिक्षक उपलब्ध नहीं हैं। फलतः ऐसे पाठ्यक्रम चलाने वाले बहुसंख्य शिक्षण संस्थाओं में अयोग्य शिक्षकों का सहारा लिया जा रहा है। ऐसे शिक्षण संस्थानों से शिक्षा और उपाधि लेकर निकले विद्यार्थियों के रोजगार बाजार में बुरी तरह असफल रहने के कारण ऐसे शिक्षण संस्थानों की विश्वसनीयता तेजी से घट रही है और इनमें प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों का अकाल सा पड़ गया है। अनेक ऐसे शिक्षा के व्यापारी अपनी दुकान बंद कर दूसरे क्षेत्र में किस्मत आजमा रहे हैं। अनेक अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए भाँति–भांति के घोटाले कर रहे हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों, और संचार माध्यमों के गंठजोड़ ने वैश्वीकरण के पटल पर जो चकाचौंध उत्पन्न की उसके सम्मोहन में बंधे कितने ही भोले–भाले विद्यार्थी और उनके माता–पिता, जो धरातल की वास्तविकताओं से अनभिज्ञ हैं, आज की इन स्तरहीन संस्थानों का शिकार बन रहे है। यह एक प्रकार से देश की सम्पदा, संसाधन, समार्थ्य व समय का अपव्यय है।

वहीं दूसरी तरफ शिक्षा का व्यापार करने वाले इन शिक्षण संस्थानों मे से अधिकांश से शिक्षा व उपाधि लेकर निकले विद्यार्थी गुणवत्ता के मापदण्ड पर बहुत नीचे होने के कारण प्रायः अपनी शैक्षणिक उपाधि के अनुरूप रोजगार नही पाते और यदि अनुरूप रोजगार मे लगते है तो अपने कार्यक्षेत्र के निष्पादन पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव डालते है। शैक्षिक उपाधि के साथ गुणवत्ता

युक्त शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के अभाव में नए उभरते आर्थिक क्षेत्रों के अग्रणी निगमों को अपने विस्तार कार्यक्रमों को मन मसोस कर या तो सीमित करना पड़ा है या स्थगित करना पड़ा है। भारतीय सेना मे अधिकारियों के अनेक पद रिक्त पड़े हैं। रक्षा अनुसंधान व विकास संगठन के अनेक केन्द्रों की विगत कई वर्षो में कोई सार्थक उपलब्धि नही है। हजारो करोड़ वार्षिक लाभ अर्जित करने वाले भारतीय औद्योगिक नियमों का अनुसंधान व विकास में योगदान नगण्य जैसा है। मूलभूत विज्ञानो अथवा अभियाँत्रिकी, चिकित्सा आदि मे गम्भीर अनुसंधान कार्य कदाचित ही हो रहे हैं, और यह सब बातें सार्वजनिक जानकारी में हैं। बड़े प्रश्न यह हैं कि आखिर इस देश में ऐसी परिस्थितयाँ क्यों निर्माण हुई है? क्या कारण है कि स्वतंत्रता से पूर्व रवीन्द्रनाथ टैगोर और सी0 वी0 रमन धरती को अपनी कर्मभूमि बनाकर नोबल पुरस्कार प्राप्त करते हैं और आज इसी धरती पर रहकर नोबल पुरस्कार तो दूर अन्र्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त अकादमिक कृति करने वालों का अकाल पड़ा दीखता है।

क्या इस शिक्षा व्यवस्था से भारत के विश्व के सबसे युवा देश होने के सौभाग्य का लाभ उठा पाएँगे? 21वीं शताब्दी जिसमे ज्ञान आधारित उद्यम आर्थिक प्रगति के मुख्य वाहक है क्या देश की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था भारत को धनी विकसित राष्ट्रों की कतार मे लाने मे सक्षम है? विगत कुछ वर्षो से प्राथमिक कक्षाओं मे अध्यापक व चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के कुछ विज्ञापित पदों के लिए हजारों लाखो आवेदनों का प्राप्त होना तथा इन आवेदकों में शोध उपाधि तथा इंजीनियरिंग उपाधि प्राप्त अनेक आवेदकों का होना बेरोजगारी की भयावहता से कहीं अधिक भारतीय शिक्षा व्यवस्था की गुणवत्ता को दर्शाता है। उच्च शिक्षा के सर्वव्यापी व सर्वसुलभ बनाने के नारे की ओट में स्व वित्तपोषित पाठ्यक्रम व स्व वित्तपोषित संस्थानो के आवरण में जिस प्रकार शिक्षा के व्यापारीकरण को खुली छूट दी गई है, उससे उच्च शिक्षा की सर्वव्यापकता व सर्व सुलभता का उद्देश्य भविष्य में कभी भी पूरा होता नहीं दीखता।

शिक्षा क्षेत्र में निजी क्षेत्र भागीदारी प्रोत्साहित करने के नाम पर शिक्षा के व्यापारीकरण को प्रोत्साहित करने वाली शिक्षा नीतियाँ देश मे सर्वत्र न केवल प्रचलन में आ चुकी हैं वरन् पिछले ढाई–तीन दशकों में बड़े व्यापारिक/औद्योगिक समूहों/घरानो की ही भाँति राज्य व्यापारी या अन्र्तराज्यीय स्तर पर शिक्षण संस्थानों का जाल बिछाकर शैक्षिक साम्राज्य स्थापित करने वाले कई घराने या समूह खड़े हो गए हैं। शिक्षा नीति मे ये परिवर्तन एक प्रकार से देश मे वैश्वीकरण की प्रक्रिया आरम्भ होने के साथ–साथ लाए गए। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की चकाचौंध सम्मोहित समाज में अपनी स्वीकार्यता बढ़ाने व व्यापारिक हितों की पूर्ति हेतु ऊँचा शुल्क वसूलने मे सुविधा की दृष्टि से इन शिक्षण संस्थानों ने घटिया शिक्षा को भी चमकदार पाश्चात्य जीवन शैली के कलेवर में लपेट कर प्रस्तुत किया। इनकी विपणन की रणनीति सफल रहीं, ये मालामाल होते गए और आम आदमी कंगाल होता गया। परिणामतः शिक्षा के इस व्यापारीकरण ने शहरी–ग्रामीण, अमीर–गरीब व शिक्षित–अशिक्षित परिवारों के बीच असमानता की खाई को और बढ़ा दिया है। घर–परिवार के भीतर से लेकर सम्बन्धियों, मित्रो, टोले/मोहल्ले/कालोनी, परिचितों, नगरवासियों देशवासियों के साथ जोड़ने वाला भावना आधारित आत्मीयता का स्नेह सूत्र वर्तमान शिक्षा के चलते धीरे–धीरे लेन–देन के समीकरण में बदल रहा है। विषमता और अशिक्षा की दासता से मुक्ति पाने को व्यग्र भारतीय समाज को क्या वर्तमान शिक्षा व्यवस्था अशुद्ध व गुणवत्ता हीन और अनेक अर्थो में कुशिक्षा प्रदान कर एक नए संकट में डाल रही है?

निस्संदेह विगत दो–तीन दशको से चल रहे शिक्षा के अंधाधुंध व्यापारीकरण को दोषी, केन्द्र व राज्य की सरकारें हैं, किन्तु मात्र वही इसकी दोषी हैं यह सत्य नहीं है। वस्तुतः किसी भी राष्ट्र में शिक्षा को सन्मार्गी बनाए रखने का दायित्व राज्य, समाज, शिक्षक व विद्यार्थियों पर

सामूहिक रूप से होता है। शिक्षा के व्यापारीकरण के दौर में शिक्षकों की भूमिका की भी समीक्षा होनी चाहिए। यदि देखा जाए तो ब्रिटिश शासन की समाप्ति के बाद दो–ढ़ाई दशक तक विरासत मे मिली विकृत शिक्षा व्यवस्था मे देशानुकूल परिवर्तन लाने और समाजोपयोगी बनाने मे तत्कालीन शिक्षकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त होना, मातृभाषा में पठन–पाठन की व्यवस्था खड़ी करना, उच्च शिक्षा में मातृभाषा में मौलिक ग्रंथो के अभाव में अनुवादित ग्रंथ तैयार करना व मौलिक ग्रंथ लिखना, पाठ्य सामग्री को यथासम्भव देश काल के अनुरूप सुधरवाने के प्रयास व कोठारी आयोग द्वारा त्रिभाषा सूत्र दिया जाना एवं राज्य को शिक्षा पर सकल घरेलू उत्पाद के छः प्रतिशत के बराबर व्यय करने की अनुशंसा करना, इसके कुछ उदाहरण हैं। यह प्राचीन काल से भारत मे चली आ रही परम्परागत शिक्षक भूमिका के अनुरूप थी। किन्तु उसी भारत मे विगत ढाई–तीन दशकों से शिक्षा के व्यापारीकरण की प्रक्रिया निर्बाध चल रही है; शिक्षकों द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में लाई जा रही इस विकृति को रोकने के लिए संज्ञान में लेने योग्य कोई कदम अब तक नही उठाया गया है। प्रश्न यह है कि अपने वेतन, भत्ते, अधिकारो व सुविधाओं को लेकर मुखर और सक्रिय रहने वाले शिक्षक, देश व समाज के भविष्य से जुड़े इतने गम्भीर विषय पर इतना शिथिल क्यों हैं? स्वतंत्रता से लेकर अब तक यदि भारत के शिक्षा क्षेत्र का सिंहावलोकन किया जाय तो प्रथम दृष्टया दो बातें ध्यान में आती है। प्रथम,साठ के दशक के अन्तिम वर्षों मे साम्यवादी शासन प्रणाली व चिंतन के प्रभाव मे आरम्भ हुई राष्ट्रीयकरण की प्रक्रिया शिक्षा क्षेत्र में समाज (निजी क्षेत्र) की परम्परा से चली आ रही भूमिका को नकारने में परिणित हुई। शिक्षा को पूरी तरह राज्य के अधीन लाने के व्यापक प्रयास हुए। राजनीतिक हितों की पूर्ति के लिए शिक्षण संस्थानों को समाजवादी चिंतन के प्रसार केन्द्रों में परिवर्तित करने के बड़े पैमाने पर प्रयास हुए। राजसत्ता द्वारा देश भर मे समाजवादी चिंतन के पक्ष मे वातावरण बनाया गया। ऐसे वातावरण में शिक्षा ग्रहण कर शिक्षक का दायित्व स्वीकारने वाले हमारे अधिकांश शिक्षक व्यक्ति के व्यक्ति से एकात्मता के सूत्र में बँधने से सृजित समाज की नीति के वाहक होने की अपनी परम्परागत भूमिका को छोड़कर, एक समान स्वार्थ रखने वाले लोगों की संगठित शक्ति खड़ी कर वर्ग हित के लिए संघर्ष करने का आह्वान करने वाले समाजवादी चिंतन के अनुरूप 'वर्ग चेतना' के धारक बन गये। शिक्षकों ने वृहत्तर समाज हित में व्यक्तिगत व अपने वर्ग का हित सुनिश्चित करने का मार्ग छोड़, वर्गहित को सर्वोपरि रखकर संघर्ष करने की राह अपना ली। समाज स्वार्थ की आधार शिला पर खड़े शिक्षकों के लिए शिक्षा का परमार्थकारी पक्ष शनैः शनैः गौण होता चला गया। द्वितीय, आर्थिक उपलब्धि को सर्वोपरि मानने वाले साम्यवादी/समाजवादी चिंतन के प्रभाव मे फ्रायड के स्वार्थी मनुष्य ने भारत के सांस्कृतिक परमार्थी मनुष्य को एक प्रकार से बेदखल कर दिया और यही कारण है कि जब 20वीं शताब्दी के अन्तिम दशक मे वैश्वीकरण के आवरण मे विश्व के बाजारों के एकीकरण के लिए विश्व भर मे चतुर्दिक बाजारीकरण की प्रक्रिया आरम्भ की और करायी गयी और भारत ने भी कतिपय कारणों से इसे स्वीकार किया, तब भारत मे विश्व व्यापार संगठन की मंशा के अनुरूप शिक्षा क्षेत्र को 'दान योग सेवा क्षेत्र' से 'व्यापार योग्य सेवा क्षेत्र' में बदलने के लिए 'निजी सार्वजनिक भागीदारी' के नाम पर शिक्षा के व्यापार के रास्ते खोले जाने लगे। शिक्षा क्षेत्र मे किए जा रहे इन परिवर्तनों का सार्वजनिक क्षेत्र के शिक्षण संस्थानों में कार्यरत शिक्षकों की सेवा शर्तो पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ रहा था, उल्टे पाँचवे व छठें वेतन आयोग द्वारा शिक्षकों के वेतन व भत्ते मे की गई भारी वृद्धि को शिक्षकों ने वैश्वीकरण की प्रक्रिया के लाभांश के रूप में देखा। अपने हितों की कोई क्षति न दिखने से इन शिक्षकों को इस पूरी उथल–पुथल मे अपनी कोई भूमिका नहीं दिखाई दी, फलतः न कोई आन्दोलन हुआ और न कोई प्रतिरोध खड़ा हुआ

और भारत के शिक्षा क्षेत्र में, विगत दो–तीन दशको मे, अनेक स्तरों पर, अनेक प्रकार की विकृतियाँ अपनी जड़े जमा ली हैं।

वस्तुतः साम्यवाद व पूँजीवाद दोनों ही मनुष्य को मूलतः स्वार्थी मानते हैं। दोनों ही मनुष्य के स्वार्थों (भौतिक उपलब्धियों) की पूर्ति को सर्वोपरि मानते हैं। पूँजीवाद के अनुसार मनुष्य के स्वार्थो की पूर्ति का सबसे उत्तम साधन 'बाजार' है। अतः वह उसे स्वतंत्र छोड़ने की वकालत करता है। परन्तु बाज़ार, उन सभी लोगों के प्रति, जो बाजार में भागीदारी करने की सामर्थ्य नही रखते, असंवेदनशील होता है। इसी प्रकार साम्यवाद की दृष्टि मे समान स्वार्थ रखने वालो की वर्ग चेतना के आधार पर एक वर्ग शक्ति खड़ी कर वर्ग–संघर्ष करना मनुष्य के स्वार्थों की पूर्ति का एकमात्र मार्ग है, परन्तु वर्ग चेतना भी वर्ग के बाहर वालों के प्रति असंवेदनशील होती है। इस असंवेदनशीलताओं के मूल में वर्गीकृत चिंतन प्रक्रिया है। पूँजीवाद व साम्यवाद, दोनो में ही चराचर जगत (जल, भूमि, पर्वत, वनस्पति, पशु, पक्षी व मनुष्य) को वर्गों मे बाँटकर खण्ड–खण्ड विचार करने की पद्धति है। खण्डित चिंतन आत्माओं को एकसूत्र में बँधने से रोकते हैं। ऐसे मे न केवल विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं, वरन् पल्लवित व पुष्पित भी होती हैं। इन विकृतियों से मुक्त कराना ही उच्च शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।

संदर्भ :

1. आर0 प्रकाश–इनसाइक्लोपीडिया ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, कामनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
2. एम0पी0 चौधरी–भारत में उच्च शिक्षा और समस्याएँ, ग्रन्थ शिल्पी पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
3. रमन विहारी लाल–भारतीय शिक्षा का विकास एवं उसकी समस्याएँ।
4. राम सकल पाण्डेय–उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक।
5. एस0पी0गुप्ता–भारतीय शिक्षा का विकास, सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद।
6. सुरेश भटनाकर–आधुनिक भारतीय शिक्षा एवं उसकी समस्याएँ।

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

भारत का सामाजिक न्याय की अवधारणा

खुर्शीद आलम खान
अस्सिटेन्ट प्रोफेसर
विधि विभाग
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

'समाजिक न्याय' की अवधारणा एक बहुत ही व्यापक शब्द है। इस अवधारणा के मूल में मनुष्यों को सभी आधारों पर समान मानने का विचार है। इसके अनुसार सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, नस्लीय या लिंग सम्बन्धी पूर्वाग्रहों के आधार पर किसी मनुष्य के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाना चाहिये। सभी को विकास के समान अवसर उपलब्ध हो। सामाजिक न्याय का अंतिम लक्ष्य यह भी है कि सामज का प्रत्येक वर्ग की विकास में भागीदारी सुनिश्चित हो। पश्चिम के देशों में सामान्यतः 'सामाजिक न्याय' की अवधारणा 'विधि के समक्ष समता' तथा 'विधि के शासन' तक सीमित रह जाती है। परंतु भारत में इस अवधारणा के अंतर्गत सामाजिक कुरीतियाँ, दुराचार, निर्धनता, बीमारी, बेरोजगारी, भूखमरी जैसी समस्याओं का निवारण भी शामिल है। इसका कारण यह है कि भारत में इन कारकों का भी सामाजिक असमानता पैदा करने में योगदान रहा है।

समाजिक न्याय का संबंध उन निहित स्वार्थों को समाप्त करने से है जो लोकहित की पूर्ति के मार्ग में और उन स्वार्थों को बनाये रखने के पक्ष में है। इस कारण भारत जैसे विकासशील देशो में सामाजिक न्याय का आदर्श राज्य को यह करना बाध्यकारी बना देता है कि वह समाज में पिछड़े और कमजोर वर्गो की स्थिति सुधारने के लिए ईमानदारी से प्रयास करें। सामाजिक न्याय की मांग यह है कि समाज के निर्धन, पिछड़े एवं सुविधाहीन वर्गो को अपनी सामाजिक आर्थिक असमर्थताओं पर काबू पाने और अपने जीवन स्तर में सुधार करने के योग्य एवं समर्थ बनाया जाए, समाज के सुविधावंचित वर्गो निर्धन, पिछड़े वर्गो, बच्चों महिलाओं, अल्पसंख्याओं, दिव्यांगजनों की इस प्रकार सामाजिक, आर्थिक एवं वैधानिक सहायता की जाये जिससे शोषणविहीन समाज का निर्माण हो।

समाजिक न्याय के सिद्धांत

देश के संसाधनों तक सभी की पहुंच–

सभी नागरिकों की बिना किसी भेदभाव के देश के संसाधनों तक पहुच सामाजिक न्याय का एक मूलभूत सिद्धांत है। इससे यह पता चलता है कि देश के सभी सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक समूहों की देश के संसाधनों तक समान पहुंच है जिससे सभी समूहों के जीवन में समान शुरूआत हो। दुर्भाग्य से भारत में कई क्षेत्रों में सभी समूहों की पहुंच समान नहीं है, जिसके कारण सामाजिक न्याय की परिकल्पना अभी पूर्ण नहीं हो पा रही है।

देश के निर्णय में सभी की भागीदारी–

सभी व्यक्तियों को देश और अपने जीवन को प्रभावित करने वाले निर्णयों में भाग लेने का अधिकार होना चाहिए उन्हे इस अधिकार से किसी भीा आधार पर वंचित नहीं किया जा सकता।

भागीदारी व्यक्तियों के लिए उनकी भलाई को प्रभावित करने वाली नीतियों के निर्माण में भाग लेने के अवसर और मंच को संदर्भित करती है। भारत में सामाजिक न्याय की अवधारणा को प्राप्त करने के लिए सभी नागरिकों को मत देने का अधिकार बिना किसी भेदभाव के प्राप्त है। पंचायती राज एवं नगर निकाय के माध्यम से देश की नीति एवं योजनाओं के निर्माण में सहभागिता प्रदान की गयी है।

<u>निर्बल वर्ग को विशेष संरक्षण–</u>

देश के वो वर्ग जो अन्य वर्गो की तुलना में सामाजिक–आर्थिक रूप से पिछड़ गये है। उन वर्गो को विशेष सहायता एवं आरक्षण के माध्यम से देश के विकास के साथ लाना है तांकि एक ऐसा समाज निर्मित हो जिसमें सभी वर्गो को आगे बढ़ने का समान अवर प्राप्त हो। सामाजिक न्याय का यही कर्म है कि निर्वल वर्ग को समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए समाजिक, आर्थिक एवं वैधानिक प्रावधान किया जाये एवं उसका प्रयास भी करना चाहिये। भारत में इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास दिये है। आरक्षण एवं जनकल्याण योजनाओं के माध्यम से सामाजिक न्याय की अवधारणा को सत्य करने का सतत प्रयास किया जा रहा है।

<u>मानवाधिकार–</u>

सामाजिक न्याय के सिद्धांत का प्रमुख्य आधार मानवधिकार है। मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय घनिष्ठ रू‍ से एक दूसरे से जुड़े हुए है अर्थात थे एक–दूसरे के पर्याप्त है। एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती है। भारत में संविधान में मूल अधिकारों एवं अन्य विधिक एवं संवैधानिक प्रावधानों के माध्यम से लोगों को मानवाधिकार एवं अन्य बुनियादी अधिकार प्रदान दिये गये है।

<u>अनेकता–</u>

समाज में प्रत्येक स्तर पर अनेकता पापी जाती है, सभी वर्गों के सांस्कृतिक मूल्य अलग–अलग होते है। नीति निर्माता के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वह सभी वर्गो की बाधा को समझे। जिस बाधा के कारण जो वर्ग समाज की मुख्य धारा में नहीं आ पा रहा है, उन बाधाओं को पहचान कर दूर किया जाये। नीति निर्माता का यह दायित्व है कि वह ऐसे वर्ग को अधिक अवसर एवं प्रोत्साहन प्रदान करें जो समाज में सबसे पिछड़े है। ऐसी नीतियों के माध्यम से सामाजिक न्याय की परिकल्पना पूर्ण हो सकेगी।

<u>संवैधानिक प्रावधान–</u>

भारत में सामाजिक न्याय की अवधारणा को पूर्णरूपेण स्वीकार करते हुए संविधान की प्रस्तावना में भी सामाजिक न्याय का उल्लेख दिया गया है। इसके अतिरिक्त भारत के संविधान में सामाजिक न्याय को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित प्रावधान किये गये है–

<u>अनुच्छेद 15–</u>

किसी भी व्यक्ति के साथ धर्म, जाति, लिंग, मूलवंश, अथवा जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव प्रतिबंधित किया गया है व इसी अनुच्छेद में सामाजिक आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गो तथा अनुसूचित जातियों व जनजातियों, महिलाओं एवं बच्चों के सामाजिक उत्थान के लिए विशेष प्रावधान करने की छूट राज्य को दी गयी है।

अनुच्छेद–16

लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता के साथ–साथ पिछड़े नागरिकों को जिनका प्रतिनिधित्व सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, उन्हे सामाजिक न्याय के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, आरक्षण का प्रावधान दिया गया है।

अनुच्छेद–17

अस्पृश्यता जैसी सामाजिक बुराई को प्रतिंबधित दिया गया है तथा अस्पृश्यता का अनुसरण करने को दंडनीय अपराध माना गया है।

अनुच्छेद–23

सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने की दिशा में निर्धनता एक बड़ी बाधा है। निर्धनता के कारनण श्रमिकों को अत्यंत क वेतन पर मजदूरी करनी पड़तीहै। इसके अतिरिक्त बेगारी बंधुआ मजदूरी जैसी प्रथाओं द्वारा मजदूरों का शोषण दिया जाता है। अनुच्छेद 23 के अंतर्गत बंगारी, बंधुआ मजदूरी आदि को भी प्रतिवंधित किया है।

अनुच्छेद–24

बाल मजदूरी पर प्रतिबंध लगया गया है। इसी दिशा में बाल श्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम के माध्यम से इसे रोकने तथा बच्चों के लिए एक सुरक्षित बचपन सुनिश्चित करने की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास दिये गए है।

अनुच्छेद–25

इस अनुच्छेद में अंतरात्मा की स्वतंत्रता और अभ्यास एंव प्रचार की स्वतंत्रता और धार्मिक, अभ्यास एवं प्रचार की स्वतंत्रता दी गयी है। इसके कारण धार्मिक अल्पसंख्यक को भी समाज में समानता का अधिकार मिलता है, जो सामाजिक न्याय के लिए आवश्यक है।

अनुच्छेद–39

राज्य द्वारा पालन किये जाने वाले नीति के कुछ सिंद्धात दिये गये है, जो सामाजिक न्याय के लिए अनिवार्य एवं आवश्यक है।

अनुच्छेद–39 अ

सामाजिक न्याय के संदर्भ में, इस अनुच्छेद में समान न्याय और मुफ्त कानूनी सहायता के बारे में कहा गया है।

अनुच्छेद–46

अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों और अन्य कमजोर वर्गो की शिक्षा के क्षेत्र और शिक्षा एवं आर्थिक मामलों से संबंधित हर चीज को बढ़ावा देने के लिए कहा गया है और उन्हें सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से बचाएगा।

अनुच्छेद–330

लोक सभा में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए सीटों के आरक्षण का प्रावधान है।

अनुच्छेद–332

राज्यों की विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए सीटों के आरक्षण का प्रावधान है।

अनुच्छेद–338

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग

अनुच्छेद–340

राष्ट्रीय पिछ़डावर्ग आयोग

अनुच्छेद–243 डी

पंचायतों में अनुसूचित जाति एवं जनजाति, पिछड़ा वर्ग एवं महिलाओं के लिए सीटों के आरक्षण का प्रावधान है।

अनुच्छेद–243 टी

नगर पालिकाओं में अनुसूचित जाति एवं जनजाति, पिछड़ा वर्ग एवं महिलाओं के लिए सीटों के आरक्षण का प्रावधान है।

संवैधानिक उपायों के अतिरिक्त विधायिका ने अनुसूचित जाति एवं जनजाति एवं सामजिक–आर्थिक रू५ से पिछड़े वर्गों को सरकारी नौकरियों व सरकारी शिक्षण संस्थानो में प्रवेश देने के लिए आरक्षण की व्यवस्था की है। दहेज अधिनियम, घरेलू हिंसा के विरूद्ध संरक्षण अधिनियम आदि के माध्यम से महिलाओं की वेहतर सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति सुनिश्चित करने तथा उन पर हो रहे अत्याचार को रोकने की दिशा में कई प्रभावी कदम उठाए गए। अनुसूचित जाति एवं जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम, 1989 के माध्यम से इन वंचित वर्गो को संरक्षण प्रदान की गयी है।

सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने की दिशा में दिये गये उल्लेखनीय शासकीय प्रयासों के बाद भी भारत में सामाजिक न्याय की प्रास्थिति आज भी बहुत उन्नत दशा में नहीं कही जा सकती। दलितों, महिलाओं एवं अल्पसंख्याकों के संरक्षण में अनेक विधिक प्रावधानों एवं अधिनियमों के बाबजूद उनके विरूद्ध अत्याचार में चितांजनक वृद्धि देखी गयी है। कई अवसरों पर भारत में महिला सुरक्षा सवंधित प्रश्न उठे है। इसके अतिरिक्त धार्मिक अतिार का तत्व भी भारत में सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने की दिशा में एक बाधा के रूप में देखा जा रहा है। भारत पिछले कई दशकों से तीव्र आर्थिक वृद्धि दर अर्जित कर रहा है, परन्तु पर्याप्त रोजगार सृजन न हो, पाने के कारण यहाँ व्यापक रू५ से रोजगार विहिनी संवृद्धि हो रही है। इस कारण भारत में निर्धनता, अशिक्षा, पिछड़ेपन जैसी सामाजिक न्याय को पीछे धकेलने वाली प्रवृत्तियाँ बढ़ रहीं है। समाज में एक समान व न्यायपूर्ण व्यवस्था सुनिश्चित न कर पाने में भ्रष्टाचार सबसे बड़ी समस्या रहा है। नौकरशाही के चलते शासकीय योजनाओं का लाभ वंचित समूहों को भी नहीं मिल पा रहा है। यह समस्या सरकार द्वारा भेजी गयी आर्थिक सहायता के विषय में अधिक देखी जा रहीं है। ये सभी समस्याएँ भारत में सामाजिक न्याय की स्थिति का महत्व को रेखाकिंत करती है।

सुझाव–

आज के युग में सामाजिक अन्याय जीवन में सभी क्षेत्रों में देखे जा सकते है चाहे शिक्षा, या राजनीति हो, श्रम या स्वास्थ्य देखभाल हो, पर्यावरण या नीति हो। सामाजिक न्याय आज के विश्व में वाद–विवाद और चर्चा का महत्वपूर्ण विषय बन गया है क्योकि यह लोगों के जीवन से जुड़ा विषय है। बहोत से ढंग है जिसके माध्यम से हम सामाजिक न्याय को सुरक्षित और उचित ढंग से प्रदान करने का प्रयास कर सकते है।

हमें स्वंय और लोगों को सामाजिक न्याय के महत्व के विषय में शिक्षित करके इसके लक्ष्य को प्राप्त कर सकते है। हमें समझना पड़ेगा कि किसी समाज की शांति एवं विकास तभी होगा जब उस समाज का सबसे पिछड़ा वर्ग समाज की मुख्यधारा में आयेगा।

जिस वर्ग को सामाजिक न्याय प्रदान करना है उस वर्ग के सदस्यों से सम्बन्ध स्थापित कर उस वर्ग का सदस्य बन कर लोगो की मदद करनी होगी और एक–दूसरे के प्रति जबाबदेही रखनी होगी।

समाजिक न्याय आन्दोलन तभी सफल हो सकता है। जब आन्दोलन का कार्यकर्ता पहले अपने स्वंय के समाज को सामाजिक न्याय प्रदान करने का कार्य करें। इससे उसकी विश्वसनीयता अन्य पिछड़े वर्ग में बढ़ेगी और वह सहर्ष स्वीकार करके सामाजिक न्याय स्वयं एवं अन्य को प्रदान करेगी।

सामाजिक न्याय के प्रति लोगो को सक्रिय करने का सोशल मीडिया अच्छा स्थान है। इसके माध्यम से सामाजिक न्याय के प्रति लोगों में चेतना प्रवाहित होगी। लोग अपने अधिकारों एवं दायित्वों के प्रति संचते होगे। नीति निर्माताओं एवं सरकार पर दबाब पड़ेगा कि सामाजिक न्याय सभी तक पहुचें।

निष्कर्ष–

न्याय निष्पक्षता की अवधारणा है। सामाजिक न्याय समाज में निष्पक्षता की अभिव्यक्ति है। निष्पक्षता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपस्थित होनी चाहिए भेदभाव और सामाजिक न्याय साथ–साथ नहीं होता है। सामाजिक अन्याय भारतीय समाज प्रमुख समस्या है। समाज का सामाजिक स्तरीकरण प्रत्येक जाति या वर्ग के अनुसार भिन्न–भिन्न होता है, हमे सभी की समस्याओं को समझकर उनका समाधान करके उन्हे सामाज की मुख्य धारा में लाकर सभी के साथ खड़ा करना है।

सरकार एवं लोगों को संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार कार्य कर के समाज को सामाजिक न्याय प्रदान करने का प्रयास करना चाहिये। सामाजिक न्याय केवल न्यायपालिका के माध्यक के प्रदान नहीं किया जा सकता है। कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका को समन्वय बना कर उपेक्षित एवं अंतिम वर्ग तक को न्याय पहुचाकर उनहे सशक्त किया जा सकता है। लोगों को भी वैधानिक प्रावधानों एवं सरकार की समाजिक योजनाओं का सम्मान करते हुए इसे समाज के जरूरतमंद वर्गो तक पहुचाकर समाजिक न्याय की संकल्पना को पूर्ण करने में सहयोग प्रदान करना चाहिये। आज मूल आवश्यकता इन समाजिक वर्गो के प्रति शेष समाज में विभेदकारी सोच को समाप्त करने की है। विश्व भारत को इन वर्ग–विभेदों के लिये नहीं बल्कि इसकी सामाजिक–सांस्कृतिक एकता व अखंडता के लिये जानता है। आशा है कि सरदारों व समाज में समग्र प्रयासों से इन वर्ग विभेदों को समाप्त कर भारत की संकल्पना को मजबूत करने की दिशा में कदम बढ़ाये जायेगें।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1– भारत का संविधान–एम0पी0जैन

2– भारत का संविधान–वी0एन0 शुक्ला

3– संविधान का वेयर एक्ट

4– कांस्टूयूशनल इन्फेसिस आन सोशल जस्टिश–शेनगुदृवन0वी0

5– https://hindicom./social justice

6– https://www.lawyersnjustice.com

7– www.legalservicesindia.com

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

कामायनी में अलंकार तत्व

वनीत कौर
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर
जम्मू व कश्मीर–190006

अलंकार शब्द अपने आप में व्यापक है, किन्तु परवर्ती विद्वानों ने उसका अर्थ–संकुचन किया है। कहा जाता है–''अलंकरोति इति अलंकारः।'' जो शोभित करता है वह अलंकार है। या ''अलंक्रियतेऽनेनेत्यलंकारः।'' जिसके द्वारा शोभा होती है। प्रथमतः आचार्य भामक ने कहा कि –

''न कान्तमपि निर्भुषं विभाति वनिता मुखम्।''

किन्तु आचार्य दण्डी ने स्पष्ट किया है–

'काव्यशोभाकरान् धर्मान्लंकरान् प्रचक्षते।'

हिन्दी में केशव ने आवृत्ति की है–

'भूषण बिन न बिराजयी, कविता, वनिता मित।'

अलंकार शब्द प्राचीनों के अनुसार कला का द्योतक है, कला के मध्य भाव व शिल्प का भेद नहीं रखा गया है, किन्तु नवीन विद्वानों ने अलंकार का अर्थ शिल्प व कला का अर्थ भी शिल्प पर्वत घोषित किया है। यहाँ शिल्प के रूप में अलंकार को प्रस्तुत किया गया है।

श्री जयशंकर प्रसाद ने कला शब्द की व्याख्या व्यापक धरातक पर प्रस्तुत किया है। वे कला के मध्य वस्तु व शिल्प दोनों का अंतर्भाव करते हैं। पारम्परिक रूपक अलंकार के अधिकांश उदाहरण कामायनी में उपलब्ध हैं–

''ओ चिंता की पहली रेखा
अरे विश्व–वन की व्याली।''

या

''हे अभाव की चपल बालिके
री ललाट की चल रेखा।।''

यहाँ भी निरंग रूपक व उल्लेख अलंकार है।

कवि ने 'परिकरांकुर' व 'रूपकातिशयोक्ति' अलंकार का उत्कृष्ट उदाहरण भी प्रस्तुत किया है–

''चिन्ता करता हूँ मैं जितनी
उस अतीत की उस सुख की।

उतनी ही अनंत में बनती
जाती रेखाएँ दुख की।।''[1]

उसी प्रकार 'परिकर' अलंकार भी दृष्टव्य है–

''आह सर्ग के अग्र–दूत तुम
असफल हुए, विलीन न हुए।''[2]

यत्र–तत्र विरोधाभास अलंकार भी आ गया है–

''मणिदीपों के अंधकारमय,
अरे निरासापूर्ण भविष्य।''[3]

मानवीकरण अलंकार अधिकांशतः प्रयोग किया है–

''कीर्ति, दीप्ति, शोभा थी नचती,
अरूण किरण सी चारों ओर।।''

उपमां अलंकार भी आ गया है–

''अब न कपोलों पर छाया–सी।''

प्रसाद जी ने अनुमानतः अनेक अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया है। वे अलंकार भाव की समृद्धि हेतु अधिक सहायक दिखते हैं। यथा–

पुनरूक्ति प्रकाश–

''धीरे–धीरे हिय अच्छादन,
हटने लगा धरातल से।।''[4]

रूपक –

''सिन्धु सेज पर धरा वधू
अब तनिक संकुचित बैठी सी।''

हेतुत्प्रेक्षा –

''उस असीम नीले अंचल में
देख किसी की मृदु मुस्कान।
मानो किसी हिमालय की है,
फुट चली करती कल गान।''

उत्प्रेक्षा–

''सन्ध्या धन माला की सुंदर,
ओढ़े रंग–बिरंगी छींट।
गगन चुंबिनी शैल श्रेणियां

पहने हुए तुषार किरीट।।''

श्री जयशंकर प्रसाद एक कुशल कवि शिल्पी हैं, वे शब्दों का निर्माण करते हैं, कहीं उपसर्ग आदि बढ़ा देते हैं, तो कहीं शब्द–संक्षिप्तीकरण करते हैं। यथा–मकरन्द हेतु मकरन्द 'किसलय' शब्द से संतोष नहीं होता, तो नव किसलय, नव पल्लव, नव कुसुम शब्द प्रकट करते हैं।

''अलंकार चाहे अप्रस्तुत वस्त–योजना के रूप में हो (जैसे, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, उत्प्रेक्षा इत्यादि में), चाहे वाक्य वक्रता के रूप में (जैसे, अप्रस्तुत–प्रशंसा, परिसंख्या, ब्याज–स्तुति, विरोध इत्यादि में) चाहे वर्ण विन्यास के रूप में (जैसे, अनुप्रास में) लाए जाते हैं, वे प्रस्तुत भाव या भावना के उत्कर्ष–साधन के लिए ही मुख के वर्णन में जो कमल, चन्द्र आदि सामने रखे जाते हैं, वह इसीलिए जिनमें इनकी वर्ण–रूचिरता, कोमलता, दीप्ति इत्यादि के योग के सौंदर्य की भावना और बढ़े।''[5]

उपर्युक्त का सारांश है प्रसाद जी ने अपने काव्य में रस व भाव के उत्कर्ष हेतु अलंकार का प्रयोग किया है। वे अलंकार स्वभावतः आते गये हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. कामायनी–जयशंकर प्रसाद, पृ0सं0 12, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2007
2. वही, पृ0सं0 12
3. वही, पृ0सं0 12
4. वही, पृ0सं0 17
5. चिन्तामणि–रामचन्द्र शुक्ल, प्र0सं0 111, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2002 ई0

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

'मैला आँचल' की भाषा

डॉ. काली चरण झा
सहायक प्राध्यापक
हिन्दी विभाग
त्रिपुरा विश्वविद्यालय
सूर्यमणिनगर
त्रिपुरा पश्चिम- 799022

फणीश्वरनाथ रेणु की साहित्यिक प्रतिभा उपन्यास, कहानी के अतिरिक्त निबंध, रेखाचित्र, रीपोरताज तथा काव्य के क्षेत्र में भी दृष्टिगत होती है।उनकी छः औपन्यासिक कृतियाँ हैं- 'मैला आँचल' (1954), 'परती परिकथा' (1957), 'दीर्घतपा' (1963), 'जुलूस' (1965), 'कितने चौराहे' (1966) और 'पलटूबाबू रोड' (1979)। उनके प्रकाशित कहानी संग्रह हैं- 'ठुमरी' (1959), 'आदिम रात्रि की महक' (1967), 'अग्निखोर' (1973), 'मेरी प्रिय कहानियाँ' (1977), 'एक श्रावणी दोपहरी की धूप' (1984) और 'अच्छे आदमी' (1986)। रिपोरताज, रेखाचित्र एवं व्यक्तिगत निबंध-संग्रहों की संख्या पाँच हैं- 'नेपाली क्रांति कथा' (1977), 'ऋणजल धनजल' (1977), 'वन तुलसी की गंध' (1984), 'श्रुत अश्रुत पूर्व' (1984) और 'एकांकी के दृश्य' (1986)। इसके साथ ही रेणु द्वारा एक व्यंग्य नाटक 'उत्तर नेहरू चरितम' (1950) भी लिखा गया है। रेणु ने कुछ कविताएं और गीत भी लिखे थे उनकी एक कविता 'मेरा मीत सनीचर' विशेष ख्यातिलब्ध है।

सन् 1954 ई. में प्रकाशित फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' का कथा क्षेत्र मिथिला के राज पारबंगा (तीरहुत) के तहसीलदार के अंतर्गत पड़ने वाला क्षेत्र-विशेष है। इसमें लगभग सन् 1945 ई. से लेकर सन् 1948 ई. तक की कालावधि को कथानक का आधार बनाया गया है। उपन्यास के पहले खंड में लगभग सन् 1945 ई. से स्वतंत्रता प्राप्ति अर्थात् 15 अगस्त 1947 ई. के कुछ पूर्व तक की कालावधि का चित्रण हुआ है जबकि दूसरे खंड में स्वतंत्रता से लेकर महात्मा गांधी की मृत्यु अर्थात् 30 जनवरी 1930 ई. के कुछ बाद तक की घटनाओं को समेटने का प्रयास किया गया है। यद्यपि यह भी सही है कि स्मृतियों के रूप में यह आजादी की लड़ाई के लगभग सत्रह वर्षों (सन् 1930 ई. के नामक आंदोलन से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक) को भी

समेटता दिखाई देता है, किन्तु मुख्य कथा स्वतंत्रता प्राप्ति के इर्द-गिर्द ही घूमती रहती है।

कथानक का क्षेत्र है- पूर्णिया (बिहार) जिले का एक अत्यंत पिछड़ा गाँव- मेरीगंज, जिसमें 'बारहों बरन के लोग रहते हैं।' गाँव में जाति का विशेष महत्व है। विभिन्न टोलों के नाम भी जाति के आधार पर रखे गए हैं- राजपूत टोली, यादव टोली, कोइरी टोली आदि। गाँव के थोड़ा बाहर एक टोला संथालों का है। "सारे मेरीगंज में दस आदमी पढे-लिखे हैं- पढे-लिखे का मतलब हुआ अपना दस्तखत करने से लेकर तहसीलदारी करने तक की पढ़ाई। नए पढ़नेवालों की संख्या है पंद्रह।" [1]अधिकांश ग्रामीण आर्थिक विपन्नता से ग्रस्त हैं। उनकी बदहाली, अत्यंत पिछड़ी मानसिकता, अंधविश्वासग्रस्तता आदि मेरीगंज के ग्रामीणों में दिखाई देता है।वस्तुतः इस क्षेत्र-विशेष की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि विविध पहलुओं का बारीक चित्रण इस कृति में किया गया है। हकीकत तो यह है कि लेखक ने अभिनव भाषा-शैली में 'मेरीगंज' के समस्त जीवन के सद्-असद्, सौन्दर्य-असौन्दर्य की ओर इस प्रकार संकेत किया है कि अंचल विशेष जीवंत हो उठा है। वस्तुतः यह कृति रेणु की रचनात्मक कौशल का अन्यतम उदाहरण है।

फणीश्वरनाथ रेणु कृत 'मैला आँचल' की एक अन्यतम उपलब्धि है- उसकी भाषिक संरचना। शब्द-चयन, आँचलिक भाषा की सार्थकता, पात्रानुकूलता, भावानुकूलता, मुहावरों व लोकोक्तियों का सफल प्रयोग आदि विशिष्टताएं इस कृति की खासियत है। ऐसा कहा जाता है कि रेणु ने विवेच्य उपन्यास में लोकधर्मी भाषा-शैली का निर्माण किया है। लोक जीवनके विविध पहलुओं को उन्होंने इस भाषा-शैली के माध्यम से साकार रूप प्रदान किया है। ऐसे में देशज शब्दों का सहज और सरल प्रयोग विशेष ध्यान आकर्षित करता है। "देशज शब्दों की मिठास को उन्होंने ठीक-ठीक पहचाना है। ये देशज शब्द केवल भाषा की आधार-शिला ही नहीं हैं, उनका काम झरोखे और मेहराब भी बनाना है। उन्होंने लोक जीवन की भाषा उठाकर हिन्दी के अभिजात किन्तु मृतवत औपन्यासिक गद्य को नई ताजगी प्रदान की। उसकी ताजगी हमें छूती है। भाषा की ताजगी के कारण अश्लील गालियाँ भी ब-खूबी पच गई है। लोक भाषा में अश्लीलता को वहन करने का जो सहज गुण होता है, वह परिनिष्ठित भाषा में अप्राप्य है। परिनिष्ठित भाषा जब समकालीन लोक-भाषा के संपर्क में आती है तब उसमें नई ऊष्मा

और प्राणवंतता का संचार होता है। इस प्रकार रेणु ने भाषा के क्षेत्र में, एक ऐतिहासिक दायित्व को पूरा किया।"[2]

'मैला आँचल' में रेणु की भाषा में देशज शब्दों का प्रयोग अधिक मिलता है, जिसे आँचलिक उपन्यासों की प्रवृत्ति के रूप में अंगीकार करने की बात रामदरश मिश्र करते हैं और इसमें कोई हिचक भी नहीं होनी चाहिए। देखा जाए तो इन देशज शब्दों की भाषा बिहार के मिथिला अञ्चल में बोली जाने वाली भाषा है। किन्तु, "यह सर्जन की अनिवार्य माँग है, दो तरह से- एकतो स्थान विशेष का वातावरण चित्रित करने के लिए, दूसरे वहाँ के जीवन को जीवंतता और उसकी मूल सहजता के साथ अंकित करने के लिए। भाषा ऊपर से ओढ़ी हुई चीज नहीं होती, वह स्थान विशेष के लोगों के संस्कारों और अनुभूति के साथ अनिवार्य भाव से संपृक्त होती है। अतः कुछ शब्द, मुहावरे इस प्रकार वहाँ के जीवन-मूल्यों के साथ जुड़े होते हैं कि वे व्यक्ति विशेष के साथ स्वतः लगे हुए चले आते हैं।" [3]वस्तुतः ग्रामीण यथार्थ से रूबरु कराने के लिए रेणु ने ग्रामीण बोलचाल पर आधारित हिन्दी की नई शैली विकसित की है। "यह स्थानीय बोली नहीं है जो शहरी पाठकों के समझ में नहीं आएगी और जो रेणु को पूर्णियाँ के पाठकों तक ही सीमित कर देगी। अपने मूल रूप में यह भाषा परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा से उसी मात्रा में भिन्न है जिस मात्रा में अशिक्षित हिन्दी भाषियों की बोली के लिपिबद्ध रूप भिन्न हैं।" [4]हकीकत तो यह है कि इसकी ठेठ आँचलिकता भूमंडलीकरण वाली विचारधारा के सामने एक चुनौती की तरह है। वह चाहे जितनी ठेठ हो, उसकी जड़ें हैं, परंपरा है और सांस्कृतिक समृद्धि है तभी वह सजीव भी है औरों से अलग भी।

रेणु की इस भाषा शैली पर कुछ आलोचकों ने आपत्ति भी जताई है। रेणु पर हिन्दी भाषा को भ्रष्ट करने का आरोप लगाते हुए यह भी कहा गया है कि वह कलाकार की स्वतंत्रता का दुरुपयोग कर रहे हैं। किन्तु, "मैला आँचल' की भाषा के विविध आयाम में और रेणु के ग्रामीणों के सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर में एक सहज रिश्ता है।.. अपनी स्पष्टता और सरलता में यह भाषा भारत के आम ग्रामीण लोगों के बहुत करीब है। सीधे सम्प्रेषण के उद्येश्य के लिए रेणु परिष्कृत भाषा के व्याकरण के जटिल नियमों की उपेक्षा करते हुए सरलीकृत हिन्दी का प्रयोग करते हैं। इस भाषा में खरी स्पष्टवादिता है जो ग्रामीण पात्रों की सच्चाई और सीधेपन को प्रतिबिंबित किया है।"[5]

पात्रानुकूल भाषा का संयोजन 'मैला आँचल' की अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है। जैसा किडॉ. सुरेश सिन्हा अपनी पुस्तक 'उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ' में लिखते हैं कि "पात्रानुकूल भाषा से उपन्यास की स्वाभाविकता में वृद्धि होती है। भाषा पात्रों की प्रवृत्तियों एवं उनके व्यक्तित्व के अनुसार रखनी पड़ती है। "कहना न होगा कि रेणु इस कला में सिद्धहस्त हैं। उदाहरणस्वरूप कांग्रेसी जन-नेता गाँधीवादी विचारधारा में निष्ठा रखनेवाले बालदेब की भाषा का रूप देखाने योग्य है- "पियारे भाइयो, आप लोग जो आन्डोलन किये हैं, वह अच्छा नहीं। अपना कान देखे बिना कौआ के पीछे दौड़ना अच्छा नहीं। आपही सोचिये, क्या यह समझदार आदमी का काम है। .. आप लोग हिंसाबाद करने जा रहे थे। इसके लिए हमको अनशन करना होगा। भारथमाता का, गांधीजी का यह रास्ता नहीं।" [6] वस्तुतः भाषा का यथावसर पात्रानुकूल प्रयोग रेणु की औपन्यासिक भाषा को गतिशीलता प्रदान करता है। पात्रों के मानसिक स्तरानुसार भाषा में बदलाव 'मैला आँचल' की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। विभिन्न चरित्रों की मनः स्थिति, संस्कार, मानसिकता, शिक्षा आदि के अनुसार उनकी भाषा का रूप परिवर्तित होता चलता है।

मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग के कारण 'मैला आँचल' की भाषा शक्ति और अधिक बढ़ गई है। रेणु ने बिहार और खासकर मिथिला में प्रचलित अनेक कहावतों और मुहावरों का यथावसर प्रयोग किया है। यह माना जाता है कि रेणु को लोकोक्तियाँ बहुत प्रिय हैं और प्रायः उनके पात्र अपनी टिप्पणियों के अंत में पारंपरिक आप्त वचन जोड़ देते है। "ये लोकोक्तियाँ रूपकात्मक अभिव्यक्ति के प्रति गाँव के लोगों के लगाव के उदाहरण है। पात्रों के वार्तालाप में आँचलिक भाषा के शब्दों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग इनकी पूरी सांकेतिकता और व्यंजनात्मकता के साथ किया है।" उदाहरणार्थ इसे देखा जा सकता है- "रे, सिंघवा की रखैली। सिंघवा के बागान का बंब्बे आम का स्वाद भूल गई। तरबन्ना में रात-रात भर लूकाचोरी में ही खेलती थी रे? कुअँरखा बच्चा जब हुआ था तो कुअँरखो सिंघवा से मुँह देखाऊनी में बाछी मिली थी, सो कौन नहीं जनता?"[7]इस संवाद में निश्चय ही लोकभाषा की जीवंतता प्रमाणित होती है। इसमें स्थानीय भाषा के शब्द, मुहावरे,लोकोक्तियाँ और गालियाँ भी या गयी है। यह भी सही है कि यह भाषा न तो साहित्यिक हिन्दी से दूर है, और न ही इसमें किसी प्रकार की दुर्बोधता है। यह भाषा अभिव्यक्ति में सशक्त एवं प्रभावशाली है।

रेणु की एक खासियत यह है- ध्वनि को शब्दों में बांधने की कला। दूसरे शब्दों में रेणु ध्वनियों को शब्दों द्वारा चित्रित करते हैं। वस्तुतः अपने आस-पास के परिवेश में व्याप्त लगभग समस्त प्रकार की आवाजों का सार्थक प्रयोग रेणु ने 'मैला आंचल' में अनेक ध्वनिचित्रों के रूप में प्रस्तुत की है। 'मैला आँचल' का निम्न स्थल भाषागत ध्वनि सौन्दर्य का सबल प्रमाण है, जिसमें मानर, डिग्गा, मुरली आदि वाद्य-यंत्रों के स्वर गूँज रहे हैं- "सानियाँ मुरमू कालीचरन की हर बात पर खिल-खिलाकर हँसती है- हँ हँ हँ हँ हँ हँ! खसम के सुर में हँसती है सानियाँ।" और "मानर की मंद आवाज.. रिंग रिंग ता धिन-ता!.. डिग्गा की अटूट ताल.. डा डिग्गा, डा डिग्गा! उन्मुक्त स्वर लहरी.. जोहिरे जोतबो सोहिरे वोयबो! मुरली की लय पर पायलों का छुम छुम छुम, छन्न छन्न! डा डिग्गा डा डिग्गा, रिंग रिंग ता धिन-ता! चल चल रे, सभा देखेला।" [8] इतना ही नहीं वे जानवरों के शोर, मशीन या मौसम के लिए ध्वन्यात्मक अनुकरणों की खोज करते हैं। "साथ ही उन्हें मानवेत्तर ध्वनियों की नकल करना बहुत प्रिय है। मौका मिलने पर वह किसी पात्र के नाम से ध्वन्यात्मक खिलवाड़ करने से नहीं चूकते या शब्दों के बीच की समान ध्वनियों से खेलते हैं.. इसके अतिरिक्त रेणु ध्वनि के सामी का उपयोग करते हैं, अनुस्वार, समस्वर और टूक इसमें शामिल हैं। शब्दों का चयन बिल्कुल कवियों की तरह है।"[9]

निस्संदेह 'मैला आँचल' की भाषा सर्जनात्मक एवं हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा देने वाली है। हकीकत तो यह है कि इसकी ठेठ आँचलिकता भूमंडलीकरण वाली विचारधारा के सामने एक चुनौती की तरह भी है। वह चाहे जितनी ठेठ हो, उसकी जड़ें हैं, परंपरा है और सांस्कृतिक समृद्धि है तभी वह सजीव भी है, औरों से अलग भी और नया पथ-प्रदर्शक भी।

संदर्भ सूची :

1. फणीश्वरनाथ रेणु, 'मैला आँचल', राजकमल पेपरबैकस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पुनरमुद्रित- जून 1995, पृष्ठ 16
2. विजेंद्र नारायण सिंह, लेख- उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु, 'आलोचना', अप्रैल-जून, 1996, पृ. 189-90.
3. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण पुनर्मूद्रित 1992, पृ. 228.

4. कैथरीन हैन्सन, आलोचना, अक्टूबर-दिसंबर, 1988, 'रेणु की आंचलिकता : भाषा और रूप' लेख से, पृ. 39.
5. कैथरीन हैन्सन, आलोचना, अक्टूबर-दिसंबर, 1988, 'रेणु की आंचलिकता : भाषा और रूप' लेख से., पृ. 41-42.
6. फणीश्वरनाथ रेणु, 'मैला आँचल', राजकमल पेपरबैकस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पुनरमुद्रित- जून 1995,पृष्ठ 10.
7. फणीश्वरनाथ रेणु, 'मैला आँचल', राजकमल पेपरबैकस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पुनरमुद्रित- जून 1995,पृष्ठ 10.
8. फणीश्वरनाथ रेणु, 'मैला आँचल', राजकमल पेपरबैकस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पुनरमुद्रित- जून 1995,पृष्ठ 100.
9. कैथरीन हैन्सन, आलोचना, अक्टूबर-दिसंबर, 1988, पृ. 43, 'रेणु की आंचलिकता : भाषा और रूप' लेख से.

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

तुलसी काव्य धारा में पर्यावरणीय संचेतना : एक समीक्षा

डॉ0 अरुण कुमार मिश्र
असि0 प्रोफेसर, हिन्दी
एम0डी0पी0जी0 कॉलेज, प्रतापगढ़
सम्बद्ध : प्रो0 रा0सिं0 विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मानव का समस्त जीवन प्रकृति की ही गोंद में गुजरता है। उसके जीवन की समस्त घटनायें प्रकृति रूपी माता के आँचल में घटित होती हैं। वह इसी प्रकृति की गोंद में आँखें खोलता है तथा इसी गोंद में अपनी अन्तिम साँसें लेता है। इसलिए प्रकृति ही मनुष्य की सच्ची सहचरी है। प्रकृति माता के समान मानव का पालन तथा पिता की तरह उसका पालन करती है। प्रकृति से परे मानव जीवन की कल्पना सर्वथा अकल्पनीय है क्योंकि मनुष्य के लिए घर, आँगन, आहार सब कुछ प्रकृति ही प्रदान करती है।

प्रकृति में हर किसी वस्तु या प्राणी का अपना विशिष्टतम स्थान है। एक छोटे से जीव से लेकर बड़े–बड़े विशालकाय देहधारी तथा एक अल्प कण से लेकर अति विशाल पर्वत, पठार सभी महत्वपूर्ण है। पर्यावरण का प्रकृति से अन्योन्याश्रिता का सम्बन्ध है। यदि प्राकृतिक व्यवस्था समुचित होगी तो पर्यावरण अपने आप शुद्धतम होगा। पर्यावरण संचेतना उत्पन्न होना अत्यन्त आवश्यक है। पर्यावरण को शुद्ध तथा पवित्र रखना सभी का नैतिक कर्तव्य होना चाहिए। इसीलिए सनातन धर्म परम्परा में वृक्ष, पहाड़, नदी सभी को पूजने की परम्परा विद्यमान रही है। पुराणों में उल्लेख है कि जो मनुष्य नये–नये वृक्षों को रोपित करता है, वह स्वर्ग में उतने ही वर्षों तक फलता फूलता है, जितने वर्षों तक उसके लगाये वृक्ष फलते–फूलते हैं। मत्स्य पुराण में एक वृक्ष को सौ पुत्रों के समान बताया गया है। मुंशी प्रेमचन्द ने भी जीवन में प्रकृति तथा पर्यावरण के महत्व को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार साहित्य में आदर्शवाद का वही स्थान है जो जीवन में प्रकृति का है।

प्रकृति दो शब्दों से मिलकर निर्मित हुई है। प्रताि कृति। 'प्र' का अर्थ श्रेष्ठ अथवा उत्तम है और कृति का अर्थ रचना से है। इस प्रकार प्रकृति से तात्पर्य ईश्वर की श्रेष्ठतम रचना से है। अन्य शब्दों में प्रकृति 'सृष्टि' का बोध कराती है अर्थात् प्रकृति के द्वारा ही समूचे ब्रह्माण्ड की रचना हुई है। श्रीमद्भगवद्गीता में प्रकृति के दो रूपों का उल्लेख है। पहली प्राकृतिक प्रकृति तथा दूसरी मानवीय प्रकृति। इसे ही अष्टधा मूल प्रकृति के रूप में समझा जा सकता है। भगवान कृष्ण गीता में कहते है–

भूमिरापोनलोवायुः खं मनो बुद्धिरेव च।

अहंकार इतीयंमे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।[1]

अर्थात् ''पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पंचमहाभूत और मन, बुद्धि तथा अहंकार यह आठ प्रकार के भेदों वाली मेरी अपरा प्रकृति है।'' अष्टधा प्रकृति द्वारा ही समूचे ब्रह्माण्ड का निर्माण होता है। वेदों के अनुसार मनुष्य का शरीर इन्हीं पंचमहाभूतों द्वारा निर्मित होता है। इन्हीं पाँच तत्वों को विज्ञान भी पुष्ट करता है। सन्त तुलसी के अनुसार–

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रहित यह अधम शरीरा।।[2]

अर्थात् मानव शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु इन पाँच तत्वों से विनिर्मित है। जीवन को सुखी बनाने के लिए इन पाँच तत्वों से विनिर्मित है। जीवन को सुख बनाने के लिए इन पाँचों तत्वों की शुद्धता तथा पवित्रता आवश्यक है। प्राचीन काल से ही मनुष्य अपने चारों ओर की प्रकृति को सुन्दर व स्वच्छ बनाने के लिए प्रयत्नशील रहा है। पेड़ पौधों के संरक्षण द्वारा वायु को शुद्ध करता था। प्रकृति के निर्माण में असंख्य तत्वों का योगदान होता है। ये सभी तत्व परस्पर अन्योन्याश्रित होते हैं। जीव जन्तु की निर्भरता वनस्पतियों पर तथा वनस्पतियों का संरक्षण जीव जन्तु पर निर्भर होता है। पर्यावरण में दृश्यमान किसी वस्तु का अस्तित्व दूसरे तत्व में तथा दूसरे का पहले में निर्भर है। एक के प्रभावित होने पर दूसरा स्वतः ही प्रभावित हो जाता है।

प्राचीन काल से ही मानव प्रकृति—पर्यावरण तथा उसकी शुद्धता के प्रति सचेत रहा है। युग प्रवर्तक साहित्यकारों की लेखनी भी इससे अछूती नहीं रही है। तुलसी का रामकाव्य इसका प्रमुख उदाहरण कहा जा सकता है। तुलसी की दृष्टि में पर्यावरण ही वह तत्व है जो जीवन को शुद्ध बनाकर 'ब्रह्ममार्ग' की ओर अनुप्रेरित कर सकता है। तुलसी वांग्मय में प्रकृति तथा पर्यावरण का जो चित्रण प्राप्त होता है, वह सर्वथा श्लाघनीय है। तुलसी वांग्मय में लगभग समस्त ग्रन्थों में प्रकृति तथा पर्यावरण का मनोरम चित्रण प्राप्त होता है। राम, लक्ष्मण, सीता सभी पर्यावरण के प्रति अत्यन्त सचेत है।

तुलसी प्रकृति के पाँचों उपादानों की शुद्धता पर ध्यान देते हैं। वायु शुद्धता तुलसी की तपश्चर्या तथा दिनचर्या में अत्यन्त महत्व है। वायु शुद्धता हेतु वृक्षारोपण अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए श्रीराम वनगमन के समय अपने चित्रकूट प्रवास में अपने आश्रम में तुलसी के पौधे का रोपण करते हैं—

तुलसी तरुवर विविध सुहाये। कहुँ कहुँ सिय कहुँ लखन लगाये।।

बट छाया वेदिका बनाई। सिय निज पानि सरोज सुहाई।।[3]

वैज्ञानिक रूप से भी तुलसी के वृक्ष का अत्यधिक महत्व है। औषधीय दृष्टि से भी तुलसी अत्यन्त लाभकारी औषधि के रूप में प्रयोग की जाती है। तुलसी का पौधा आक्सीजन जैसे जीवन के लिए महत्वपूर्ण तत्व का प्रमुख उत्पादक है। सिर्फ तुलसी के वृक्षों का रोपण ही नहीं अपितु अन्य प्रकार के वृक्षों का रोपण से भी प्राकृतिक सौन्दर्य तथा पर्यावरण शुद्धता के प्रमाण दृष्टिगोचर होते है। विवाहोपरान्त रामजी अयोध्या लौटने पर अयोध्या नगरी में विभिन्न प्रकार के वृक्षों का रोपण करते है—

सफल पूगफल कदलि रसाला। रोपे बकुल कदम्ब तमाला।।[4]

तुलसीदास जी मांगलिक अवसरों पर पर्यावरण एवं प्रकृति संवर्धन हेतु पौधरोपण के विधान का वर्णन करते है। श्रीरामचन्द्र जी के विवाहोपरान्त राज्याभिषेक के मांगलिक अवसर पर गुरु वशिष्ठ जी ने नाना प्रकार के शुभ व पवित्र वृक्षों के रोपण का आदेश दिया—

वेद विदित कह सकल विधाना। कहेउ रचहु पुर विविध विताना।।

सफल रसाल पूगफल केरा। रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा।।[5]

गुणवान तथा धर्मशील पुरुषों की प्रकृति को भी तुलसी ने पर्यावरणीय प्रकृति से निरुपित किया है। रामराज्य में उपकारी पुरुषों के संदर्भ में फल से लदे हुए वृक्षों का उद्धरण हैं—

फल भारन नमि विटप सब, रहे भूमि निअराइ।

पर उपकारी पुरुष निमि, नवहिं सुसम्पति पाइ।।[7]

तुलसी के रामचरितमानस में वृक्षारोपण का एक और प्रमाण निम्नवत दिया जा सकता है–

ताल समीप मुनिन्ह गृह छाये। चहुँ दिसि कानन विटप सुहाये।

चंपक बकुल कदम्ब तमाला। पाटल पनस परास रसाला।।[8]

तुलसी के काव्य में वायु अत्यधिक वृक्षों के कारण पूर्णतया शुद्ध है। वृक्ष सदैव फल व फूलों से लदे रहते है।। माता पार्वती के जन्म पर हिमालय राज की स्थिति अवलोकनीय है–

सदा सुमन फल सहित सब, द्रुम नव नाना जाति।

प्रकटी सुन्दर शैल पर, मनि आकर बहु भाँति।।[9]

एक अन्य प्रसंग में तुलसी ने वृक्ष को परम रमणीय दर्शाते हुए उद्धृत किया है–

नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना।।

सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहई मनोहर बाऊ।।[10]

अर्थात् बहुत प्रकार के वृक्ष नये–नये पत्तों और सुगन्धित पुष्पों से युक्त है, जिन पर भौरों के समूह गुंजार कर रहे हैं। स्वभाव से ही शीतल, मन्द, सुगन्धित एवं मन को हरने वाली हवा सदा बहती रहती है।

सीता हरण से दुःखी राम अपने अनुज लक्ष्मण जी से वसन्त ऋतु के विषय में कहते है–

विटप विसाल लता अरुझानी। विविध वितान दिये जनु तानी।।

कदलि ताल बर धुजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका।।

विविध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना।।

कहुँ कहु सुन्दर विटप सुहाये। जनु भट विलग–विलग होइ छाये।।[11]

अर्थात्– हे भाई! विशाल वृक्षों में लतायें उलझी हुई ऐसी मालूम पड़ती हैं मानो नाना प्रकार के तम्बू तान दिये गये हैं। केला तथा ताड़ के वृक्ष ध्वज–पताका के समान लग रहे हैं जिनको देखकर किसका मन मोहित नहीं हो जायेगा। नाना प्रकार से वृक्ष फूलों से ऐसे लदे हैं मानों अलग–अलग वस्त्र धारण करके अनेक तीरंदाज तैयार होकर खड़े हों। कहीं–कहीं सुन्दर वृक्ष इस प्रकार शोभा दे रहे हैं मानो योद्ध लोग अलग–अलग अपनी छावनी डाले हो।

उपरोक्त समस्त उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि तुलसी को प्रकृति तथा उसके तत्वों से अत्यंत प्रेम है। वे वायु को सदैव शुद्ध तथा सुगन्धित रखने का मानव जाति को सन्देश देते है। इसलिए वृक्षारोपण को एक पुण्यकारी कार्य प्रतिख्यायित करते हैं।

तुलसी काव्यों में न सिर्फ वायु शुद्ध है बल्कि जल भी शुद्धतम है। जल के बिना मानव अथवा प्राकृतिक व्यवस्था संभव ही नहीं है। अतः जल को जीवन कहा गया है। इसीलिए देश के जल तत्व तथा जलस्रोतों का शुद्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। सन्त तुलसी इसी तथ्य का समर्थन

अपनी विविध कृतियों में करते हैं। रामायण कालीन नदियां सदैव निर्मल जल से परिपूर्ण रहती थीं।

सरिता सब पुनीत जल बहहीं। खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं।।[12]

अर्थात् सारी नदियों में पवित्र जल बहता है जिससे पशु–पक्षी भ्रमर सभी सुखी रहते हैं। एक अन्य प्रसंग में भी इसी भाव की पुष्टि होती है–

सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी।।[13]

अर्थात् समस्त नदियों में सुन्दर शुद्ध जल सदैव बहता रहता है जो अत्यन्त ही शीतल, स्वादिष्ट तथा सुखकर होता है। तुलसी न सिर्फ जल को शुद्ध रखने के समर्थक है बल्कि जलस्रोतों को भी शुद्ध रखना चाहते हैं। यदि हमारे जलस्रोत गन्दे रहेंगे तो हम जल के स्वच्छ होने की कल्पना भी नहीं कर सकते। तुलसी काव्य धारा में जल प्रबन्धन अत्यन्त उच्चकोटि का है। कुँए तालाब अत्यन्त ही रमणीय तथा सुखकर है–

बापी तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।

सोपान सुन्दर नीर निरर्मल देखि सुर मुनि मोहही।।

बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं।।

आराम रम्य पिकादि खगरव जन पथिक हंकारहीं।।[14]

अर्थात् अनुपम बावलियाँ, तालाब और मनोहर तथा विशाल कुँए शोभा दे रहे हैं, जिनकी सुन्दर रत्नों की सीढ़ियाँ और निर्मल जल देखकर देवता तथा मुनि तक मोहित हो जाते हैं। तालाबों में अनेक रंगों के कमल खिल रहे है, अनेकों पक्षी कूज रहे हैं तथा भौरे गुंजार कर रहे हैं। परम रमणीय उपवन कोयल आदि पक्षियों से विभूषित है कोयल तथा पक्षियों की बोलियाँ ऐसे प्रतीत हो रही हैं मानों वे मार्ग में जाते हुए पथिक को विश्राम हेतु अपनी ओर बुला रही हों।

प्रतीकात्मक रूप से तुलसी राम की उपस्थिति मात्र से समस्त प्राकृतिक उपादानों की सुन्दरता अत्यधिक सम्पन्न प्रदर्शित करते हैं और मनुष्य को प्राकृतिक वातावरण को सुन्दर बनाने की दिशा में प्रेरित करते हैं। एक प्रसंग में भगवान राम जब किष्किन्धा पर्वत पर अपना प्रवास करते है। तो समस्त प्राकृतिक उपादान अपने–अपने अनुसार मनोरम हो जाते हैं जिससे वहाँ निवास करने वाले सन्त महात्मा भी सुखी हो जाते हैं और उनके मन का संत्रास दूर हो जाता है क्योंकि प्रकृति द्वारा प्रदत्त सुविधाओं पर ही उनकी तपश्चर्या तथा जीवन पूर्णतया निर्भर होता है।

जब से राम कीन्हि तँह बासा। सुखी भये मुनि बीती त्रासा।।

गिरि वन नदी ताल छबि छाये। दिन–दिन प्रति अति होहिं सुहाये।।[15]

वनमार्ग में जाते हुए राम शबरी आश्रम से निकलकर पंपा सरोवर की ओर प्रस्थान करते है। तुलसी ने पम्पा सरोवर के जल को अत्यन्त ही निर्मल तथा सुखकारी कहा है। पम्पा सरोवर के चारों तरफ सुन्दर–सुन्दर घाट बने है जहाँ विभिन्न प्रकार के पशु–पक्षी सभी जल पीते हैं। जल के ऊपर जलीय वनस्पतियाँ इस प्रकार से उसे आच्छादित की हुई हैं कि उनका रहस्य उसी प्रकार से ज्ञात नहीं हो पाता जिस प्रकार माया से आवृत्त निर्गुण ब्रह्म। तुलसी ने जल तत्व का जो दार्शनिक निरूपण किया है वह उनके जलतत्व के महत्व का संसूचक है। जिस प्रकार सन्त पुरुषों का हृदय निर्मल होता है उसी प्रकार निर्मल जल से परिपूर्ण पम्पा सरोवर शोभायमान हो रहा है।

पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा। पम्पा नाम सुभग गंभीरा।।

संत ह्रदय जस निर्मलवारी। बाँधे घाट मनोहर चारी।।

जहँ तहँ पिअहिं विविध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा।।

पुरइनि सघन ओट जल, वेगि न पाइय मर्म

मायाछन्न न देखिये, जैसे निर्गुन ब्रह्म।।

सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जल माँहि।

जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाँहि।।

विकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा।।

बोलत जल कुक्कुट बलहंसा। प्रभु विलोकि जनु करत प्रसंसा।।

चक्रवाक बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई।।

सुन्दर खग मगन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई।।[16]

पम्पा सरोवर के अत्यन्त अथाह जल में सब मछलियाँ सदा एक रस होकर सुखी रहती है जैसे धर्मशील पुरुषों के दिन सुखपूर्वक बीतते है। उसमें रंग–बिरंगे कमल खिले हुए हैं। बहुत से भौरे मधुर स्वर से गुंजार कर रहे हैं। जल के मुर्गे और राजहंस बोलते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे है मानो प्रभु श्रीराम को देखकर उनकी प्रशंसा कर रहे हों।

रामचरितमानस में उत्तम जलस्रोतों के रूप में विभिन्न प्रकार की सरिताओं का भी वर्णन है। राम वनगमन मार्ग में कई नदियों का उल्लेख है जो निर्मल जल से आवृत्त हैं–

तमसा नदी, गोमती नदी, सई नदी, गंगा नदी, यमुना, मंदाकिनी, नर्मदा आदि का आख्यान प्राप्त होता है। श्रृंगवेरपुर पहुँचने पर श्रीराम को देवसरि गंगा के दर्शन प्राप्त होते है जो कि समस्त संसार के लिए जीवनदायिनी है–

सीता सचिव सहित दोउ भाई श्रृंगवेरपुर पहुँचे जाई।।

उतरे राम देव सरि देखी। कीन्ह दण्डवत हरषु विशेषी।।

लखन सचिव सिय किये प्रनामा। सबहि सहित सुख पायउ रामा।।

गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला।।

भगवान राम के वनवास समापन पर अयोध्या प्रत्यावर्तन के समय सरयू नदी का जल अत्यन्त निर्मल प्रख्यापित किया गया है–

बहइ सुहावन विविध समीरा। भइ सरयू अति निर्मल नीरा।।[18]

श्रीराम ने अयोध्यापुरी का वर्णन करते हुए स्वयं कहते हैं–

अवधपुरी मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिशि बह सरजू पावनि।।

जा मज्जन ते बिनहि प्रयासा। मम समीप नर पावहि वासा।।[19]

तुलसी की भावना जल के प्रति भक्तिमयी तथा आदरमयी है। उपरोक्त समस्त प्रसंगों में मानव जीवन के लिए जल तत्व की विशुद्धता का दिग्दर्शन होता है। आधुनिक मनुष्य इन जलश्रोतों को नष्ट–भ्रष्ट कर रहा है। तुलसी की ये अभिव्यक्तियाँ उनके लिए ध्यातव्य हैं।

रामचरितमानस में यज्ञ इत्यादि करने वाले ऋषियों का वर्णन प्राप्त होता है जो नित्य अपनी साधना में लीन रहते है। यज्ञ इत्यादि द्वारा वे उच्चकोटि के अनुसंधान में पारंगत है। उनकी यज्ञ क्रिया द्वारा समस्त वायु तत्व अत्यन्त परिशुद्ध हो जाता है। वायु तत्व के शुद्ध होने से जीवन के लिए आवश्यक प्राणवायु शुद्धतम रूप में उपलब्ध होती है। विभिन्न प्रकार के पेड़–पौधों और पुष्पों से आच्छादित वन प्रान्त प्रकृति की अनुपम छटा बिखेरता है। तुलसीदास जी इन मुनीश्वरों को उद्धृत करते हुए कहते है–

अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं।।[20]

भगवान राम के चित्रकूट प्रवास का जो मनोरम दृश्य तुलसी ने उपस्थित किया है वह तत्कालीन पर्यावरण की समृद्धता का द्योतक है। वन प्रान्त चतुर्दिक शोभा से परिपूर्ण हो जाता है। नदी, वृक्ष, पहाड़, पशु, पक्षी तथा समस्त मानव जाति सभी अद्भुत सौन्दर्य एवं समृद्धि के स्वामी प्रतीत होते हैं।

चित्रकूट के वनों की दिव्य झाँकी प्रस्तुत करते हुए सन्त तुलसी कहते है–

जब ते आइ रहे रघुनायक। कतब ते भयउ बनु मंगलदायक।।
फूलहिं फलहिं विटप विधिनाना। मंजु बलित बर बेलि विताना।।
सुरतरु सरिस सुभॉय सुहाये। मनहुँ विवुध वन परिहरि आये।।
गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी। त्रिविध वयारि बहइ सुखदेनी।।
नीलकंठ कलकंठ सुक, चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं विहग, श्रवन सुखद चित चोर।।
करि केहरि कपि कोल कुरंगा। विगत बैर बिचरहिं सब संगा।।
फिरत अहेर राम छवि देखी। होहिं मुदित मृग बृन्द विशेषी।।
बिबुध विपिन जँह लगि जग माहीं। देखि राम बन सकल सिंहाहीं।।
सुरसरि सरसई दिनकर कन्या। मेकल सुता गोदावरि धन्या।।
सब सर सिन्धु नदी नद नाना। मंदाकिनि कर करहिं बखाना।।
उदय अस्त अरु गिरि कैलासू। मंदर मेरू सकल सुर बासू।।
सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहिं तेते।।
बिंधि मुदित मन सुख न समाई। श्रम बिनु विपुल बड़ाई पाई।।
चित्रकूट के विहँग मृग, वेलि विटप तृन जाति।
पुण्य पुंज सब धन्य अस, कहहिं देव दिन राति।।[21]

अर्थात् जब से श्री रघुनाथ जी वन में आकर रहे तब से वन प्रदेश मंगलदायक हो गया। अनेक प्रकार के वृक्ष फूलते तथा फलते हैं और उन पर लिपटी हुई बेलें मंडप के समान दृश्य

उतपन्न कर रही हैं। सभी वृक्ष कल्पवृक्ष के समान स्वाभाविक रूप से सुन्दर हैं और मानों अन्य सारे बनों अथवा देवताओं के नन्दन बन का छोड़कर चित्रकूट आ गये हो। भौरों की श्रेणियाँ बहुत सुन्दर गुंजार कर रही है। सुख प्रदान करने वाली शीतल मन्द सुगन्धित वायु बह रही है। नीलकंठ, कोयल, तोते, पपीहे, चकवे और चकारे आदि पक्षी कानों को सुख देने वाली और चित्त को चुराने वाली तरह–तरह की बोलियां बोल रहे है। हाथी, सिंह, बंदर, सुअर और हिरन परस्पर वैर रखने वाले पशु सभी बैर छोड़कर एक साथ विचरण करते हैं। शिकार पर निकले हुए श्रीराम जी को देखकर पषुओं के समूह विशेष आनन्दित होते हैं। संसार में जितने भी देवबन हैं सभी रामवन को देखकर सिहाते हैं। गंगा, सरस्वती, यमुना, नर्मदा, गोदावरी आदि समस्त पुण्यमयी नदियाँ, सारे तालाब, समुद्र नदी और अनेकों नद सब मन्दाकिनी नदी की बड़ाई कर रहे है।। उदयाचल, अस्ताचल, कैलाश, मंदराचल, सुमेरू और हिमालय आदि जितने पर्वत हैं, सभी चित्रकूट का यशगान कर रहे हैं। विन्ध्याचल पर्वत अत्यन्त आनन्द मग्न है तथा उसका सुख मन में समाता नहीं है क्योंकि उसने बिना परिश्रम ही बहुत बड़ी बड़ाई पाली है। इस प्रकार चित्रकूट के पक्षी, पशु, बेल, वृक्ष, तृण–अंकुरादि की सभी जातियाँ पुण्य की राशि हैं। देवगण दिन–रात चित्रकूट का बखान करते हैं।

उपरोक्त प्रसंग में हमें वातावरण के समस्त घटकों के विषय में वर्णन प्राप्त होता है। वातावरणीय व्यवस्था से जुड़े समस्त उपादान सुन्दर व स्वच्छ हैं तथा प्राणिमात्र को प्राणवायु प्रदान कर रहे है। रामचरितमानस तथा अन्य समस्त तुलसी वांग्मय में हमें इस तरह के तथ्य प्राप्त हो जाते है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि तुलसी प्रकृति के सुकुमार कवि यदि कहे जाएँ, तो यह अन्योक्ति न होगी। तुलसी ने जिस पर्यावरणीय संतुलन को अपने काव्यों में वर्णित किया है, वह अत्यन्त ही दिव्य है। आधुनिक विकास की विभीषिका से संतप्त मानव अपने पर्यावरण को हानि पहुँचा रहा है। उसे शनैः–शनैः हो रहे उसके विनाश का रंचमात्र भी भान नहीं रह गया है। उसे याद रखना चाहिए कि प्रकृति के बिना पर्यावरण शुद्ध होना संभव नहीं है और शुद्ध पर्यावरण के बिना जीवन सम्भव नहीं है। हम प्रकृति से जुड़कर ही प्रकृति पुरुष राम जुड़ पायेंगे। हमें तुलसी के उद्घोष 'क्षिति, जल, पावक, गगन समीरा' को ध्यान में रखते हुए अपनी प्रकृति तथा अपने पर्यावरण को शुद्ध करने का हर सम्यक प्रयास करना होगा। यही मानवता की सच्ची सेवा हो सकती है।

संदर्भ सूची :

1. श्रीमद्भगवद्गीता, 7/4
2. रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड
3. रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड
4. रामचरितमानस, बालकाण्ड
5. रामचरितमानस, बालकाण्ड
6. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
7. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
8. रामचरितमानस, बालकाण्ड

9. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड
10. रामचरितमानस, बालकाण्ड
11. रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड
12. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
13. रामचरितमानस, बालकाण्ड
14. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
15. रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड
16. रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड
17. रामचरितमानस, अध्योध्याकाण्ड
18. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
19. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
20. रामचरितमानस, अध्योध्याकाण्ड
21. रामचरितमानस, अध्योध्याकाण्ड

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

बिक्रम सिंह की कहानियों में दलित–विमर्श

श्रीमती मीरा देवी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
सरदार पटेल महाविद्यालय,
बालाघाट (मध्य प्रदेश)

डॉ. लोपामुद्रा सदाशिवराव बनसोडे
शोध निर्देशिका, हिन्दी विभाग,
सरदार पटेल विश्वविद्यालय,
बालाघाट (मध्य प्रदेश)

साहित्य और समाज का कभी न समाप्त होने वाला संबंध है। समाज में घट रही घटनाओं के आधार पर साहित्य का निर्माण संभव है। भारतीय समाज कालांतर से वर्ण–व्यवस्था व जात–पात के बंधन से मुक्त नहीं हो सका है। समाज छुआछूत, ऊँच–नीच जैसी कुत्सित भावनाओं से ग्रस्त हो गया। वर्ण व्यवस्था के आधार पर बंटे हुए भारतीय समाज में सवर्ण वर्ग में आने वाले ब्राह्मण व क्षत्रिय वर्ग ने अपनी पकड़ और आधिपत्य बनाए रखने के लिए अन्य वर्ग जैसे वैश्य व शूद्र वर्ग का शोषण किया। ब्राह्मण वर्ग से अलग अन्य वर्गों को शिक्षा से विहीन रखा। समाज में शूद्रों व स्त्रियों का शोषण अधिक हुआ और इन्हें अशिक्षित रखा गया। और इसका परिणाम यह हुआ कि देश में दलित वर्ग नाम से एक नये वर्ग का जन्म हुआ। इस नये वर्ग पर लिखा गया साहित्य या यूँ कहें कि इस वर्ग के द्वारा अपने उत्पीड़न व अनुभूतियों को जब साहित्य में उकेरा गया तो उसे दलित साहित्य नाम दिया। इस दलित साहित्य का निर्माण स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हुआ या पहले हुआ यह जरूरी नहीं है लेकिन यह जरूरी है कि अब यह पिछड़ा वर्ग शिक्षित होने लगा। इसी अक्षर ज्ञान से यह अपने अनुभवों को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करने लगा तो साहित्य पर केवल अपना अधिकार मानने वाले वर्ग में हलचल पैदा होने लगी। क्योंकि यह प्रतिष्ठित वर्ग दलितों द्वारा लिखे गये साहित्य को साहित्य मानने को तैयार नहीं था। समयानुसार दलित साहित्य को साहित्य माना जाने लगा।

दलित साहित्य सामाजिक और सांस्कृतिक आंदोलन की उपज है। दलितों के जीवन की पीड़ा और चेतना की सजगता ने उन्हें आंदोलन करने पर मजबूर किया यह दलित आंदोलन न केवल दलितों की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक गुलामी थी बल्कि उससे भी ज्यादा सांस्कृतिक गुलामी की जंजीरों को तोड़ना था। इनके प्रयास गौतम बुद्ध, संत कबीर, रैदास, पेरियार, साहुजी महाराज, फुले के विचारों से होते हुए डॉ. अम्बेडकर तक के विचारों में पाते हैं। जिन्होंने न केवल स्वयं दलित उत्पीड़न को सहा बल्कि उनकी समस्याओं का सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक स्तर पर समाधान भी किया। डॉ. अम्बेडकर दलितों के मसीहा, प्रेरणा स्त्रोत व दलित आंदोलन और दलित साहित्य के आधार के रूप में माने जाते रहेंगे। अम्बेडकर के विचारों से प्रभावित होते हुए बिक्रम सिंह ने भी अपनी कहानियों में दलितों की समस्या को उठाया है। बिक्रम सिंह की कहानी 'झंडाराम' और 'जमुनवा' में झंडाराम और जमुनवा का विद्रोह डॉ. अम्बेडकर के विचारों के अन्तर्गत देखा जा सकता है। इसका मतलब यह है कि कहानीकार बिक्रम सिंह भी समाज में हो रहे परिवर्तन को देख व समझ रहे थे तथा दलितों की समस्याओं को कहानियों में प्रस्तुत करके एक सजग कहानीकार होने का प्रमाण देते हैं।

'जमुनवा' कहानी में श्रमिकों का शोषण, निम्न जातियों का उत्पीड़न, आकांक्षाओं की हत्या तथा प्रलोभन देकर शोषण करना आदि मुख्य विषयों को उजागर किया है। ग्रामीण परिवेश में

जातियों के बीच द्वेष और अपनी जाति के प्रति सहमति व सहयोग की भावना को देखा जा सकता है। 'जमुनवा' कहानी जमुनवा के जीवन में घट रही घटनाओं को उजागर करती है। जमुनवा बंधुआ मजदूर हैं। जब वह मालिक नारायण सिंह से अपनी मजदूरी का हिस्सा मांगता है तो वह जमुनवा को टालने का प्रयास करता है – "नारायण सिंह दालान में ही बैठे थे। वह बोला – मालिक एगो बात कहना था। इहै टायम है, मामिला बतियाने का। इस कर्कशता में उसके मुलायम स्वर को तहस–नहर कर दिया।

ना मालिक, हम सोच रहे थे, सौ रूपये मिल जाते तो गांव घूम आते सादी–बियाह का मामला है।"[1]

नारायण सिंह उसे रुपये देने से इंकार करता है – "सादी–बियाह? सावन–भादों में? सनक गया है क्या? पूरा साल भी नहीं और साला तू रूपया मांग रहा है। रूपया काहे का?"[2] जमींदार नारायण सिंह जमुनवा की मजदूरी को हजम करना चाहता है। जमुनवा अपनी मजदूरी को पाने के लिए नारायण सिंह के सामने गिड़गिड़ाने लगता है। "नहीं, मालिक, ऐसा मत कहिए। रुपया दे दीजिए। हमारी मनी में से काट लीजिएगा।"[3] इतना सुनते ही जमींदार नारायण सिंह साँप की तरह फुँफकारते हुए कहता है – "मनी? साला खेत तेरे बाप का है कि हमसे हिसाब–किताब कर रहा है। बड़े आदमी से जबान लड़ाता है। सादी–बियाह का हम कौनो जिम्मा थोड़े लिए हैं।"[4] जमींदार द्वारा कहे गये निर्मम शब्दों का जमुनवा पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसकी चेतना जाग्रत होने लगी। जमुनवा यहां संपूर्ण मजदूर वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहा है। क्योंकि बंधुआ मजदूरों को सालभर अपने यहां रखने के लिए जमींदार विभिन्न प्रलोभन देते हैं जब जमींदार अपनी बात पर खरे नहीं उतरते हैं। और मजदूरी नहीं देते हैं तो वे विद्रोह कर उठते हैं। कहानीकार बिक्रम सिंह की कहानियों में भी वह विद्रोह स्वर दिखाई देता है। "जमुनवा इस गाली–गलौच से ताव खा गया। बड़ा आदमी है तो क्या हुआ? हमारा हिसाब कर दीजिए। जब आप हमारा जिम्मा नहीं लिए हैं तो हम कौन–सा जिम्मा लिए हैं।"[5] यहां पर जमुनवा का विद्रोही स्वर नजर आता है। यह आवाज केवल जमुनवा की नहीं है बल्कि जमुनवा जैसे सभी बेगार मजदूरों की है जिनकी बेगारी पर मालिक का हक है। यही मजदूर जब अपने हक के लिए आवाज उठाते हैं तो उनकी आवाज को दबाने का भरसक प्रयास किया जाता है। बातों से जब बात नहीं बनती तो लाठी का प्रयोग करके उनकी आवाज को दबा दिया जाता है। ऐसा ही जमुनवा के साथ भी हुआ। "अइसन बात है। ठहर... ठहर...। लाव लाठी रे साले का हिसाब किताब कर ही दें। जमुनवा जब तक कुछ सोच पाता दनादन लाठियां बरसने लगीं। राजपूतों के नवहीं भी दौड़कर हाथ–सकैया करने लगे। जमुनवा चिल्लाता रहा। अस्त–व्यस्त होकर गिर पड़ा। नारायण सिंह ने गर्दन पकड़ लिया और घसीटते हुए चल पड़े – चल एक्के दमे बस पर चढ़ते हैं। गांव घूमेगा न। जा घूम आ। इधर लौटकर आया तो चमड़ी नोंचवा लेंगे।"[6] जमुनवा जैसे बंधुवा और हलवाहें श्रमिकों की परिणति यही रही और इसका परिणाम गरीबी में जीवन जीने को मजबूर होता रहा है।

जाति प्रथा समाज की अनूठी प्रथा है जो विश्व के किसी भी देश में नहीं पाई जाती। पश्चिमी देशों में समाज का विभाजन वर्ग आधारित गरीब व अमीर हैं। वहीं गरीब अमीर हो सकता है। और अमीर गरीब। लेकिन भारतीय समाज में जाति–प्रथा में परिवर्तन संभव नहीं है जो व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता है मृत्यु तक उसी जाति में जीना पड़ता है। इस तरह भारतीय समाज उच्च जाति तथा निम्न जाति के आधार पर विभाजित है। ऊँची जाति के गरीब भी निम्न जाति के अमीर से श्रेष्ठ माने जाते हैं। इसके उदाहरण कहानीकार बिक्रम सिंह की कहानी 'जमुनवा' और 'बासी' में भी है। भारतीय समाज में छुआछूत की घटना आजादी के 75 साल बाद

भी मौजूद है। गिरी जमुनवा को हिदायत देते हुए कहता है – ''उसका लोटा छू लिया तो एक महीना तक घर में घुसने नहीं देगा। भैंस के नाद पर ही बैठकर भोजन–पतर करना पड़ेगा। अधकपारी है। घर तो घर खपड़ा तक धुलवाता है।''[7] श्रमिकों का भारतीय समाज में दो तरह से शोषण होता है एक शारीरिक, दूसरा मानसिक जमुनवा के साथ शारीरिक व मानसिक दोनों तरह से शोषण होता है। इसी तरह का शोषण 'बासी' कहानी में रमेसर के साथ भी होता है। ठाकुर मधुकर सिंह के घर विवाह है और रमेसर का पूरा परिवार काम करने के लिए उपस्थित हो जाता है। रमेसर का परिवार पत्तल और कुल्हड़ फेंकने में व्यस्त रहता है और सुबह तक किसी के पेट में एक भी दाना नहीं जाता। लोग पंगत में खाना खा रहे थे। ''रमेसर की पूरी पलटन की यह समझ में नहीं आ रहा था कि कैसे खाने बैठ जाये।''[8] जाति पर विभाजित भारतीय समाज में दलित सवर्णों के साथ बैठकर नहीं खा सकते। भूख के बेहाल रमेसर बड़े आग्रह से खाने को माँगता है तो ''रमेसर को चार जोड़ी पूड़ी अउर हिसाब से बुनिया दे दो।''[9] पांच भूखे लोगों का पेट चार जोड़ी पूड़ी से भरता न देखकर रमेसर और पूड़ी की मांग करता है। तो जवाब में कहा जाता है – ''चोप हरामखोर कहीं का। जबान लड़ाता है। एतना पूड़ी खाकर कौन से फौज में जाना है।''[10] यहां श्रमिकों का शोषण व अपमान दोनों होता है।

जब भोज में बची पूड़ी सड़ने लगती है तो रमेसर की बुलावा भेजता है और जो बचा समान होता है उसे दे देता है। जो समान दिया गया उसे मधुकर सिंह ने छूकर देखा था, इन्हें तो गाय–बैल नहीं खा सकते।''[11] यहां दलित रमेसर तथा जमुनवा दोनों का शोषण होता दिखाया गया है। बासी हो गए भोजन जिसे पशु तक अस्वीकार कर देते हैं। ऐसे भोजन को मेहनती रमेसर को उसके श्रम के बदले दिया जाता है। यहां श्रमिकों की शक्ति अपने श्रम और मजदूरी की भीख मांगने में नष्ट होती नजर आती है। सामाजिक संस्थाओं में धर्म को महत्वपूर्ण स्तंभ माना गया है। धर्म पर आधारित धार्मिक ग्रंथों में आये संदर्भों में भी कहानीकार बिक्रम सिंह दलित विमर्श को प्रस्तुत करते नजर आते हैं। उन्होंने ऋषि शंबूक के प्रसंग के आधार पर 'दिव्य शम्बूक' नाम से अपनी कहानी संग्रह 'अनकही कहानियाँ : बाल्मीकीय रामायण पर आधारित' में शम्बूक को नये रूप में प्रस्तुत किया है। दलित साहित्य में दलितों के लिए सांस्कृतिक नायक के रूप में शम्बूक को महान् नायक माना जाता है। वाल्मीकि रामायण में शम्बूक की कथा वह संदर्भ है जो श्रीराम के चरित्र को धूमिल करके उसे खलनायक के रूप में प्रस्तुत करती है। जिस तरह से वाल्मीकि रामायण में राम ने उन्हें 'शूद्र' कहा था उसी तरह बिक्रम सिंह ने शम्बूक को 'दिव्य शम्बूक' कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि बिक्रम सिंह शम्बूक को नयी पहचान देने का प्रयास करते नजर आते हैं। जैसा कि विदित है कि इस कथा में ब्राह्मण का पुत्र मर जाता है और वह ब्राह्मण श्रीराम के दरबार में कहता है – ''राज्य में दैहिक, दैविक और भौतिक कष्टों की समाप्ति हो चुकी है तब उसका पुत्र क्यों मर गया? क्या सुखद दिन बीत चुके हैं? जो काल असमय ही लोगों को ग्रस रहा है। उसने राज्य कर्मियों से आग्रह किया कि यदि राम अब भी पुण्यात्मा हैं तो उसके पुत्र की मृत्यु का वास्तविक कारण बतायें। यदि उनके सत्कर्म अभी भी पुण्य फल देने वाले हैं तो उसके पुत्र को जीवित किया जाए।''[12] ब्राह्मण आत्मदाह की धमकी देता है तो इस घटना की जांच करने के लिए बनाई गई मंत्री परिषद् में नारद राम को समझाते हैं कि इस अकाल की घटना इस बात का प्रमाण है कि वेदों के विरुद्ध कार्य हुआ है जिसके कारण राम की छवि धूमिल हो रही है। नारद राम को इस अनुचित काम को रोकने का आग्रह करते हैं। राम शम्बूक से उसकी वंश परंपरा व परिचय के बारे में पूछते हैं तो शम्बूक बताते हैं – ''वैसे तो मेरी इच्छा और वंश परम्परा में कोई संबंध नहीं है। फिर भी उसकी उत्सुकता को शांत करने के लिए कह रहा हूँ कि मैं शुद्र योनि में उत्पन्न हुआ हूँ। मुझे शूद्र ही जानिए।''[13] राम की प्रतिक्रिया को बिक्रम सिंह ने नये रूप में प्रस्तुत किया है कि राम शम्बूक के बारे में जानते हैं तो उनके मुख की चमक

फीकी पड़ जाती है। वे क्रोधित होकर तलवार को निकाल लेते हैं और शम्बूक का सिर शरीर से अलग कर देते हैं। तलवार से कटा हुआ सिर धरती से उछलकर पेड़ की टहनी पर अटक जाता है और आश्रम उसके रक्त से गीला हो जाता है। इस तरह कहानी के अंत में राम को नये रूप में बिक्रम सिंह प्रस्तुत करते हैं, ''राम माथा पकड़कर पुष्पक विमान में बैठ गए। मन की गति के अनुसार उड़ने वाले पुष्पक में कोई सक्रियता न देख राम फिर आश्चर्य में पड़ गए। संभवतः मन में अनेक विषम, अस्पष्ट और अनुचित विचारों के कारण वह विभ्रम में पड़कर निष्क्रिय अवस्था में जा चुका था। तभी राम ने मन ही मन अपनी मृत्यु की तिथि निश्चित की और पैदल ही आयोध्या की ओर निकल पड़े।''[14]

बिक्रम सिंह ने 'दिव्य शम्बूक' में जिस सांस्कृतिक सोच को दिखाया है। उससे ज्ञात होता है कि दलित समाज जहां विभिन्न परिस्थितियों से गुजरते हुए शोषित, अपमानित होता है तो वहीं दूसरी तरफ विद्रोही स्वरूप भी सामने आता है। दलित वर्ग को केवल विद्रोह करते हुए, या हारते हुए दिखाया गया है। दलित पात्रों को विद्रोह में जीतते हुए दिखाना कल्पना–सा प्रतीत होता है। उसका केवल विद्रोही स्वर ही 'जमुनवा', 'बासी', और 'दिव्य शम्बूक' आदि कहानियों में दिखाया है। कहानीकार बिक्रम सिंह की कहानियों की सार्थकता इस अर्थ में दिखाई देती है कि उन्होंने न केवल विद्रोही स्वर दिखाया है बल्कि जाति आधारित भेदभाव, तथा श्रमिकों के श्रम का अपमान भी दिखाया है। जिस देश में श्रम करने वाले श्रमिकों का शोषण हो, जाति के आधार पर अपमानित होना पड़े, ऐसे देश की तरक्की पर प्रश्नचिह्न लगाना लाजमी है।

संदर्भ सूची :

1. बिक्रम सिंह, ब्रह्मपिशाच एवं अन्य कहानियां, अद्वैत प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रस्थम संस्करण 2018, पृ.26
2. बिक्रम सिंह, ब्रह्मपिशाच एवं अन्य कहानियां, अद्वैत प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रस्थम संस्करण 2018, पृ.26
3. वही।
4. वही.।
5. वही।
6. बिक्रम सिंह, ब्रह्मपिशाच एवं अन्य कहानियां, अद्वैत प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रस्थम संस्करण 2018, पृ.26
7. वही, पृ.22
8. बिक्रम सिंह, ब्रह्मपिशाच एवं अन्य कहानियां, अद्वैत प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रस्थम संस्करण 2018, पृ.27
9. वही, पृ.28
10. वही।
11. वही.।
12. बिक्रम सिंह, अनकही कहानियां, अद्वैत प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रस्थम संस्करण 2018, पृ.148
13. वही, पृ.154
14. अनकही कहानियां, पृ.154

ISSN : 2278-0408, Volume: 14/Issue: 02 / July to December : 2021

मंजुल भगत के कथासाहित्य में चित्रित सामाजिक समस्याएँ

श्वेता तिवारी
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज, कानपुर

सामाजिक समस्याएँ किसी भी समाज के विकास एवं उन्नति में बाधा उत्पन्न करती है किन्तु मानव समाज न तो कभी सामाजिक समस्याओं से पूर्ण मुक्त रहा है और न ही कभी यह संभव दिखाई देता है। समाज में अनेक संस्कृतियों, मान्यताओं, रीति–रिवाजों, धर्मों एवं जातियों को मानने वाले व्यक्ति एक साथ रहते है जिससे समाज में आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होती है। समाज की संरचना एक जटिल प्रक्रिया है इसकी एक ईकाई में होने वाला परिवर्तन अन्य इकाईयों को भी प्रभावित करता है, इसलिए समाज की समस्याओं का संबंध आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक सांस्कृतिक एवं भौगोलिक कारणों से है। इस संबंध में समाजशास्त्री डॉ0 वी0एन0 सिंह का मत है कि– ''प्रत्येक देश की अपनी समस्यायें है। समस्याओं का संबंध किसी भी देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक ढाँचे से जुड़ी होती है। इसके साथ ही सामाजिक समस्यायें राजनैतिक व्यवस्था व नीतियों से भी उत्पन्न होती हैं। इसलिए सामाजिक समस्याओं का स्वरूप समान नहीं हो सकता। प्रत्येक परिवर्तन कुछ नयी समस्याओं को उगाता हैं।''[1] जो समाज जितना अधिक परिवर्तनशील तथा अग्रसर होगा उसमें उतनी ही अधिक समस्याएँ समाहित होती रहेंगे। इसी कारण आज भारतीय समाज भी अनेक समस्याओं से घिरा दिखाई देता है। इन समस्याओं के प्रति व्यक्तियों की जागरूकता शिक्षा एवं संचार माध्यमों के कारण बढ़ी है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति इन समस्याओं के प्रति सजग रहते है। ''सामाजिक समस्याओं को हम उन सामाजिक दशाओं के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जो सामाजिक कल्याण के लिए काफी खतरे के रूप में होती हैं, जिनके प्रति एक समाज के काफी लोग जागरूक होते हैं और निराकरण के लिए सामूहिक रूप से कोई रचनात्मक कार्य या प्रयास करने की आवश्यकता अनुभव करते हैं।''[2] सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूकता लाने में जनसंचार के माध्यमों ने महती भूमिका निभाई है। भारतीय समाज की प्रमुख सामाजिक समस्याओं में जनसंख्यावृद्धि, निर्धनता, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, नशा, दहेज प्रथा, बाल अपराध, जातिवाद, लैंगिक असमानता, आत्महत्या घरेलू हिंसा आदि। मंजुल भगत ने अपने कथा–साहित्य में इन सामाजिक समस्याओं को स्थान दिया है, जिसका वर्णन निम्नलिखित रूपों में दिखाई देता है।

घरेलू हिंसा विश्व के अधिकांश समाज की समस्या है जिसमें विकसित, विकासशील तथा अल्प विकसित सभी देश शामिल है। भारत में भी यह समस्या ग्रामीण अंचल से लेकर नगरों तक व्याप्त है जिसे मंजुल जी ने अपने कथा साहित्य में प्रमुखता से दर्शाया है। 'नागपाश' कहानी में शिवानी पढ़ी–लिखी आधुनिक विचारों की लड़की है किन्तु वह भी पति द्वारा मार–पीट की शिकार है। शिवानी अपनी स्थिति के विषय में सोचती है कि– ''तो मध्य वर्ग की शिक्षित महिला ही सबसे अबला है– मान–मर्यादाओं के नीचे कुचली हुई।''[3] शिवानी घरेलू हिंसा से इतना दुःखी होती है कि अपना गर्भपात करा लेती है और अजन्मे बच्चे को नागपाश से मुक्त कर देती है। 'गुलमोहर

के गुच्छे' कहानी में पतिपत्नी से मारपीट करता है जिसका हानिकारक प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। 'लाज घोड़ी साजन बैंड' कहानी में फुलैरा को ससुराल में अपमानित किया जाता है। 'अनारो' उपन्यास में अनारों का पति नंदलाल उससे मार–पीट करता है। घरेलू हिंसा से संबंधित कहानियों में दोबारा, झरोखे से मुंडेर तक, अजूबा, कील पे अटकी, कागज की चींदी, गुलदुपहरिया, पायदान तथा दूत आदि है जिसमें भिन्न–भिन्न रूपों में घरेलू हिंसा को दिखाया गया है। समाज के निम्नवर्ग से लेकर उच्चवर्ग तक की कहानियों में मंजुल जी ने घरेलू हिंसा का यथार्थ चित्रण किया है, जो किसी भी समाज के लिए कलंक है।

नशा किसी भी समाज के लिए अभिशाप है जिसके कारण अनेक परिवारों की सुख–शान्ति नष्ट हो जाती है। 'नागपाश' कहानी में प्रशान्त शराबी है जो नशे में घर आता है और शिवानी से झगड़ता है। 'दोबारा' कहानी में आदित्य को यह सुध नहीं रहती है कि उसके घर मेहमान आनेवाले है। वह शराब के नशे पर सोफे पर पड़ा रहता है। 'पापदान' कहानी में "मुक्ता को मालूम ही नहीं चला, कैसे मुकेश की ज्यादियाँ, उसके व्यक्तित्व पर मलबे की तरह ढेर होती गयी और मुक्ता उसमें गहरे धसती चली गयी।"[4] 'दूत' कहानी में मयंक नशा करना तो छोड़ देता है किन्तु उसकी पत्नी तनु अकेली ही रह जाती है। तनु सोचती है कि "जब मदहोश था तब मेरे पहलू में पसरा रहता था और जब बाहोश है तब यह यमदूत उसके पति को उससे छीने ले रहा है।"[5] इस प्रकार नशे के कारण टूटते–बिखरते परिवारों को मंजुल जी ने कथा–साहित्य में स्थान दिया है।

लैंगिक असमानता भारतीय समाज की प्रमुख समस्या है जिसमें लड़कों को प्राथमिकता दी जाती है साथ ही लड़कियों को दूसरे स्थान पर रखा जाता है। लड़कियों को दूसरे के घर जाना है यह सोच परम्परागत रूप से चली आ रही है जिसके कारण यह असमानता दिखाई देती है। मंजुल जी 'निशा' कहानी में लिखती है कि "दादी ने भी यही ऐलान किया था", "चलो, इस दफे तो खानदान का नाम चलाने को बेटा ही आएगा।"[6] किन्तु "दादी मन में पोते की ललक लिए ही स्वर्ग सिधार गई थी।"[7] इस कहानी की अन्य कहानियों में 'शुभ–अशुभ', 'अजूबा', 'अंतिम चोट', 'अंतिम बयान' आदि प्रमुख है। 'दहेज प्रथा' के मंजुल जी ने दोबारा कहानी में वर्णित किया है जिसमें माँ मीनाक्षी अपनी बेटी संगीता की शादी टूटने पर उसे समझाते हुए कहती है कि– "बेटी, उसकी माँ ने कोई और मालदार घर ढूंढ लिया। ढेर–सा दान–दहेज मिल गया उनको।"[8] इसी दहेज के कारण न जाने कितनी लड़कियाँ आत्महत्या करने को विवश होती है या उनकी हत्या कर दी जाती है। भारतीय समाज में यह समस्या अत्यंत भयावह रूप में दृष्टिगोचर होती है।

भारत में संसाधनों की सीमित मात्रा एवं अनियंत्रित जनसंख्या के कारण बेरोजगारी प्रमुख सामाजिक समस्या बन गयी है। लघु उद्योग धंधे बहु–राष्ट्रीय कम्पनियों के कारण बन्द हो गये जिस कारण ग्रामीण युवा शहर में नौकरी की तलाश में आने लगे। साथ ही शहरी चकाचौंध भी युवा को अपनी तरफ आकर्षित करती रही। इन स्थितियों के कारण बेरोजगारी में बढ़ोत्तरी हुयी। इस परिस्थिति का मंजुल जी ने अपने कथासाहित्य में यथार्थ उद्घाटन किया है। 'नालायक बहू' में शेखर को बेरोजगारी के कारण घर और बाहर दोनों स्थानों पर अपमानित होना पड़ता है। "शेखर उखड़ा–उखड़ा, निरुद्देश्य इधर से उधर खाक छानता फिरता। अखबारों को उलट–पलटकर इश्तहारों के जवाब देता रहता। इसमें बेरोजगार युवा के मनोदशा का वास्तविक अंकन किया गया है। शेखर की माँ उसकी नौकरी के लिए हर किसी से सिफारिश करती है।"[9] 'झरोखे से मुंडेर तक' कहानी में रामा के गांव से देवदत्त शहर आता है नौकरी की तलाश में। देवदत्त कहता है कि– "वह आया है किसी चाकरी की खोज में।"[10] गाँव से युवा शहर नौकरी की तलाश में आते है और किसी प्रकार अपना गुजारा करते है। 'शैतानबाजा', 'नुक्कड़ की चाट',

'गुलदुपहरिया', 'अंतिम बयान' कहानियों में ग्रामीण युवा नौकरी की खोज में शहर आते है। इस प्रकार मंजुल जी ने ग्रामीण एवं शहरी दोनों प्रकार के युवाओं की बेरोजगारी को ध्यान में रखकर रचना की और बेरोजगारों की उपेक्षित, दयनीय स्थिति का यथार्थ वर्णन किया।

निर्धनता भारतीय समाज की महत्वपूर्ण समस्या है जिसमें सामाजिक एवं आर्थिक दोनों स्थानों पर निर्धन व्यक्ति कमजोर नजर आता है। निर्धनता की समस्त समस्याएँ रोटी, कपड़ा और मकान से जुड़ी दिखती है। मंजुल जी ने अपने कथासाहित्य का केन्द्रीय पक्ष निर्धनता को रखा है जिसे वे मानवीय संवेदना के साथ प्रस्तुत करती है। 'पावरोटी और कट्लेटस' एक ऐसे बच्चे की कहानी है जो रोज आंत फाड़ देने वाली भूख को बर्दाश्त करके अखबार बेचता है, जब अखबार बिकता है तो उसी से मिले पैसे से वह पावरोटी खरीद कर खाता है। वह एक स्वाभिमानी बालक है जो भीख में मिले पैसे नहीं लेता है। इस कहानी में निर्धन और अमीर वर्ग का विभाजन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। 'संबंधहीन' कहानी में सड़क पर फूल–माला बेचने वाली बालिका ललिता का वर्णन है। 'कबाड़' कहानी में निर्धन कबाड़ी जीवन को यथार्थ रूप में दर्शाया गया है। इस प्रकार की कहानियों में 'शैतानबाजा', 'झारोखे से मुंडेर तक', 'कसर', 'अपना–अपना नशा', 'नुक्कड़ की चाट', 'कील पे अटकी', 'कागज की चिंदी', 'गुलदुपहरिया', 'मलवा', 'बानो', 'रौनक', 'काली लड़ी का करतब', 'अंतिम बयान' एवं 'लाज घोड़ी साजन बैण्ड' प्रमुख है तो 'बेगाने घर' उपन्यास में निर्धन नौकरों की फौज का उल्लेख है। इस प्रकार मंजुल जी ने निर्धन वर्ग की सामाजिक समस्या का जीवन्त रूप कथासाहित्य में दिखलाया है जो प्रतिदिन अपनी जिजीविषा के लिए संघर्ष करते है।

गैर कानूनी उपाय से धन अर्जित करना भ्रष्टाचार है। भ्रष्टाचार हमारे देश की प्रमुख समस्या है। व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि के लिए व्यक्ति समाज का अहित करता है भारत में भ्रष्टाचार रिश्वत, चुनाव में धांधली, भाई–भतीजावाद एवं टैक्स चोरी के रंग में दिखाई देता है। इस सम्बन्ध में डॉ0 एम0के0 मिश्रा लिखते है कि– ''भ्रष्टाचार इस देश के लिए सबसे बड़ा मुद्दा है और साथ ही यह इस देश के लिए बहुत बड़ी समस्या भी है। समाज का हर क्षेत्र, हर सम्प्रदाय और हर वर्ग इससे अछूता नहीं है। चाहे पुलिस स्टेशन हो, चाहे नगरपालिका का सदस्य हो, चाहे टेलीफोन डिपार्टमेंट हो भ्रष्टाचार का दायरा इन सभी वर्गों के साथ जुड़ा हुआ है।''[11]मंजुल जी इसे देश की प्रमुख समस्या मानते हुए इसे कथासाहित्य में उजागर किया है। 'नालायक बहू' कहानी में शेखर के संबंध में वे कहती है कि– ''पिछले द्वार से सिफारिश वालों को कुर्सी सौंप दी जाती और अगले द्वार के सम्मुख उम्मीदवारों की कतार की कतार रिजेक्ट हो जाती है।''[12] इसमें नौकरी में हो रहे भ्रष्टाचार को दिखलाया गया है। इसी प्रकार राजनीतिक भ्रष्टाचार को ऊदबिलाव कहानी में दिखाया गया है। जिसमें नेतागण सत्ता के भूखे है वे वोट खरीदते एवं बेचते है। जनता को जाति, धर्म एवं वर्ग में बांटकर अपनी राजनीतिक दुकान चलाते है। इस प्रकार मंजुल जी ने भ्रष्टाचार पर लेखनी चलाई है।

मंजुल जी ने जनसंख्या विस्फोट पर भी अपनी चिन्ता जाहिर की है। इन्होंने 'मलबा', 'नुक्कड़ की चाट' कहानियों में इस समस्या को उद्धृत किया है। जातिवाद एवं साम्प्रदायिकता के दंगे से बर्बाद परिवार का वर्णन वे मलबा कहानी में करती है। बच्चों के विरुद्ध हो रहे शोषण को 'काली लड़की का करतब' कहानी में दर्शाया है। हत्या एवं आत्महत्या को 'त्यागमयी' तथा 'सादगी'कहानियों में इन्होंने चित्रित किया है।

इस प्रकार मंजुल जी ने उन समस्त सामाजिक समस्याओं को कथा–साहित्य में चित्रित किया है जो सामाजिक व्यवस्था में विघटन उत्पन्न करने का कार्य करते है और जिससे समाज का अस्तित्व ही खतरे में आ सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. समाजशास्त्र, डॉ0 वी0एन0 सिंह, पृ0 198, निखिल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा, तृतीय संस्करण
2. समाजशास्त्र, एम0एल0 गुप्त एवं डॉ0 डी0डी0 शर्मा, पृ0 1258, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, संस्करण–2002
3. मंजुल भगत : समग्र कथा साहित्य, (संपा0) कमल किशोर गोयनका, पृ0 35, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2013
4. बावन पत्ते और एक जोकर, मंजुल भगत, पृ0 124, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण–1998
5. दूत, मंजुल भगत, पृ0 23, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण–1992
6. मंजुल भगत : समग्र कथासाहित्य, (संपा0) कमल किशोर गोयनका, पृ0 67, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2013
7. वही
8. बावन पत्ते और एक जोकर, मंजुल भगत, पृ0 104, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण–1998
9. मंजुल भगत : समग्र कथासाहित्य, (संपा0) कमल किशोर गोयनका, पृ0 41, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2013
10. वही, पृ0 248
11. भारतीय समाज, डॉ0 एम0के0 मिश्रा, पृ0 349, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2015
12. मंजुल भगत : समग्र कथासाहित्य, (संपा0) कमल किशोर गोयनका, पृ0 41, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2013